जुलाई-सितम्बर, 2024 अंक-1

उद्गीत

साहित्य, समाज और संस्कृति की संवाहक त्रैमासिक पत्रिका

Peer Reviewed Journal

गुरु रूठे नहीं ठौर

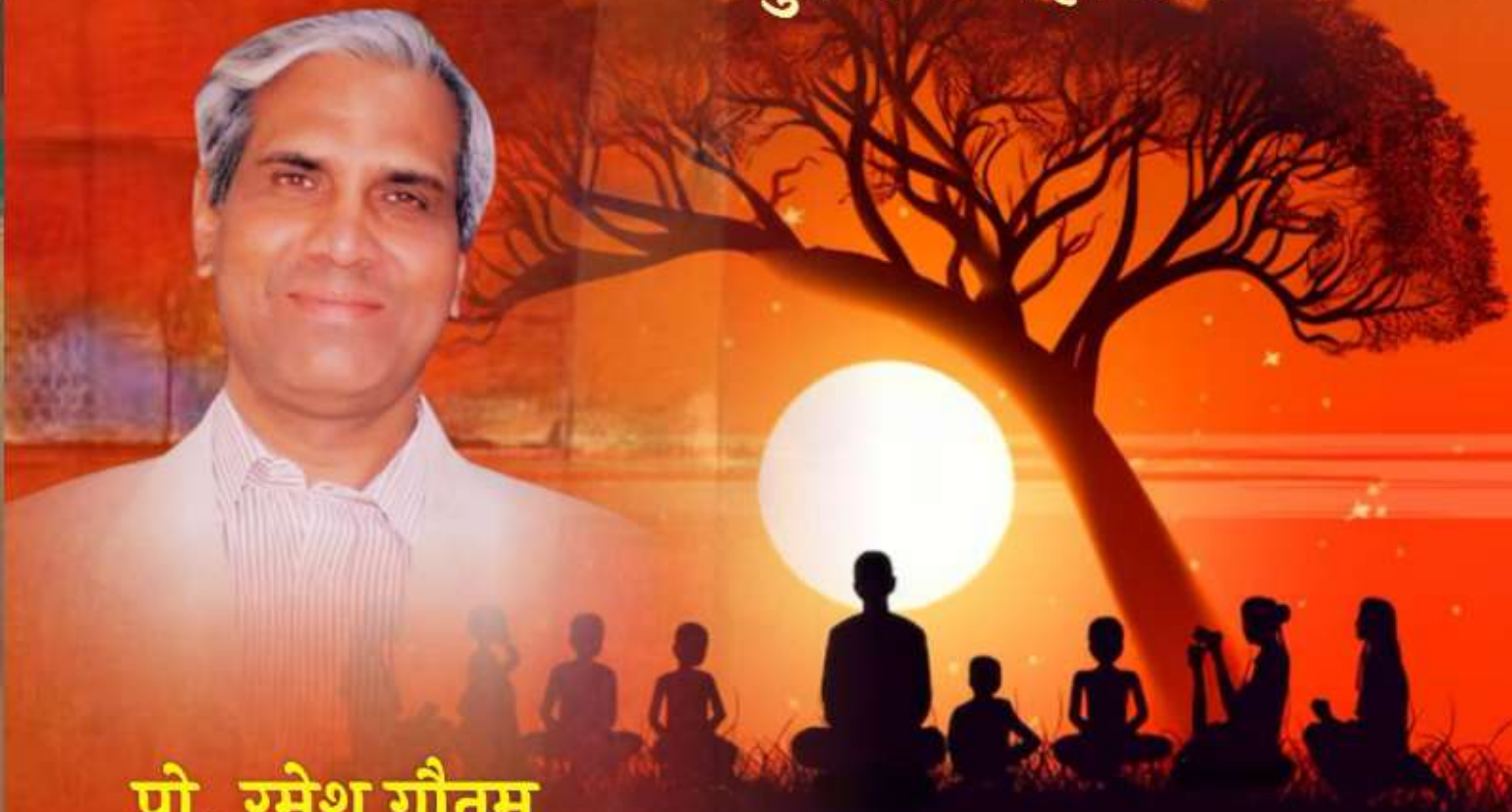

प्रो. रमेश गौतम

स्मृति विशेषांक

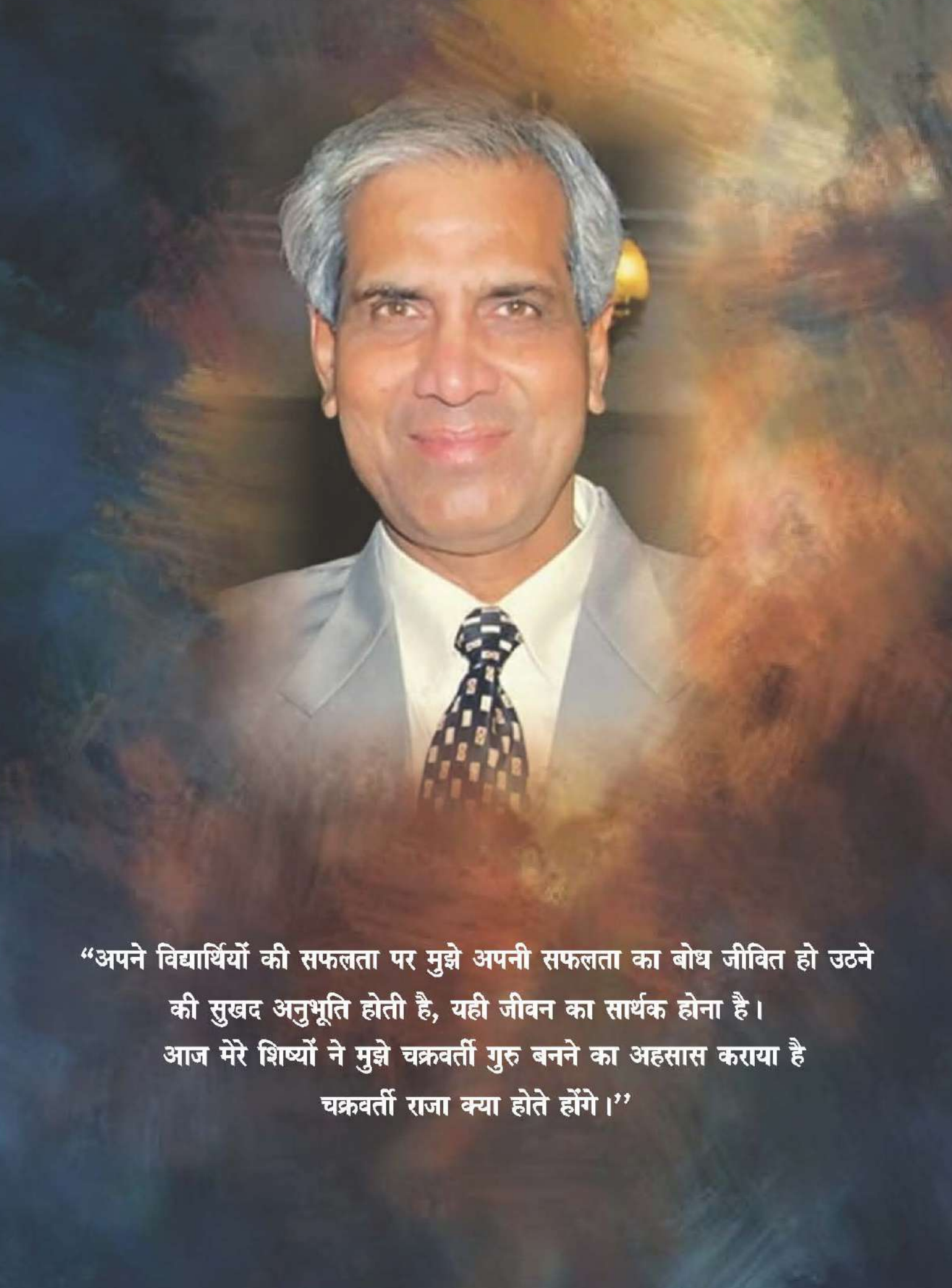

"अपने विद्यार्थियों की सफलता पर मुझे अपनी सफलता का बोध जीवित हो उठने
की सुखद अनुभूति होती है, यही जीवन का सार्थक होना है।
आज मेरे शिष्यों ने मुझे चक्रवर्ती गुरु बनने का अहसास कराया है
चक्रवर्ती राजा क्या होते होंगे।"

उद्गीत

साहित्य, समाज और संस्कृति की संवाहक त्रैमासिक पत्रिका

PEER REVIEWED JOURNAL

अंक-1 जुलाई-सितम्बर, 2024

प्रो. रमेश गौतम स्मृति विशेषांक

उद्‌गीत

अंक 1, जुलाई-सितम्बर, 2024

सम्पादक : **वीरेन्द्र भारद्वाज**

संस्थापक : **रमेश गौतम**

संरक्षक : **यामिनी गौतम**

सम्पादन मण्डल

ममता वालिया

अर्चना गौड़

रमा यादव

आशा

कुसुम लता

मुन्ना कुमार पाण्डेय

ज्योति शर्मा

इस अंक का मूल्य : 40 रुपये

सम्पादकीय सम्पर्क

प्लॉट नम्बर-75, चतुर्थ तल

पॉकेट-8, सेक्टर-21

रोहिणी, दिल्ली-110086

udgeet8@gmail.com

https://udgeet.in/

सम्पादन : अवैतनिक

लेखकों के व्यक्त विचारों से सम्पादक या प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

पत्रिका से सम्बन्धित समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अन्तर्गत विचाराधीन होंगे।

अनुक्रम

देस बिराणा है	सम्पादकीय	5
शुभकामना सन्देश	योगेश सिंह	
गौतम सर के बारे में		7
नेपथ्य से...	यामिनी गौतम	9
प्रो. रमेश गौतम : नाट्य चिन्तन को समर्पित जीवन	मीरा कांत	10
दोस्तों के दोस्त	सुधीश पचौरी	11
गुरु रूठे नहीं ठौर	वीरेन्द्र भारद्वाज	13
एक सुहृद मित्र : जो कद ही नहीं हर बात में बड़े थे	शकुंतला कालरा	18
मेरी स्मृति में प्रोफेसर रमेश गौतम	राजवीर शर्मा	21
गुरु कुम्हार शिष्य कुम्भ है...	ममता	22
'आप आसान समझते हैं रमेश गौतम होना...'	रमा	24
शब्दों के बोझ से मुक्त होती हैं, इसलिए दुआएँ जल्दी सुनी जाती हैं...	माधुरी सुबोध	26
मेरे मांझी—मेरे कर्णधार	यामिनी गौतम	27
प्रोफेसर रमेश गौतम: एक विद्वान और मार्गदर्शक	अजय अरोड़ा	31
गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु : प्रोफेसर रमेश गौतम	अनीता यादव	32
आदरणीय प्रोफेसर रमेश गौतम की यादें	महेन्द्र पाल शर्मा	34
अब नहीं सुनाई देता वह "ऐ श्रीमन्!"	राजेन्द्र गौतम	37
गुरु गुन लिखा न जाय	राज भारद्वाज	39
मेरे शिल्पकार	मुनीश शर्मा	41
प्रभावशाली व्यक्तित्व	रामबक्ष जाट	43
प्रोफेसर रमेश गौतम : मेरे गुरुवर : 'ऐसो को उदार जग माहीं'	रमा यादव	44
यादों की पाती : हँसते रोते शब्द	सरोज गुप्ता	47
हिन्दी के सच्चे हितैषी : गौतम सर	अनिल शर्मा	49
मेरे लिए छाया-से तरुवर, बहुत याद आते हैं गुरुवर	कुसुम लता	51
दोस्ती का पर्याय—प्रिय रमेश जी	स्नेह चड्ढा	54
प्रो. रमेश गौतम : जीवन के बाद भी दिशा-दर्शन करने वाले गुरु	जितेंद्र वीर कालरा	55
स्मृतियों से साक्षात्कार	मीनू कुमारी	57
यादें! यादें! और यादें!	हेमवती शर्मा	59
कर्तव्यपरायण विराट व्यक्तित्व	संजय कुमार शर्मा	61
मेरे सहपाठी : रमेश गौतम	सरला चौधरी	62

फिर कभी किसी से नहीं कहा...	अर्चना गौड़	63
प्रो. रमेश गौतम : जिनकी स्मृतियाँ जीवन का पाथेय हैं और उन जैसा होना मुकम्मल मनुष्यता का होना है	मुन्ना कुमार पांडेय	65
यादों के आईने से	मधु कौशिक	68
स्मृति के झरोखे से...	नीलम राठी	70
गुरु की महिमा अनन्त है : प्रो. रमेश गौतम	ज्योति शर्मा	72
सब धरती कागद करूँ	मंजु शर्मा	74
प्रोफेसर गौतम सर का सान्निध्य : एक अविस्मरणीय पाठ	जयकिशन पराशर	75
वृक्ष देते फल बिना किसी ऋण के : गौतम सर	अर्चना सक्सेना	76
स्मृतियों में गुरुवर...	राजेश कुमार	76
कुशल अध्यापक और नाट्य-आलोचक: प्रो. रमेश गौतम	धर्मेन्द्र प्रताप सिंह	77
स्मृति शेष	नीतू शर्मा	78
विराट व्यक्तित्व : मेरे गुरुवर	बलजीत कौर	79
गौतम सर : मेरे गुरु मेरे रहनुमा	तरुण गुप्ता	81
आकर्षक व्यक्तित्व और गूढ़ कृतित्व के धनी : प्रोफेसर रमेश गौतम	अनीता देवी	83
यादों का झरोखा	प्रवीण भारद्वाज	86
वो गम्भीर व्यक्तित्व	दीपमाला	87
आदरणीय प्रोफेसर रमेश गौतम सर	कमलेश वधवा	89
स्त्रीत्व का देवयानी पक्ष सर को स्वीकार्य नहीं था	अर्चना	90
स्मृति के गलियारों से होते हुए...	पूनम शर्मा	92
रमेश गौतम सर की पुण्य स्मृति को नमन	नवनीत कुमार	93
परम श्रद्धेय गौतम सर	कंचन	95
एक चिन्तनशील अध्यापक : गौतम सर	आशा	96
सोशल मीडिया	लक्ष्मण दत्त गौतम, वीरेन्द्र सिंह नेगी	98

दिल्ली विश्वविद्यालय
University of Delhi

आज़ादी का अमृत महोत्सव

प्रो॰ योगेश सिंह
कुलपति

Prof. Yogesh Singh
Vice-Chancellor

No. DU/VC/2024/414
21 अगस्त 2024

संदेश

मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हो रही है कि शिवाजी महाविद्यालय द्वारा हिन्दी विभाग के पूर्व विभागाध्यक्ष तथा पूर्व निदेशक, जीवन पर्यंत शिक्षण संस्थान (Institute of Lifelong Learning) के हमारे सबके श्रद्धेय स्वर्गीय प्रो0 रमेश गौतम जी की स्मृति में 'उद्गीत' नामांकित साहित्य, समाज और संस्कृति पर केन्द्रित एक वेबसाइट तथा त्रैमासिक पत्रिका का शुभारंभ होने जा रहा है।

मुझे ज्ञात हुआ है कि प्रोफेसर गौतम की अकादमिक यात्रा रामजस महाविद्यालय से आरम्भ हुई और उन्होंने 1991 से दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में अपनी सेवाएँ देना आरंभ किया। 1999–2002 और 2004–2007 तक प्रो. गौतम हिन्दी विभाग के अध्यक्ष भी रहे। उनके कार्यकाल में हिन्दी विभाग में सार्थक और उत्कृष्ट शैक्षणिक सुधार हुए, दशकों पुराने पाठ्यक्रम को संशोधित और परिवर्धित करने के साथ–साथ पचास से अधिक स्तरीय पाठ्य पुस्तकें प्रकाशित करवाने में उनकी अग्रणी भूमिका रही।

मुझे यह भी संज्ञान हुआ है कि जीवन पर्यंत शिक्षण संस्थान के निदेशक के रूप में प्रो. गौतम ने शताधिक ई पुस्तकों को तैयार करवाया जो कि आने वाले दिनों में ई अध्ययन के प्रचार प्रसार में कारगर सिद्ध होंगे। इसके अतिरिक्त दिल्ली विश्वद्यिालय के हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय के निदेशक के रूप में प्रो. गौतम ने समाज विज्ञान के विषयों की छात्रोपयोगी पुस्तकें हिन्दी माध्यम में तैयार करवाईं। इसके उपरांत हिन्दी नाटक और रंगमंच के सुप्रसिद्ध आलोचक प्रो. गौतम नें नाट्यालोचना के साथ–साथ आधुनिक हिन्दी काव्य पर केन्द्रित 25 से अधिक पुस्तकें लिखीं।

ऐसे बहुमुखी व्यक्तित्व को श्रद्धा समर्पण करने हेतु, उनके मार्गदर्शन से प्रभावित शिष्यों द्वारा, उनके स्मरण में वेबसाइट तथा त्रैमासिक पत्रिका का शुभारंभ एक अत्यंत सकारात्मक तथा सराहनीय प्रयास है। अपने गुरू के प्रति उनके शिष्यों द्वारा दी गई यह सच्ची श्रद्धांजलि है।

मैं दिल्ली विश्वविद्यालय तथा अपने तरफ से स्वर्गीय प्रो. रमेश गौतम जी के याद में किए जा रहे इन प्रयासों की हृदय से प्रशंसा करना चाहता हूँ तथा यह भी कहना चाहता हूँ कि आने वाले दिनों में इस तरह के सकारात्मक प्रयास विश्वविद्यालय के शिक्षाविदों के अमूल्य योगदानों को स्वर्णाक्षर में लिखे जाने में मदद करेगा।

शुभकामना सहित

योगेश सिंह 21/8/24

दिल्ली विश्वविद्यालय, उत्तरी परिसर, दिल्ली - 110007, भारत
University of Delhi, North Campus, Delhi-110007, India
दूरभाष Tel.: +91-11-27667190, 27667011 | फैक्स Fax: + 91-11-27667049 | ई-मेल E-mail: vc@du.ac.in

देस बिराणा है

गुरु-शिष्य सम्बन्ध भारतीय परम्परा में निस्वार्थ से प्रेरित एक अनूठा रिश्ता है। जहाँ पर गुरु अपना सर्वस्व अपने शिष्यों में उड़ेल देना चाहता है। गुरु के तेज से दमकते शिष्य के बहुमुखी व्यक्तित्व में दरअसल पिछली पूरी पीढ़ी का ज्ञान और भावात्मक संवेदन झलकता है। गुरु-तत्व अपने-आप में विशिष्ट है, स्वयं में पूर्ण है और दूसरों को अपनी ज्ञान की ज्योति से प्रकाशित करने की क्षमता रखता है। 'गुरुदेव' शब्द ही मनुष्य के देवता हो जाने की ओर संकेत करता है, फिर सम्बन्धों की गहराइयों के चलते देवत्व ही साक्षात ब्रह्मत्व में लीन हो जाता है। जिन्हें सद्गुरु मिल जाते हैं उन्हें फिर कुछ भी और पाने की चिन्ता नहीं रहती।

मुझे सम्भवतः पिछले जन्म के कुछ सत्कर्मों के कारण इस जन्म में प्रोफेसर रमेश गौतम जैसे गुरु के दर्शन हुए। पारस पत्थर लोहे को सोना बनाने का सामर्थ्य चाहे रखता हो या न रखता हो, लेकिन गौतम सर अपने अनगढ़ शिष्यों को बेहतर मनुष्य बनाने की क्षमता अवश्य रखते थे। वे सच्चे आचार्य थे, स्वयं आचरण से शिक्षा देते थे। आचरण की शुद्धता अन्तःकरण की पवित्रता से आती है, जिसका अन्तःकरण जितना पवित्र, निर्मल, कोमल, करुणामय होगा, उसका आचरण भी उतना ही शीतल, हितकारी, धैर्यशील, परोपकारी और संवेदनशील होगा। गौतम सर का व्यक्तित्व इन गुणों से भरपूर था। अध्यात्म के स्तर पर जब आत्मा परमात्मा से मिलने को आतुर हो उठती है और संसार के अन्धकार में उसे कोई रास्ता नहीं दिखायी देता कि कैसे उस सर्वव्यापक, घट-घट में मौजूद, अपरिवर्तनशील, अनिर्वचनीय तक पहुँचा जाये तो सद्गुरु ही ज्ञान की ज्योति प्रदान करता है। गौतम सर भी अपने शिष्यों के जीवन में आनेवाली तमाम चुनौतियों से पार पाने का मार्ग सुझाते थे। उनकी लोकधर्मिता और समाज-सापेक्षता व्यावहारिकता के कठोर धरातल से होकर गुजरती थी। उनके व्यक्तित्व में त्याग, शील, शक्ति और सौंदर्य का अद्भुत संयोग था। अपनी तीक्ष्ण दृष्टि से वे आनेवाली चुनौतियों और विपत्तियों को बहुत पहले ही देख लेते थे। उनका यह चैतन्य गुण उनके शिष्यों के भ्रम-भेद मिटाने में सदैव सहायक बनता था। प्रो. गौतम कोई आध्यात्मिक या धार्मिक गुरु तो नहीं थे लेकिन एक सच्चे सहृदय गुरु अवश्य थे, जो सदैव अपने शिष्यों के कल्याण और ज्ञानार्जन को लेकर सचेत रहते थे। मेरा सर से रिश्ता आत्मभाव की स्थिति में 'शिवोहम' जैसा था, जहाँ पर गुरु और शिष्य का भेद खत्म हो जाता है। यह कुछ-कुछ बूँद के समुद्र में विलीन हो जाने जैसा होता है, 'तुम मुझमें...फिर मेरा परिचय क्या' की भावना हृदय में अत्यन्त बलवती हो उठती है। सर हमारी आपसी बातचीत में अक्सर एक श्लोक बोलते थे—

'ॐ सह नाववतु।
सह नौ भुनक्तु।
सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विदविशावै।'

सर का यह भाव उनके सभी शिष्यों के लिए था। 'योग वासिष्ठ' के एक प्रसंग में गुरु वशिष्ठ श्रीराम को उपदेश देते हुए कहते हैं कि ज्ञान का मार्ग, ब्रह्म की प्राप्ति, इतनी आसान है कि जैसे पलक का झपकना। बस इधर ज़रा-सी पलक झपकी और उधर ब्रह्म मिल जाता है। गुरु वशिष्ठ कहना जारी रखते हैं कि 'तारे गिनना सरल है किन्तु परमात्मा को पाना मुश्किल है।' तब श्रीराम प्रश्न करते हैं, 'गुरुदेव! अभी कहा कि ब्रह्म को पाना पलक झपकने जैसा आसान है और फिर अगली पंक्ति में ही कह रहे हो कि बहुत कठिन है। एक ही बात कीजिए न प्रभु!'

गुरु वशिष्ठ बोले, 'जिसके भीतर जिज्ञासा, प्रेम, संवेदना, करुणा, शील, त्याग, धैर्य और विवेक है, उसके लिए आसान है, जिनके पास ये गुण नहीं हैं उनके लिए बहुत कठिन है।' गौतम सर भी गुरु वशिष्ठ के मानिन्द अपने शिष्यों में इन गुणों का संचार करते थे और उनके सभी प्रश्नों का समाधान करते थे।

मैत्रेयी कॉलेज से यामिनी मैडम की सेवानिवृत्ति के अवसर पर उन्होंने अमेरीका से एक लिखित सन्देश मेरे हाथ भिजवाया था—'मुझे यामिनी कई बार यह कहकर डरा देती है कि 'पूरा हुआ बिसावणा बहुरि न आवहु हट' जबकि मैं तो जन्म-जन्मान्तर तक यामिनी के बगैर जीवन की कल्पना ही नहीं कर पाता हूँ।'

कौन जानता था कि कोरोना के रूप में एक ऐसा क्रूर काल का झोंका आएगा कि सर इस दुनिया को अचानक अलविदा कह देंगे।

'लिपटता हूँ हवाओं की तरहां, मैं तेरे कदमों से
भला तू ही बता इस तरह भी रुख्सत कौन होता है'

मैं हर रोज़ सर को बुलाता हूँ, पुकारता हूँ लेकिन कोई सूरत ऐसी नहीं बनती कि वो कहीं से चले आयें...

'वो न आएंगे पलटकर चाहे लाख हम बुलाएँ
मेरी हसरतों से कह दो, कि ये ख्वाब भूल जाएँ
अगर इस जहाँ का मालिक कहीं मिल सके तो पूछें
मिली कौन सी खता पर हमें इस कदर सज़ाएँ'

सच ही कहा है कबीर ने—

'यह संसार कागद की पुड़िया,
बूँद पड़ै गल जाना है,
रहणा नहिं देस बिराणा है...
कहत कबीर सुनौ भई साधौ
बस सदगुरु नाम ठिकाना है...।

गौतम सर के मित्रों और शिष्यों की रागात्मक संवेदनाएँ साहित्य सृजन की नयी भूमि तैयार करेंगी, इसी मनोकामना के साथ उद्‌गीत का यह प्रथम अंक आप सभी सहृदय पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। भावातिरेक में जिन भी रचनाकारों के काव्यांश इस अंक के लेखकों की अभिव्यक्ति का आश्रय बने हैं, उन सभी के प्रति हृदय से आभार!

–वीरेन्द्र भारद्वाज

●

गौतम सर के बारे में

डॉ. रमेश गौतम का जन्म 15 अगस्त 1950 में अपने ननिहाल अलीगढ़ में हुआ, इसलिए वे प्रायः गर्व से कहते थे कि मैं अलीगढ़ का हूँ।

अपनी प्रारम्भिक शिक्षा डॉ. गौतम ने सर्व प्रथम शकूर बस्ती, रानीबाग के सरकारी विद्यालय से प्रारम्भ की, तत्पश्चात् राणा प्रताप बाग के सरकारी स्कूल में पढ़ाई करने के उपरान्त उन्होंने अपनी 5वीं कक्षा के बाद की पढ़ाई कमलानगर के बिड़ला हायर सेकंडरी स्कूल से की। हायर सेकंडरी में बहुत अच्छे अंकों से ग्यारहवीं कक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् बी.ए. करने के लिए उन्होंने दिल्ली यूनिवर्सिटी के हंसराज कॉलेज में दाखिला लिया। वहाँ बी.ए. ऑनर्स (हिन्दी) के साथ-साथ एन.सी.सी. में विशेष दक्षता का परिचय दिया। एन.सी.सी. के सभी कार्यक्रमों में उनकी सक्रिय भागीदारी रही। बहुत अच्छे अंकों से बी.ए ऑनर्स परीक्षा पास करने के अनन्तर जब वे रामजस कॉलेज में प्रवेश लेने के लिए जैसे ही बाहर के गेट से अन्दर प्रवेश कर रहे थे, तभी उनके मन में यह संकल्प उठा कि मैं इसी कॉलेज में प्रवक्ता पद पर नियुक्ति के लिए प्रयत्नशील रहूँगा। ईश्वर ने उनकी इस अदम्य इच्छा को साकार किया। 1972 से लेकर 1991 नवम्बर तक वे रामजस कॉलेज में पढ़ाते रहे। इसी बीच उन्होंने 1978 में दिल्ली विश्वविद्यालय से पहले पी.एच.डी. की। तत्पश्चात् 1987 में लखनऊ विश्वविद्यालय से डी.लिट्. की उपाधि प्राप्त की। रामजस कॉलेज में डॉ. गौतम का आत्मीयता का दायरा काफी विशद रहा। हिन्दी विभाग के साथ-साथ प्रायः अन्य विभाग के शिक्षकों के साथ उनकी बहुत अच्छी मित्रता भी रही और एक समझ भी। अपने सभी सहयोगियों के साथ उनके सम्बन्ध इतने प्रगाढ़ रहे कि 1991 में हिन्दी विभाग में नियुक्ति के पश्चात् भी रामजस कॉलेज से उनकी आत्मीयता यथावत् बनी रही, इसीलिए वे रामजस कॉलेज को अपना 'मायका' मानते थे।

विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग में वे दो बार तीन-तीन वर्ष के लिए विभागाध्यक्ष बने। विभागाध्यक्ष रहते हुए उन्होंने हिन्दी-विभाग को एक विशिष्ट पहचान प्रदान की। पहला क्रान्तिकारी कदम डॉ. गौतम ने जो उठाया, वह था पाठ्यक्रम में समयानुसार परिवर्त्तन करना। इसके लिए उन्होंने एक 'टीमवर्क' की तरह कार्य किया। सभी सहयोगियों को साथ लेकर, हिन्दी जगत के लिए एक विस्तृत आयाम क्षेत्र को अपनाया। हिन्दी में पहला क्रान्तिकारी कार्य जो सम्पन्न किया गया, वह था कम्प्यूटर को पाठ्यक्रम में स्थान देना। हिन्दी का विद्यार्थी वर्तमान के परिवर्तनशील समाज में कहीं भी हीनता ग्रन्थि का अनुभव न करे। इसी सोच के साथ हिन्दी साहित्य के मूल रूप को अक्षुण्ण रखते हुए उसे व्यवहारिक धरातल से जोड़ा, जिसके सुखद परिणाम हम सभी के सामने हैं। पाठ्यक्रम में यह परिवर्तन का क्रम दो बार रहा और दोनों बार संघर्ष सहते हुए भी हिन्दी के विकास के लिए, हिन्दी जगत् के हित को साधने में डॉ. गौतम ने कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी। पूरी निष्ठा और तन्मयता के साथ उनके सहयोगियों के साथ-साथ सर्वाधिक श्रेय जाता है उनके प्रिय विद्यार्थियों को जो कि विभिन्न कॉलेजों में प्रवक्ता पद पर कार्यरत हैं यह बहुत की बृहद योजना थी परन्तु डॉ. गौतम का अपने छात्रों के प्रति अनन्य हितभाव, प्रेम और विश्वास का ऐसा मजबूत आधार था, जिसने इस अत्यन्त ही चुनौतीपूर्ण परिवर्तन को साकार किया है। डॉ. गौतम अपने छात्रों में अत्यन्त ही लोकप्रिय थे, उसका सबसे बड़ा कारण यह है कि उनका अपने छात्रों के प्रति अनन्य आत्मीय भाव रहा। प्रायः सभी छात्र जो कि विभिन्न कॉलेजों में अब सम्मानित प्राध्यापक हैं वे सभी डॉ. गौतम में एक अभिभावक, एक गुरु की छवि देखते हैं। ऐसा गुरु जो अपने शिष्यों के श्रेय के विषय में ही सोचे, यह बहुत ही दुर्लभ है। आज के जीवन को देखते हुए डॉ. गौतम का व्यक्तित्व गुरु का साक्षात् आदर्श रूप था। उनके इस वटवृक्ष-सरीखे व्यक्तित्व के आत्मीयता के दायरे में दिल्ली विश्वविद्यालय के सभी कॉलेजों में तो देखते ही हैं, इसके साथ-साथ उनका यह गौरवपूर्ण प्रभाव सम्पूर्ण भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों के हिन्दी-विभागों में देखा जा सकता है। अपने प्रिय छात्रों के लिए वे सदैव तत्पर रहते थे। एक शिक्षक के रूप में डॉ. गौतम का व्यक्तित्व अद्भुत रहा है। अपनी कक्षा में सदैव समय पर जाने के साथ-साथ एक अनुशासन का भी उन्होंने उसी प्रकार से पालन किया। वे एक मर्यादित आचरण के साथ-साथ वाग्मि भी थे। कम बोलना और बिना कहे चुपचाप अपने छात्रों का कार्य पूर्ण करना, सभी को सम्मानित दृष्टि से देखना, व्यवहार और आचरण में पूर्ण सन्तुलन को बना कर रखना, प्रत्येक समय छात्रों के लिए उपलब्ध रहना, ये सभी उनके उदात्त व्यक्तित्व में देखा जा सकता है।

उनकी दर्जनों लिखी पुस्तकें हैं, जो दिल्ली विश्वविद्यालय के लिए ही नहीं अपितु समस्त हिन्दी जगत के लिए बहुत बड़ी पूँजी है। डॉ. गौतम की पुस्तकें मानों उनके अपने व्यक्तित्व का साकार आईना हैं। नाट्य जगत में शायद ही कोई ऐसा छात्र होगा जिसने डॉ. गौतम की इस अपार ज्ञान सम्पदा का भरपूर लाभ अर्जित न किया हो। प्रत्येक पुस्तक अपने आप में अभिनव ज्ञान के नये-नये आयाम से परिपूर्ण है। जैसा उनका व्यक्तित्व उदात्त और मर्यादित रहा है वैसी ही झलक उनके नाट्य संसार में प्रयुक्त भाषा की रही है।

हिन्दी-विभाग में कार्यरत रहते हुए भी सेवानिवृत्ति से पूर्व तीन वर्ष तक वे के दिल्ली विश्वविद्यालय के जीवन पर्यन्त शिक्षा संस्थान डायरेक्टर पद पर अपनी सेवा देते रहे। डॉ. गौतम ने वहाँ भी अपने प्रतिभा कौशल के साथ-साथ अपने सहयोगियों के सहयोग के साथ मिलकर अपनी लग्न और समर्पित भावना का परिचय दिया। हिन्दी के अतिरिक्त राजनीतिशास्त्र, इतिहास, अर्थशास्त्र एवं समाजशास्त्र की पुस्तकों की हिन्दी भाषा में उपलब्धता का अत्यन्त ही कठिन कार्य निश्चित समयबद्ध ढंग से सम्पन्न किया। सभी विषय के ई-पाठ तैयार करवाना भी बहुत ही परिश्रम से परिपूर्ण कार्य उन्होंने किया। वे सब

के सहयोग को अपने हृदय में अनुभव करते थे, जिसका प्रभाव सभी के सम्मानित आचरण में देखा जा सकता है। डॉ. गौतम का योगदान इतना अधिक है जो कथन की सीमा से अतीत है। उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि जिसमें उन्हें पूर्ण सुख की अनुभूति होती थी—वह थी उनसे शिक्षा अर्जित करने वाले छात्र जब ऊँचे-ऊँचे पदों पर पहुँचते थे—तब उन्हें आत्मीयता जन्य सुखद अनुभूति होती थी। तभी डॉ. गौतम गद्‌गद्‌ होकर कहते थे—

''मेरे शिष्यों ने मुझे चक्रवर्ती गुरु बनने का अहसास कराया है, चक्रवर्ती राजा क्या होते होंगे।''

●

''विद्या तीर्थे जगति।
नास्ति विद्या समं चक्षुनीति सत्य समं तपः
अनाभ्यासे विषं विद्या।
विद्या सर्वस्य भूषणम्।
मौनं ज्ञानं प्रयच्छति।'' (महाभारत)

नेपथ्य से...

यामिनी गौतम

प्रोफेसर गौतम जी की सेवा निवृत्ति के पश्चात् एक दिन घर में बैठकर बात-चीत करते हुए डॉ. वीरेन्द्र भारद्वाज ने अपने सर के आगे अपनी प्रबल इच्छा के साथ-साथ, सर के सभी प्रिय विद्यार्थियों के मनोभावों को रखते हुए कहा—''सर, मेरी और आपके सभी आत्मीय शिष्यों की भी यही इच्छा है कि सभी एक साथ एक सूत्र में बँध कर एक साहित्यिक मंच से जुड़ें।

ऐसे में सबसे अहम् कार्य था कि साहित्यिक संस्था को किस नाम से सम्बोधित किया जाये। निरन्तर सुविचार के परिणामस्वरूप एक नाम पर आकर सहमति बनी, वह नाम था 'उद्गीथ'। 'उद्गीथ' ही उद्गीत के रूप में प्रचलित हो गया। 'छांदोग्योपनिषद्' के सर्वथा प्रारम्भ में 'आदित्य' एवं 'उद्गीथ' तथा 'ऋक-साम' पर विस्तार से चर्चा की गयी है। प्रणव और उद्गीथ का अभेद बताते हुए कहा गया है 'अथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो यः प्रणवः स उद्गीथ इति।' निश्चय ही जो उद्गीथ है, वही प्रणव है तथा जो प्रणत्र है, वही उद्गीथ है।

निष्कर्षतः 'उद्गीथ' में 'प्रणव' एवं 'आदित्य' दोंनों का ही स्वरूप विद्यमान है। हमारा 'उद्गीत' मूलतः इसी 'उद्गीथ' की सारी विशेषताओं को अपने में समाहित किये हुए है।

आज हम 'उद्गीत' के माध्यम से सभी प्रबुद्ध और संस्कारित प्राध्यापक वर्ग के लिए अभिव्यक्ति के एक दर्पण को प्रारम्भ करने जा रहे हैं। आप सभी के 'सर' डॉ. गौतम के पास एक ऐसी गहन और पैनी सूक्ष्म दृष्टि थी, जो साहित्य को सदैव वर्तमान के तराजू पर तोल कर देखती थी। बहुत-बहुत आगे की घटित होने वाली घटनाओं के वे वर्तमान में साक्षी बन कर रहे। उनकी लेखनी की धार बड़ी ही स्पष्ट और अनाविल रही है। नाटकों के पढ़ने-पढ़ाने का उनका नजरिया एक अलग पहचान के साथ नाट्य आलोचना से मजबूती से जुड़ा हुआ है। यहाँ तक कि उनकी लगभग 30 के आस-पास नाट्य पुस्तकों के प्रत्येक शीर्षक में ही नाटक की मूल संवेदना और उसके माध्यम से आगामी प्रभाव चेतना को साथ-साथ देखा जा सकता है। अत्यंत ही सुविचारित दृष्टि से एक नयी वर्तमान स्थिति को उनके प्रत्येक रचना संसार में देखा जा सकता है। इतना विशद और समृद्ध नाट्य आलोचना का विस्तार होते हुए भी डॉ. गौतम ने अपने आपको न कभी प्रचारित किया न किसी विज्ञापन के द्वारा अपना प्रभाव प्रकट किया। मैं कह सकती हूँ कि वे सरस्वती के मौन उपासक थे और आत्म प्रख्यापन से कोसों दूर।

आज गौतम जी द्वारा प्रदत्त 'उद्गीत' ('उद्गीथ') का यह लघु प्रयास हम प्रारम्भ करने जा रहे है, आशा है इसमें आदित्य जैसा प्रकाश हो और प्रणव की शान्ति पूर्ण, हृदय को शान्त करने वाली ध्वनि की अनुगूँज भी समाहित हो। गौतम जी का आशीर्वाद अदृश्य रूप में सदैव हम सभी के साथ रहेगा और प्रेरणा भी देता रहेगा।

●

"स्वस्ति पन्थामनुचरेम्" (ऋग्वेद)
(हम कल्याण मार्ग के पथिक हों)

प्रो. रमेश गौतम : नाट्य चिन्तन को समर्पित जीवन

मीरा कांत

एक प्रतिबद्धता के साथ आजीवन नाट्यालोचना पर एकाग्र रहने वाले प्रतिष्ठित नाट्य चिन्तक प्रो. रमेश गौतम भले ही आज हमारे बीच नहीं हैं पर अपने अनगिनत लेखों, भाषणों और पुस्तकों के माध्यम से जो नाट्य चेतना व रंग दृष्टि वे हिन्दी नाट्य जगत को दे गये वह उन्हें आगामी जाने कितने वर्षों व दशकों तक नाट्य प्रेमियों व विद्यार्थियों के बीच जीवित रखेगी। यह सोचकर सुकून मिलता है कि जीवन-भर प्रो. गौतम ने जिस दृश्य सम्प्रेषण की शक्ति को साधा, जिस सृजनात्मकता और नाट्य सृजन का विश्लेषण-विवेचन किया तथा रंगमंच की जिस अवधारणात्मक शब्दावली पर काम किया, उस सबके माध्यम से आज भी वे हमारे बीच मौजूद हैं तथा भविष्य में भी रहेगें।

नाट्य जगत के जाने-माने विद्वान प्रोफेसर गौतम से जब भी भेंट हुई दिल्ली विश्वविद्यालय या उसके किसी महाविद्यालय द्वारा नाटक पर आयोजित किसी गोष्ठी या सेमिनार में हुई। वे प्रायः कार्यक्रम या सत्र के अध्यक्ष होते थे और मैं वक्ता। उस दौरान मैंने पाया कि उनका व्यक्तित्व जितना तेजस्वी था उतना ही अनुशासनप्रिय और स्फूर्ति से भरा था। नाटकों पर अपने विश्लेषणपरक व रचनात्मक विचार वे विद्यार्थी केन्द्रित एप्रोच के साथ प्रस्तुत करते थे। यह एप्रोच वहाँ बैठे युवा श्रोताओं को उनसे व उनके विचारों से प्रायः बहुत सहजता से जोड़ देती थी। उन विद्यार्थियों के चेहरों, उनकी आँखों में यह सम्बद्धता देखी जा सकती थी। ऐसे में वहाँ उस विषय विशेष पर संवाद का माहौल स्वतः ही तैयार हो जाता था।

ऐसे कार्यक्रमों के बाद प्रायः चाय-नाश्ता रखा जाता है। इस जलपान गतिविधि में उनकी कोई रुचि नहीं होती थी। शायद यह उनका अनुशासनप्रिय व्यक्तित्व ही था कि कार्यक्रम के बाद अपनी डायरी या साथ लायी पठन-सामग्री उठाकर वे तीर की तरह निकल जाते थे।

स्वतन्त्रता से पहले और उसके बाद के हिन्दी नाटकों की 'बहुरंगी' यात्रा पर प्रो. रमेश गौतम ने समय-समय पर कई लेख व निबन्ध लिखे। ये असंख्य लेख उनकी पुस्तकों में संकलित हैं। ये पुस्तकें असल में नाटकों पर उनका संवेदनात्मक चिन्तन है जहाँ उनके विचार प्रायः विश्लेषण की बाँह थाम कर सधे कदमों से धीरे-धीरे आगे बढ़ते नज़र आते हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जयशंकर प्रसाद, भीष्म साहनी, मोहन राकेश आदि कई सजग व कालजयी नाटककारों के सृजनात्मक संसार का अगर उन्होंने मानचित्र प्रस्तुत किया है तो उनके नाटकों की गहराई में उतर कर यह भी दिखाया है कि 'काल के कंधे पर खड़े होकर कैसे वे आज भी अपनी अर्थवत्ता' प्रमाणित करते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र उनके प्रिय नाटककार थे। उनके नाटकों की संवेदना - संरचना - रंगदृष्टि सबको समेटते हुए अपनी समीक्षापरक दृष्टि से समग्रता में प्रो. गौतम ने शुरू से ही बहुत लिखा और खूब मन से लिखा। यह भी एक संयोग है कि उनके जाने के बाद भारतेन्दु जी के तीन नाटकों पर उनकी तीन पुस्तकें प्रकाशित होकर आयीं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र उनके लिए समय बोध के ऐसे पहले आधुनिक नाटककार थे जिनके नाटक समय से पार जाकर आज भी प्रासंगिक हैं। हम उनमें समय-समय पर अपने समाज का चेहरा देखते रहे हैं। मुझे महाविद्यालयों में प्रो. गौतम को सुनने का अवसर मिला है। भारतेन्दु जी के नाटकों पर वे एक कनविक्शन के साथ बोलते थे। अच्छा लगता था यह देखकर कि वे अपना प्रबल मत रखते हैं।

भारतेन्दु जी अपने नाटकों में चाहे मिथक-प्रतीकों का इस्तेमाल कर रहे हों या समाज का व्यंग्यात्मक विश्लेषण, उनका ध्येय एक ही होता था और वह था जनमानस को जागरूक बनाना, सचेत करना। प्रो. गौतम ने लिखा है कि उस संक्रांति युग में भारतेन्दु ने ब्रिटिश सत्ता को शब्दों की मार दी। कितना सही है यह! एक लेखक अपना विरोध, अपना गुस्सा शब्दों के माध्यम से ही प्रकट करता है। वही हथियार हैं उसके। फिर भारतेन्दु जी की रंग चेतना तो पूरी तरह से लोकधर्मिता से ही जुड़ी थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटकों पर लिखी गयीं प्रो. गौतम की ये तीनों पुस्तकें नाट्य जगत में महत्वपूर्ण योगदान हैं। इनसे आने वाली जाने कितनी पीढ़ियाँ लाभान्वित होंगी।

रंग जगत में समय-समय पर लोगों को मौलिक नाटकों की कमी खलती रहती है। अक्सर रंगकर्मी इसकी चर्चा करते हैं, इस पर बहसें आयोजित की जाती हैं; पर मेरा मानना है कि नाट्य जगत या रंग जगत में अगर सही मायने में कोई कमी है तो वह है अच्छी और सार्थक समीक्षा की कमी। आज हमारे पास ऐसे नाट्य समीक्षक बहुत कम हैं जो एक ठहराव के साथ समग्रता में नाटक की पड़ताल करें, नाटक में निहित समय की मनःस्थिति को, उसके ताप को मापें। समसामयिक और ऐतिहासिक परिदृश्य की कसौटी पर उसे तोलें और फिर निष्पक्ष दृष्टि से उसका मूल्यांकन करे।

समीक्षा के नाम पर नाटकों या उनकी प्रस्तुतियों पर अखबारों में छपने वाले लेख आजकल रिव्यू शैली में लिखे जा रहे हैं। यहाँ न समग्रता होती है, न ठहराव। इस सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि प्रो. गौतम की पुस्तकें नाट्यालोचना की दुनिया में निरन्तर उल्लेखनीय रही हैं और इन्होंने अपना अलग स्थान बनाया है।

नाट्यविद प्रो. रमेश गौतम ने नाटकों पर, नाटक के इतिहास पर तो आजीवन कार्य किया ही उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय को अनगिनत प्रतिभावान साहित्य अध्येता दिये, शिक्षकों को तैयार किया। सही अर्थों में वे असंख्य विद्यार्थियों के गुरुवर थे। उम्मीद है कि नाट्य साहित्य के अनुरागी उनके ये शिष्य उनकी लगन, उनकी मेहनत के इस सिलसिले को, इस परम्परा को जारी रखेंगे। नाट्य समीक्षा के क्षेत्र में उन्हीं की तरह कर्मठता से सक्रिय होंगे और इस मशाल को आगे ले जायेंगे बहुत आगे।

सुप्रसिद्ध साहित्यकार

●

दोस्तों के दोस्त

सुधीश पचौरी

यह 2002 के आसपास की बात होगी। एक दिन गौतम जी का फोन आया कि आप हमारे छात्रों को मीडिया और रचनात्मक लेखन वाला पेपर पढा सकें तो अच्छा हो।

मैं डॉ. जाकिर हुसैन पी.जी. ईवनिंग कालेज में 1970 से हिन्दी पढ़ा रहा था। हमारे कालेज में भी कई बरस से एम.ए. हिन्दी की कक्षाएँ लगने लगी थीं जिनको विभाग के साथियों के साथ मैं भी पढ़ाया करता था। लेकिन विश्वविद्यालय के विभाग में पढ़ाने के लिए मुझे किसी ने कभी नहीं कहा।

यह सन् 2002 के आसपास की बात होगी जब विभाग में कोई प्रोफेसर नहीं था। सब रीडर थे। शायद सबसे सीनियर होने के नाते वे दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष के रूप में काम कर रहे थे।

यहीं प्रसंगवश बता दूँ कि इससे पहले उनसे मेरा कोई सीधा परिचय तक न था। तब भी उनका वह फोन आया।

इस फोन से कुछ समय पहले एक बात और हुई:

हिन्दी विभाग नये पाठ्यक्रम तैयार कर रहा था उसमें जनसंचार माध्यम सम्बन्धी पाठ्यक्रम बनाने का प्रस्ताव था और सभी कॉलेजों के हिन्दी विभागों से सुझाव माँगे गये थे। यह पहला मौका था जब विश्वविद्यालय का हिन्दी विभाग कॉलेजों के विभागों से सुझाव माँग रहा था हमारे कॉलेज के हिन्दी विभाग के कई साथियों ने कहा कि हम क्यों कोई सुझाव दें...विश्वविद्यालय का विभाग तो अपनी मन-मरजी से ही पाठ्यक्रम बनाता है तो हम क्यों मेहनत करें... जबकि मेरा कहना था कि हमें पाठ्यक्रमों के बारे में अपने सुझाव अवश्य देने चाहिए जनसंचार माध्यमों का मामला है। इस विषय पर अब तक किसी हिन्दी विभाग में ऐसा पाठ्यक्रम नहीं है जिसके आधार पर छात्रों को जनसंचार माध्यम व रचनात्मक लेखन के बारे में पढ़ाया जा सके... मैंने अपने सहकर्मियों से कहा कि पहली बार हिन्दी विभाग ने एक जनतांत्रिक प्रकिया अपनायी है सब कॉलेजों से पूछ रहे हैं हमें इसका स्वागत करना चाहिए और अपने सुझाव जरूर भेजने चाहिए।

तब अकेले नई दिल्ली के 'आल इडिया इंस्टीट्यूट आफ मास कम्यूनिकेशन' में मीडिया पढ़ाया जाता था। मैंने सुझाव दिया कि उसके पाठ्यक्रम देख समझकर हम हिन्दी के अपने पाठ्यक्रम तैयार कर सकते हैं। ऐसे पाठ्यक्रम पढ़कर छात्र मीडिया में काम करने लायक हो सकते हैं। अब तक हिन्दी वालों के लिए हिन्दी की मास्टरी ही एक विकल्प है। इस पाठ्यक्रम को पढ़कर वे मीडिया कर्म व रचनात्मक लेखन कला में भी दक्षता प्राप्त कर सकेंगे। प्रोफेशनल मीडियाकर्मी व राइटर बन सकेंगे...आप लोगों की सहमति हो तो मैं इस पाठयक्रम की रूप रेखा बनाकर दे सकता हूँ बाद में आप उस पर विचार कर लें... कुछ 'ना नुकर' के बाद मुझे इसे बनाने का काम दे दिया गया। मैंने भी 'मास कम्यूनिकेशन' कोर्स देखकर हिन्दी में ऐसे पाठ्यक्रम की एक रूपरेखा बना दी जिसे विभाग की एक मीटिंग ने उसे संस्तुत कर दिया और कॉलेज के ज़रिये उसे दिल्ली विवि के हिन्दी विभाग को भिजवा दिया!

बहरहाल, जब उनका फोन आया तो एक दिन मैं विश्वविद्यालय के विभाग गया। वहीं गौतम जी ने बताया कि हमारे दिए पाठ्यक्रम को विभाग ने कुछ हेरफेर के साथ स्वीकार कर लिया है। फिर कहा कि मुझे ये क्लास इस नंबर रूम में इतने बजे सप्ताह में एक बार पढ़ानी है। मैं उस क्लास को पढ़ाने लगा। उसके बाद उन्होंने मुझे मुक्तिबोध की कविताएँ भी पढ़ाने को दीं जिनको मैंने पढ़ाया।

गौतम जी से वह मेरी पहली मुलाकात थी।

हुआ यों कि उस दिन मैं विभाग की ओर जा रहा था और वे शायद अपनी कार पार्क करके विभाग की ओर लंबे कदमों से जा रहे थे। वे जैसे ही बराबर आये, उन्होंने मुझे पहचान लिया और कहा—पचौरी जी नमस्कार... मैंने देखा गोरा रंग लंबा कद सफारी सूट हाथ में बैग पैरों में पालिश किये जूते...

मैंने जबाव में नमस्कार करते हुए कहा—आप गौतम जी ही हैं ना... उन्होंने मुस्कुराकर 'हां' सी की और अपने कदम धीमे कर वे मेरे साथ-साथ चलने लगे।

यह सिलसिला 2004 तक चला। 2004 में मैं विभाग में प्रोफेसर के पद पर सलेक्ट हो गया। तब पालीवाल जी अध्यक्ष थे। मैंने उन्हीं की अध्यक्षता में और कई प्रोफसरों रीडरों के साथ ज्वॉइन किया। ज्वॉइनिंग करने में गौतम जी ने पूरी मदद की। इसी सलेक्शन में वे भी प्रोफेसर हुए। कुछ दिन के बाद पालीवाल जी जैसे ही रिटायर हुए वे अध्यक्ष हो गये।

इसी प्रक्रिया में मुझे उनकी कार्यशैली का पता चला। वे हर काम को नियमानुसार करते। नियमित तरीके से विभाग की मीटिंगें बुलाना, उनकी मिनिट्स लिखवाना, सबकी सहूलयित के हिसाब से विभाग का 'वर्क लोड' व 'टाइम टेबिल' तय करना! रिसर्च कमेटी आदि से लेकर तमाम तरह की अन्य कमेटियों को वे सक्रिय रखते। क्या करना है क्या नहीं, किस स्थिति मे क्या हो सकता है क्या नहीं, वे सब बताते।

वे मुझे अपना बड़ा भाई कहते और मेरी राय की कद्र करते।

एक दिन उन्होंने बताया कि यूजीसी विभागों को 'एडवांस स्टडीज़' करने के लिए प्रेरित करती है उनको बड़े 'रिसर्च प्रोजेक्ट' देती है। उसके लिए फंड भी देती है। हम इतने लोग हैं। हमें कोई योजना बनानी ही चाहिए और यूजीसी को रिसर्च के लिए एक प्रोजेक्ट का प्रस्ताव देना चाहिए कि ताकि हमारे विभाग को 'प्रोजेक्ट' मिल जाए और उसे सभी साथियों की प्रतिभा का पूरा लाभ उसे मिल जाये।

जब मैंने आइडिया दिया कि सर हिन्दी साहित्य के इतिहास के पुनर्लेखन की जरूरत है। इस दिशा में अब तक कहीं किसी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग ने काम नहीं किया है क्यों न हम इस प्रोजेक्ट को लेने की तैयारी करें।

फिर यह विचार विभाग की कमेटी में गया वहाँ से संस्तुत हुआ और उन्होंने मुझसे इसकी पूरी प्रस्तावना व रूपरेखा बनाने को कहा जिसका एक रफ ड्राफ्ट मैंने एक एक महीने में बना दिया.जिस पर एक दिन विभाग में चर्चा हुई और उसे विवि के माध्यम से यूजीसी को भेज दिया गया फिर एक दिन मैं और गौतम जी यूजीसी में 'हिन्दी साहित्य के इतिहास का पुनर्लेखन' की प्रस्तावना को जमा कर आये। कुछ दिन बाद ही यूजीसी की एक एक्सपर्ट कमेटी के आगे हमने अपने इस प्रस्ताव को सफलतापूर्वक 'डिफेंड' किया और वो प्रोजेक्ट हमें मिल गया।

मिलते ही विभाग का कद बढ़ गया उन विभागों को विशेष माना जाता था जिनको ऐसी प्रोजेक्ट मिलती थीं इतिहास विभाग में ऐसी प्रोजेक्ट अरसे से चल रही थी। उसका बोर्ड भी लगा था।

प्रोजेक्ट के लिए एक 'रिसर्च असिस्टेंट' भी मिलता जिसे विभाग एक प्रक्रिया के तहत नियुक्त करता। इस प्रोजेक्ट से पहले 'रिसर्च असिस्टेंट' के रूप में राजकुमार को नियुक्त किया गया।

आगे के दिनों में इस योजना के तहत हमने हिन्दी साहित्य के कई विद्वानों को बुलाकर उनके लेक्चर कराये जिनको लिपि बद्ध कर सीमित संख्या में छपवाया गया। हर बरस यूजीसी योजना की प्रगति का आकलन करने के लिए एक एक्सपर्ट कमेटी भेजती जिसकी संस्तुति से प्रोजेक्ट आगे बढ़ती।

वे 2004 से 2007 तीन साल तक अध्यक्ष रहे फिर मैं अध्यक्ष बना। अपने अध्यक्षकाल के दौरान गौतम जी ने मेरी हर कदम पर मदद की। उनको विभाग चलाने का पुराना अनुभव था। वे सभी नियमों को बखूबी जानते थे मैं अक्सर उनसे सलाह लिया करता यद्यपि मैं जिसे सही समझता उसे ही करता क्योंकि मेरे पास भी कॉलेज का अनुभव था। हम सभी काम विश्वविद्यालय के नियमों के तहत ही करते यों एक दूसरे से राय-मश्विरा करते और सारे विभाग की सहमति लेकर ही काम करते। इसीलिए हर आरटीआई का सही जबाव देने में कामयाब रहे।

इसी दौर में विभाग में 'राजनीति' शुरू हुई और इस कदर सुनियोजित तरीके से हुई कि यहाँ उसका 'जिक्र' करना भी मुझे उचित नहीं लगता। लेकिन इतना अवश्य कहूँगा कि इस तरह 'राजनीति' ही विभागों को बर्बाद करती है। ऐसे लोग जितनी प्रतिभा और उर्जा इस तरह की उठापटक में लगाते हैं अगर वे उसे हिन्दी साहित्य के अध्ययन में लगाएँ तो हिन्दी विभाग कहाँ से कहाँ पहुंचें!

मेरी अध्यक्षता का कार्यकाल 2010 में पूरा हुआ। तभी नियुक्त हुए नये कुलपति आदरणीय प्रो. दिनेश सिंह जी ने मुझे 'डीन ऑफ कालेजेज' बना दिया और इस तरह एक अध्यापक के रूप में विभाग से मेरा नाता भी टूट गया।

अपने गौतम जी भी विश्वविद्यालय प्रशासन को अपनी सेवाएँ देते रहे। वे बहुत सी योजनाओं और 'चार साल के स्नातक पाठ्यक्रम' के लिए हिन्दी की पाठ्य सामग्री बनाने में मदद करते रहे। वे विश्वविद्यालय प्रशासन की वृहत्तर टीम की तरह काम करते रहे।

उसके बाद मैं और वे रिटायर हो गये तो भी हमारा सम्पर्क बना रहा। गाहे-ब-गाहे हम लोग फोन पर बात कर लिया करते। इस दौरान दो तीन बार वो मेरे घर आये मैं भी एक बार क्षमा के साथ उनके रोहिणी स्थित घर गया जहाँ उनकी माताजी के दर्शन हुए वे पतली दुबली लेकिन बेहद गोरी महिला थी। उनकी पत्नी यामिनी जी बेहद आत्मीयता से मिली उन्होंने हमें माता जी व अपने हाथ का बना सुस्वादु भोजन भी कराया।

ये ऐसे ही चलता अगर कोरोना न आया होता। इस दौर में वे जब तक दिल्ली रहे एकाध बार हमारे बीच बात भी हुई।

कोरोना काल में अपनी पेंशन के लिए जब मैं अपना 'लाइफ सर्टीफिकेट' जमा करने की स्थिति में नहीं था और जब मैंने उनसे अपनी परेशानी कही तो वे छूटते ही बोले कि डाक्टर साहब आप घर रहें मैं अपना एक शिष्य भेज दूँगा जो आपका कागज बैंक में जमा करा देगा आप चिन्ता न करें...

वे ऐसे ही थे। वे हमेशा मेरे हितैषी रहे।

लेकिन जब एक दिन मेरे पुराने सहकर्मी और गौतम जी के प्रिय छात्र प्रोफेसर अनिल शर्मा जी का फोन आया और उन्होंने बताया कि गौतम सर का निधन हो गया है तो मेरा दिल ही बैठ गया। ऐसा लगा मेरा एक बाजू टूट गया। ऐसा उदार हृदय किसके पास है।

वे अब भी याद आते रहते हैं। उनका न होना खलता है।

वे एक बेहद भरोसेमंद व्यक्ति थे अगर उन्होंने किसी बात के लिए हाँ कहा तो निभाया और विभाग में मेरा साथ हमेशा निभाया।

उनको हिन्दी विभाग के इतिहास की अच्छी जानकारी थी। कब, किसने क्या किया, इसके बारे में वे अक्सर बताया करते थे कि उनका 'स्पेशलाइजेशन' रंगमंच और नाटकों में था। वे इस क्षेत्र के अच्छे विद्वान माने जाते थे।

कला संकाय के अपने कमरे में जब बैठे होते तो किसी न किसी काम में बिजी होते। उनके पास ही मेरा कमरा था। उनका कमरा बेहद व्यवस्थित होता। किताबें कागजात व फाइलें करीने से लगी होतीं।

वे पक्के शाकाहारी थे। अपने घर से खाना लाते। पानी की बोतल तक लाते। फिर विभाग में उस वक्त मौजूद सभी साथियों के साथ बैठ वे अपना खाना दूसरे साथियों को ऑफर करते और उनसे भी लेते। फिर वे अपने बैग में कुछ मीठी चाकलेट नुमा निकालते और सबको देते।

अगर वे न होते तो मैं भी शायद हिन्दी विभाग में न होता! उनसे पहले इतने अध्यक्ष हो गये। उन्होंने औरों को एम.ए. पढ़ाने के लिए क्लासें दीं लेकिन मुझे किसी ने न पूछा। पूछा तो सिर्फ गौतम जी ने पूछा।

उन्होंने मुझे एम.ए. क्लासें पढ़ाने को दीं जबकि मैं उनको पर्सनली जानता तक नहीं था। उनके विचार अलग थे मेरे अलग फिर भी उन्होंने हमारे कॉलेज द्वारा प्रस्तावित यू.जी. पाठ्यक्रम का सम्मान किया बल्कि मुझे फोन करके क्लास लेने का आग्रह किया। यह अनुभव मेरे काम आया।

वे एक बेहद भरोसेमंद व्यक्ति थे और दोस्तों के दोस्त थे। कठिन से कठिन स्थिति में भी वे किसी के लिए कभी कटु नहीं बोले। किसी के प्रति बैर भाव नहीं रखा। वे एक कर्मठ और बेहद सज्जन व्यक्ति थे। उनका यों चले जाना मुझे अब भी कचोटता है।

पूर्व उपकुलपति
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

गुरु रूठे नहीं ठौर

वीरेंद्र भारद्वाज

गुरु-मिलन की बेला

ज़िंदगी के सारे जज़्बात एक तरफ और गुरु से वो पहली मुलाक़ात एक तरफ़...!

यह अगस्त 1992 की घटना है।

"आओ मैं तुम्हें किसी से मिलवाता हूँ।"

"किससे?"

"अरे आओ तो। नये सर आये हैं विभाग में"

"अच्छा। कहाँ हैं?"

"आओ।" मेरे सहपाठी अरुण भारद्वाज मेरा हाथ पकड़े हुए थे, हम आर्टस फैकल्टी के गलियारे की ओर बढ़ रहे थे।"

"सर नमस्कार। ये वीरेन्द्र जी हैं, मेरे मित्र भी हैं और क्लासमेट भी।" मैंने नोटिस किया कि सर हल्की सी मुस्कान के साथ चौकन्नी निगाहों से मेरी ओर देख रहे थे।

"नमस्कार सर! कहते हुए मैं उनके कदमों की ओर झुका।"

"अरे! अरे!" कहते हुए अनायास ही सर ने हाथ मिलाने के लिए आगे बढ़ाया।

और अगले ही पल मेरा हाथ सर के हाथ में था। यह एक दम अप्रत्याशित था गैर नियोजित था, सहज होकर भी हिन्दी के गलियारों में उस जमाने के हिसाब से थोड़ा अटपटा था।

"क्या नाम बताया? वीरेन्द्र ना!"सर ने बात आगे बढ़ायी।

"जी सर!"

"अभी पी.एच.डी में दाखिला लेना है?"

"जी, सर"

"एम.फिल का क्या विषय था?"

"सर 'अग्निसागर संवेदना और शिल्प' यह श्याम सिंह शशि का प्रबंध काव्य है।"

"नाटक में कितनी रूचि है?"

"सर, मैं तो कविता में करना चाहता हूँ। आधुनिक कविता में और वो भी 'माइथोलोजिकल काव्य में'।"

''हूँ.... कुछ किताबें पढ़ो! और फिर मिलना!''

"जी सर।"

''नाटक पर भी सोच सकते हो। उसमें भी कई दृष्टिकोण से काम हो सकता है।''

''सर मैं तो कविता में ही इन्टरस्टेड हूँ।''

"ठीक है। ठीक है। मिलना फिर!"

"यस सर! नमस्कार।।"

साधारण से शब्दों के इस वार्तालाप में यद्यपि कोई खास बात दिखायी नहीं देती। लेकिन यह साधारण सी मुलाकात स्वयं प्रकृति के द्वारा किसी वटवृक्ष के अनायास बीजारोपण की वृहद घटना जैसी थी। जिसका बाह्य प्रभाव तत्काल तो उतना प्रकट नहीं होता, किन्तु विधि द्वारा निर्धारित अनेक योजनाओं का स्रोत यहाँ से फूटता है। गुरु शिष्य के मध्य मिलन की यह छोटी सी बातचीत, दिल्ली विश्वविद्यालय के इतिहास में गुरु-शिष्य के सम्बन्धों की, उनसे जुड़े किस्से कहानियों की नयी इबारत लिख रही थी।

आगे के समय में इस जोड़ी की चर्चा, अपनों ही नहीं गैर की महफिल में भी होनी लाज़िमी थी।

ईश्वर की इच्छा से एक सदगुरु की औघड़-अनाड़ी शिष्य पर दृष्टि पड़ चुकी थी। इश्क दबे पाँव आता है और सर चढ़कर बोलता है।

''मैं तो सर के साथ ही पी. एच. डी करूँगा।'' मैं लौटकर अपनी क्लासमेट राज को बता रहा था।

''कौन से सर के साथ?''

''अरे वही! नये सर आये हैं। क्या स्मार्ट हैं, ब्लू लाइंस वाली टी-शर्ट पहने थे। इतने प्यार से मिले कि मैंने तो तय कर लिया। पी.एच.डी करूँगा तो गौतम सर के साथ ही करूँगा।''

''अच्छा! अच्छा! 'रमेश गौतम सर', राज ने जानकारी को पुख्ता करने के अन्दाज़ में पूछा!''

''जी, मैडम।''

''हमें भी मिलवाओ सर से।''

''कल मिलवायेंगे आपको, आज तो शायद चले गये सर।'' मैंने अपनी ओर से बिना वजह खुद की शेखी बघारते हुए जवाब दिया!

× × ×

छः फुट से भी अधिक लम्बा कद, छरहरा शरीर, लंबी खड़ी नाक, मजबूत रंग, एक दम सफेद दंत पंक्तियाँ, क्लीन शेव। सफेद बैक ग्राउंड में उभरती चौकनी-परखती आँखे, पीछे की ओर एकदम तुरन्त-सँवारे हुए लंबे बाल, और उस पर हल्की आसमानी रंग की सफेद गोलाइयों की धारियों वाली कसके पेंट के नीचे दबायी गयी टी-शर्ट, नीली पेंट, चमकते पॉलिश किये गये काले शूज़'' एक बेहद आकर्षक व्यक्तित्व था सर का। विश्वविद्यालय में कई लोग उनके बाह्य व्यक्तित्व की तुलना अमिताभ बच्चन से करते थे।

''देखो वीरेन्द्र, यामिनी जी को दिखाओ जरा''—

एक दिन एक फोटो देखते हुए सर ने मुझसे कहा!

"जी सर!"

''मैडम देखो ज़रा! सर और अमिताभ बच्चन की एक फ्रेम में फोटो है। हिन्दी सिनेमा की सदी के महानायक के आगे दिल्ली विश्वविद्यालय के 'हिन्दी के हेड ऑफ द डिपार्टमेंट, डायरेक्टर लाइफ लॉंग लर्निंग' इक्कीस ही पड़ रहे हैं।"

"हाँ! हाँ! क्यूँ नहीं।"

मेरे हाथ से फोन लेकर सर की फोटो देखते हुए यामिनी मैम ने मुस्कुराते हुए कहा।

फिर हम तीनों देर तक खिलखिलाकर हँसते रहे।

दरअसल दिल्ली विश्वविद्यालय के एक कन्वोकेशन प्रोग्राम में सर और अमिताभ बच्चन की एक बेहद नजदीकी और आकर्षक फोटो कैमरे में कैद हुई थी। हम उसी फोटो को उस शाम सर के घर पर बैठकर देख रहे थे।

इस प्रकार सर से उस पहली मुलाक़ात के साथ जो स्नेह, समर्पण और परस्पर विश्वास की यात्रा शुरू हुई थी, वो एक कभी न ख़त्म होने वाली दास्तान है—

"कुछ इस तरह से शुरुआत हुई बंदगी की
खुलती चली गयीं, गिरअहें ज़िंदगी की"

तब से लेकर आज तक जब कभी भी ज़िंदगी ने 'जाना' या ज़माने ने 'पहचाना', तो वो सब सर के आशीर्वाद का ही चमत्कार था।

"तेरी आशिक़ी से पहले मुझे कौन जानता था,
तेरे नाम ने बना दी मेरी ज़िंदगी फ़साना।"

ज़िंदगी की भटकन खत्म हो रही थी, प्यासे राहगीर को कुंआ मिल चुका था।

अभी तक ज़िंदगी रास्ते के एक अनगढ़ पत्थर की मानिन्द बेवास्ता, बेमतलब, बेसबब इधर-उधर ठोकरें खा रही थी। कभी अर्श पर, कभी फर्श पर, कभी इसके दर, कभी उसके दर और कभी दर-बदर...। लेकिन अब भटकन खत्म हो रही थी। बूँद के लिए तरसते प्यासे राहगीर को साहिल ने फौलादी बाँहों का सहारा देकर अपने में समा लिया था।

गौतम सर सच में ही किसी के भी जीवन को बदल देने की सामर्थ्य रखने वाले गुरु थे।

× × × × × × ×

हिन्दी के परम हितैषी

यह 2004 के आस-पास की बात है। उन दिनों दिल्ली विश्वविद्यालय में तत्कालीन वाइस चांसलर प्रो. दीपक नैयर के नेतृत्व में 'एकेडमिक रिफॉर्म' की चर्चाएँ जोरों से चल रही थी। स्वयं दिल्ली विश्वविद्यालय शिक्षक संघ (डूटा : 1999-2001) ने अपनी ओर से सर्वसम्मति से शैक्षणिक सुधार सम्बन्धी रिपोर्ट तैयार की थी। स्वर्गीय डॉ. एस.एस. राठी उस समय डूटा के अध्यक्ष थे और मैं डूटा का सेक्रेटरी था। डूटा की पॉलिटिक्स में मेरे आगमन के पीछे, मेरे न चाहते हुए भी, समय और परिस्थितियों के मद्देनजर वह सर की एक रणनीतिक पहल थी।

स्मृति और कल्पना पर जोर देते हुए मुझे एक किस्सा याद आता है। प्रो. नैयर द्वारा सुझाये गये शैक्षणिक सुधारों की गाज सबसे अधिक भाषा और उसमें भी हिन्दी पर पड़ने वाली थी। एकेडमिक काउंसिल के एजेंडे में बी.ए. प्रोग्राम के द्वितीय वर्ष और तृतीय वर्ष के पाठ्यक्रम में हिन्दी की जगह फाउनडेशन कोर्स और एप्लीकेशन कोर्स जोड़ने प्रस्तावित हुए थे। हिन्दी शिक्षकों के वर्कलोड के चलते पूरे विश्वविद्यालय में विरोध अपने उफान पर था।

एन.डी.टी.एफ ने भी इसका विरोध करने की ठानी थी। एकेडमिक काउंसिल की मीटिंग से एक दिन पहले गौतम सर ने मुझे घर पर बुलाया।

"एकेडमिक काउंसिल में क्या करना है?" सर ने पूछा।

"सर, कड़ा विरोध करना है" मैंने कहा।

"फिर क्या होगा?"

"हम वैल में चले जायेंगे सर"

"होगा क्या? वहाँ तो मेजोरिटी से निर्णय हो जाएगा।"

"तो हम बाहर विरोध करेंगे वी.सी सर का"

"वो तो राजनीति है, वो तो और भी कर रहे हैं, तुम भी करो। लेकिन इस प्रक्रिया में हिन्दी का बड़ा नुकसान हो जाएगा यह तय मानो।"

"सर, फिर क्या करें?"

"एक काम करो, तुम अपनी ओर से कुछ प्रस्ताव पेश करो, एकेडमिक काउंसिल में"

और फिर सर ने मुझे समझाया, उसमें यामिनी मैडम ने जो साहित्यिक तड़का लगाया, उससे अगले दिन एकेडमिक काउंसिल की बहस का एक नया रूप उभर कर सामने आया। एकडेमिक काउंसिल के चेयरमैन के तौर पर जब वी.सी सर ने बी.ए प्रोग्राम के रिस्ट्रक्चर यानि रिफॉर्म का विषय विचार के लिए प्रस्तुत किया, तो उस समय विरोध का तीखा स्वर रखने वाले, एक ग्रुप के साथियों ने उस पर तुरन्त अपना 'डिसेंट' नोट करवाया। कुछ अन्य सदस्य साथियों ने घटते वर्कलोड की चिन्ता के बीच अपना विरोध दर्ज करवाया। वी. सी. के भीतरी तौर पर समर्थक दल ने भी दिखावे के लिए अपना

'डिसेंट' नोट जमा करवाया।

कुल मिलाकर शिक्षक संगठनों का प्रतिनिधित्व कर रहे लगभग सभी शिक्षक साथियों ने अपने आखिरी हथियार 'डिसेंट' का प्रयोग किया, किंतु उससे हिन्दी की स्थिति पर कोई सकारात्मक प्रभाव पड़ने वाला नहीं था। वह नदी में डूबते व्यक्ति को किनारे से आवाज़ लगाकर केवल यह सिद्ध करने का प्रयास था कि हम उसके डूबने-डूबोने के विरोधी थे।

मैंने सर के समझाये अनुसार दूसरी तरह से मोर्चा सँभाला...

'अध्यक्ष महोदय, मैं प्रारम्भ में ही आपका और सदन का ध्यान, भारतीय परम्परा में कला-साहित्य-संगीत का क्या महत्व है, इस ओर दिलाना चाहता हूँ- संस्कृत के हेड ऑफ द डिपार्टमेंट यहाँ बैठे हैं मैं भर्तृहरि के श्लोक का जिक्र करना चाहता हूँ–

साहित्य-संगीत कलाविहीनः साक्षात्पशुः
प्रच्छविषाणहीनः। तृणं न खादन्नपि जीवमानः
तद्भागधेयं परमं पशूनाम्।।

'वाह-वाह! बहुत खूब।' संस्कृत के विभागाध्यक्ष ने मेरी बात का तुरन्त बीच में ही समर्थन किया। उनकी इस अनपेक्षित और अप्रत्याशित सी तारीफ ने वाइस चांसलर का गुस्सा अचानक बढ़ा दिया।

उन्होंने तमतमाते सुर में तुरन्त बीच में हस्तक्षेप किया।

''डियर हेड ऑफ द डिपार्टमेंट, आइ एम स्टिल द चेयरमैन ऑफ दिस हाउस, नो नीड फॉर एनी अननेस्सरी इन्टरवेंशन, प्लीज़ माइंड इट।''

''अध्यक्ष महोदय, मैं आपकी इजाज़त से अपनी बात पूरी करना चाहता हूँ, 'प्लीज़ अलाऊ मी सर'' मैंने वाइस चांसलर का ध्यान फिर से अपनी ओर खींचते हुए बीच में टोका।

''यस वीरेन गो अहेड''

सर भर्तृहरि के इस श्लोक में कहा गया है कि- जिस को साहित्य, संगीत, कलाओं में रूचि नहीं होती, जिन्हें भाषा के सौन्दर्य, उसके चारुत्व, उसके काव्यत्व में आनन्द नहीं आता, वे मनुष्य सींग और पूंछ के बिना भी पशु समान ही है। मैं आशा करता हूँ कि इस सदन में साहित्य, संगीत और कलाओं के प्रति दुर्भाव रखने वाला एक भी सदस्य नहीं होगा। और आप तो अध्यक्ष महोदय कतई नहीं''

–मैंने यामिनी मैडम द्वारा सिखायी बमबारी को ठीक निशाने पर दागा था।

–''सभापति जी आप तो पाठ्यक्रम में आधुनिक दृष्टि से कुछ सुधार चाहते हैं, हमें इस पर कोई आपत्ति नहीं है। लेकिन सभी विषयों में समयानुकूल परिवर्तन हो जाये और सिर्फ हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं को इससे महरूम रखा जाए। यह तो आपका इरादा नहीं। मुझे विश्वास है कि आप या दिल्ली विश्वविद्यालय का यह सर्वोच्च एकेडमिक सदन हिन्दी के प्रति कोई दुर्भाव नहीं रखता। आप सहमत होंगे कि हिन्दी भाषा और साहित्य का भी आधुनिकीकरण होना चाहिए। जब अन्य विषयों में एप्लीकेशन कोर्स लागू किये जा सकते हैं तो हिन्दी में भी किए जाने चाहिए।''

"बट हाउ इट इज पॉसिबल इन हिन्दी वी आर डिस्कसिंग रिगार्डिंग एप्लायड कोर्सस, जो हिन्दी में कैसे होगा....''

वी.सी सर ने छोटा-सा हस्तक्षेप किया था। "सर, मैं आपके प्रश्न का कायल हुआ। प्लीज़ मुझे हिन्दी विषय के भी कुछ एप्लीकेशन कोर्स सदन के सम्मुख प्रस्तावित करने की अनुमति दीजिए–मेरा प्रस्ताव है कि एकेडेमिक काउंसिल फाउंडेशन कोर्स के तौर पर 'लैग्वेज, लिटरेचर और कल्चर' पर हिन्दी के संदर्भ में भी अपनी सहमति दे और हिन्दी के एप्लीकेशन कोर्स भी पाठ्यक्रम में स्वीकार करें।''

''हिन्दी के कौन से होंगे?'' वी.सी की सहायता को बिना वजह तत्पर दिखने वाले एक विभाग के प्रोफेसर ने बीच में ही टोककर फिर प्रश्न किया।

"सर, मैं आपकी भाषाओं, कलाओं के प्रति गहरी रूचि के हवाले से उदाहरण के तौर पर एप्लीकेशन कोर्स जोड़ने का प्रस्ताव करता हूँ- एक क्रिएटिव राइटिंग यानि रचनात्मक लेखन दूसरा थियेटर और एक मीडिया या अनुवाद भी हो सकता है। मैं आशा करता हूँ कि मेरे सभी साथी सदस्य इस पर सहमत होंगे। तभी मैंने नोटिस किया कि मेरे प्रस्ताव पर मेरे सहयोगी–सदस्य जोर-जोर से मेज़ थपथपा रहे थे।''

''हेड ऑफ द डिपार्टमेंट हिन्दी, व्हाट यू से?''

वी. सी सर के सुर में सहमति के भाव उभर आये थे।

सर, 'वन वीक' में हम इनका सिलेबस तैयार कर देंगे। बी.ए प्रोग्राम के अंतिम वर्ष में हिन्दी एप्लीकेशन कोर्स भी अन्य विषयों के साथ छात्रों के सामने एक अच्छा ऑप्शन होगा। मैं वीरेन्द्र के सुझाव का स्वागत करता हूँ–यह स्वर एकेडमिक काउंसिल में हिन्दी के तत्कालीन हेड ऑफ द डिपार्टमेंट प्रो. रमेश गौतम सर का था।

''ओके, द ऐकेडमिक काउंसिल कन्सीडर द प्रपोजल एंड रिक्वेस्ट द एच. ओ. डी. ऑफ हिन्दी अश्योर्स द हाउस टू प्रीपेयर द सिलेबस फॉर द प्रपोज्ड एप्लीकेशन कोर्स ऑफ हिन्दी''

वी.सी साहब ने इस मुद्दे पर यह निर्णयात्मक टिप्पणी की थी।

इस तरह सब कुछ पिछली शाम सर के घर पर बनी योजना के अनुरूप हुआ था।

रेगिस्तानी चुनौतियों में चमन का निर्माण कर देना सर के व्यक्तित्व की सहज विशेषता थी। सर के अकादमिक कैरियर में ऐसे शैक्षणिक-साहित्यिक नज़ारे भरे पड़े हैं।

कहाँ तो हिन्दी के वर्कलोड का नुकसान होने जा रहा था और कहाँ अब एक नहीं तीन-तीन (और विषयों के अधिकांशत एक ही थे) एप्लीकेशन कोर्स जोड़े जा रहे थे। वर्कलोड घटने की चुनौती को उन्होंने वर्कलोड बढ़ने के अवसर के रूप में बदल दिया था।

अपने शिष्यों के सामर्थ्य पर सर का सीना गर्व से फूल जाता था। सर ने जो व्यूह रचना की थी, जैसे मुझे समझाया था, हूबहू वैसा ही हुआ था। हिन्दी के सभी पुराने विद्यार्थी और शिक्षक जानते हैं कि गौतम सर ने बी.ए प्रोग्राम के एप्लीकेशन कोर्स–'रचनात्मक लेखन' पर जो पुस्तक सम्पादित की थी, वह अकादमिक जगत में मील का पत्थर साबित हुई थी।

कहना न होगा कि प्रो. गौतम की योजना से निर्मित हुए हिन्दी के एप्लीकेशन कोर्स अन्य विषयों के एप्लीकेशन कोर्स के मुकाबले छात्रों में अधिक लोकप्रिय हुए थे।

ऐसे ही अनेक अन्य उदाहरण हैं जिनमें बी.ए प्रोग्राम/बी. कॉम प्रोग्राम के सिलेबस अलग- अलग करना, हिन्दी कंकरेट कोर्स बनाना, हिन्दी क, ख, ग की योजना, सी. टी. एच के तौर पर सभी के लिए हिन्दी पढ़ना लागू करना, प्रशासनिक हिन्दी, कार्यालयी हिन्दी, हिन्दी पत्रकारिता, हिन्दी फाउंडेशन कोर्स जैसे नये कोर्सेज़ को प्रारम्भ करना, उनकी दूरदृष्टि के ही परिणाम थे। FYUP में दिल्ली विश्वविद्यालय में पढ़ने वाले लगभग सभी छात्रों को अनिवार्यतः हिन्दी पढ़ने की योजना बनाना, हिन्दी के प्रति उनकी प्रतिबद्धता का ही द्योतक था।

गौतम सर ने केवल दिल्ली विश्वविद्यालय के स्तर पर बल्कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के स्तर पर भी, अखिल भारतीय दृष्टिकोण से जितना हिन्दी का प्रचार, प्रसार और विस्तार किया, हिन्दी में रोज़गार के अवसरों को व्यापक बनाया, वह राष्ट्रीय स्तर पर अपने आप में एक अनूठा उदाहरण है। ILLL के डायरेक्टर के रूप में सर ने पचास से अधिक अन्य विषयों की पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद करवाया था। विश्वविद्यालय परिवार के बहुत सारे लोग आज भी अपनी चर्चाओं में अपनी विचारधारा और राजनीति से ऊपर उठकर गौतम सर के इस योगदान की अक्सर सराहना करते दिखायी पड़ जाते हैं।

× × × × × × ×

गुरु रूठे नहीं ठौर

दिल्ली विश्वविद्यालय की तमाम आवश्यक प्रकियाओं के बाद 'मिथक केन्द्रित प्रबंध काव्यों में मानव-मूल्य' मेरा पी.एच.डी. का विषय निर्धारित हुआ था। विधि की योजना और हमारी ख्वाहिशों के चलते गौतम सर ही मेरे और राज के शोध निर्देशक नियुक्त हुए थे। हम दोनों ही सर के पी.एच.डी. के पहले-पहल निर्धारित शोधार्थी थे। कुछ दिनों बाद हमें पता चला कि ममता वालिया जी भी सर के शोध-निर्देशन में अपना पी.एच.डी. कार्य कर रही हैं।

अक्तूबर 1992 की घटना है।

दिल्ली में अक्तूबर के आखिरी सप्ताह तक आते-आते शाम ढले गुलाबी सर्दियाँ गहराने लगती हैं। राज को छोड़कर समझो पूरी कायनात मुझे राज से मिलवाने में जुटी हुई थी। इसीलिए सर भी इत्तफाकन हम दोनों के गाइड बने थे। राज से मुलाकात के लिए मेरे पास अब और अधिक बहाने थे। मेरा दिल तो मुहब्बत में धड़कता था मगर डर बहुत लगता था। लबों पर रंगत का आना-जाना बस शुरू ही हुआ था। कभी लगता था कि मेरी बात वहाँ तक पहुँच रही है और कभी लगता था कि ऐसा कुछ भी नहीं है। इश्क में दो कदम आगे और चार कदम पीछे की कशमकश का दौर था। गुफ़्तगू में भी तक्कलुफ का दबाव भरपूर था।

'हमने माना कि तगाफुल न करोगे हरगिज, लेकिन
खाक हो जायेंगे हम तुमको खबर होने तक'

—टाइप शायरी दिलो-दिमाग पर छायी रहती थी।

इन हालातों के बीच विश्वविद्यालय की उस ढलती शाम में मैंने राज के सामने एक मशविरा रखा—

''राज! हमें भी अपने सर के घर जाना चाहिए।''

''क्यों?''

''अरे भई दीवाली है और दीवाली पर तो सभी एक-दूसरे के घर जाते ही हैं!''

''नहीं-नहीं! ऐसे कोई जाता है अपने टीचर के घर?''

''क्यों! सभी जाते हैं।''

''तुम गये हो कभी दीवाली पर किसी टीचर के घर?''

''मैं! ... मैं ... तो गया हूँ! नहीं-नहीं, नहीं गया। मेरा मतलब है कि ... पर जाने में क्या बुराई है? मैंने सुना है और भी लोग अपने पी. एच. डी. सुपरवाइजर के घर जाते रहते हैं।''—मैं याचक की मुद्रा में मनुहार कर रहा था। थोड़ा उसका असर भी हुआ।

''देखो! हमारे सर थोड़ा सख्त-मिजाज लगते हैं। अगर उन्हें बुरा लग गया तो?''

''नहीं-नहीं, उन्हें बुरा क्यूँ लगेगा और फिर मैं हूँ ना! मैं रिकवेस्ट कर लूँगा। सर कुछ नहीं कहेंगे। मेरी मानो, हमें चलना चाहिए।'' मैंने आत्मविश्वास दिखाते हुए कहा।

''चलो, पर देख लो। मुझे तो बहुत संकोच होता है ऐसे जाने में।''

''अरे भई चलो, देखी जाएगी''—माथे पर बिखर आये बालों को हाथ से पीछे धकेलते हुए मैंने कहा।

उन दिनों मुझे राज की हल्की-सी हामी की भी हर पल तलाश रहती थी। 'कहीं बेख़याल होकर यूँ हीं छू लिया किसी ने, कई ख़्वाब देख डाले मेरे दिल की बेखुदी ने... ।'

वो मोबाइल का ज़माना नहीं था और संकोच में लैंडलाइन फोन किये बिना ही हम दोनों सर के घर की ओर चल पड़े थे।

बाइक पर अतिरिक्त सावधानी के साथ राज पीछे बैठी थी। ख़्वाब से भी नाजुक पलों में वो मेरे इतने करीब होकर भी, मुझसे बहुत दूर थी।

दीवाली के अवसर पर हम पहली बार सर के घर जा रहे थे।

पूछते-पूछते जब हम नीलाम्बर अपार्टमेंट पहुँचे तो शाम के लगभग छह बज रहे थे। बेहद हिचकिचाहट के साथ मैंने सर के घर की 'बैल' बजायी।

''हाँ, जी?''

सर के बेटे हिमाद्रि ने दरवाजा खोलने से पहले पूछा था।

"गौतम सर से मिलना है, हम उनके स्टूडेंट्स हैं।"

"अच्छा! आइये।"

हम ड्राइंग रूम में बैठे ही थे कि अन्दर से सर आये।

हमने नमस्ते की। मैंने सर के पैर छुए तो संकोच से सर थोड़ा पीछे हट गये।

"अरे-अरे! बैठो-बैठो!—सर ने हाथ से बैठने का संकेत किया।

"कहो, कैसे आये?"—बैठने के दो-चार मिनट बाद सर ने पूछा।

"सर, ऐसे ही आये हैं हम तो! दीवाली पर मिठाई देने"—मैंने उतावलेपन में कहा।

"हैं.... अं ...?"

"जी, सर!"—मैंने बैग से मिठाई का डिब्बा निकाल कर मेज पर रख दिया।

"क्या मतलब?"

"सर, मिठाई...."

"अरे, उठाओ इसको! बंद करो ये डिब्बा! चाय पीओ और ये बिस्कुट खाओ!"—सर का चेहरा तमतमा रहा था और आँखें बड़ी होकर टकटकी लगाकर मुझे घूरे जा रही थीं।

मैंने फ़ौरन से भी पेश्तर मिठाई का डिब्बा मेज से उठाकर अपनी गोद में रख लिया।

"आप कहाँ रहते हैं बेटा?"—सर ने राज से सवाल किया।

"जी, सर नौरोजी नगर।"

"और काम कितना हो गया?"

"सर, लाइब्रेरी में बुक्स देख रही हूँ।"

"हाँ, जल्दी करना है बेटा, मैं पी.एच.डी. में देरी करने के पक्ष में नहीं हूँ, उसी से फिर आगे की चीजें तय होती हैं।"

"जी, सर!"

"मिठाई हम खिलायेंगे तुम्हें या तुम खिलाओगे?" सर ने फिर मेरी तरफ़ रूख किया।

"जी सर! आप"—मैं डर गया था।

"तो फिर तुम क्यों लेकर आये?"

"सर, दीवाली पर तो सभी के घर मिठाई लेकर ही जाते हैं।" मैंने थोड़ा सँभलते हुए कहा।

"नहीं, बिलकुल नहीं। अपना पी.एच.डी. का काम करो। उस पर ध्यान दो। और चाय पीओ चाय!"

"जी सर! सॉरी सर! राज तो पहले ही कह रही थी, मैंने ही जोर दिया था सर!"

"ठीक है, इसे ले जाओ और आगे से ध्यान रखना!"

"जी, सर!"

इसका तो डर था ही कि सर नाराज़ न हों, बेखबर राज के लिए मेरे हृदय में जो प्रेम की कोंपले फूट रही थीं, उनके भी बेरहमी से कुचले जाने का भय था। और आज तो हद हो गयी थी। सब कुछ उल्टा-पुल्टा हो रहा था।

'हरि रूठे गुरु ठौर है,
गुरु रूठे नहीं ठौर!'

सर और राज दोनों के प्रति मेरे हृदय में गहरे समर्पण की भावना हिलोरें मारती थी और यहाँ दोनों बारी-बारी से मुझे प्रताड़ित किये जा रहे थे।

गहरी साँस लेते हुए मैं उठने की सोच ही रहा था कि हे भगवान! आज बचा ले बस किसी तरहाँ ..!!

मेरे मन में आया कि कोई अभी आ जाये। कातर नेत्रों से मैं कमरे की दीवारों की तरफ देख रहा था। राज की खामोशी की तमतमाहट भी मैं साफ़ महसूस कर रहा था। तभी डूबते को तिनके का सहारा मिला।

यामिनी मैडम दोबारा ड्राइंग रूम में दाखिल हुईं

"रमेश, क्यों डाँट रहे हो बच्चों को?"

"कोई बात नहीं बेटा!"

"दीवाली पर कोई मिठाई वापस करता है क्या?"

"बैठो बेटा! क्या नाम है बेटा?"—मैडम ने राज की तरफ देखते हुए पूछा।

"जी, मैडम, राज!"

"कहाँ नौरोजी नगर रहते हो?"

"जी"

"रमेश, बहुत दूर जाना है इन्हें। तुमने कितना डाँट दिया बच्चों को!"

सर इस बीच चुपचाप खड़े हुए और भीतर चले गये। मैंने अपनी गोद में रखे मिठाई के डिब्बे को तुरन्त यामिनी मैडम को पकड़ा दिया। मेरी तो जान-में-जान आयी।

यामिनी मैडम उस दिन से लेकर आज तक मुझ पर आने वाले संकटों को मेरे कहे बगैर ही हमेशा दूर करती आयी हैं। मातृ भाव से बच्चे के मन की पुकार जैसे उन्होंने उस दिन सुनी थी, वैसे ही आज भी सुनती हैं।

इस बीच सर वापस ड्राइंग रूम में आ गये थे। वे भीतर से दो पैन लेकर आये थे। एक राज को दिया था और दूसरा मुझे।

"चलो, कोई बात नहीं। खुश रहो। दीपावली की शुभकामनाएँ! आगे से ध्यान रखना।"—सर के लहजे में अब नरमी उतर आयी थी।

"जी, थैंक यू सर! थैंक यू!"

"नमस्कार सर! नमस्कार मैडम!"

'बड़े बे-आबरू होकर तेरे कूचे से हम निकले'—की गहरी संवेदना के साथ घर की सीढ़ियाँ उतरते हुए मुझे सूझ ही नहीं रहा था कि मैं अब राज से क्या कहूँ! 'एक तो इश्क में उलझनें पहले ही कम न थीं, अब पैदा नया दर्द-ए-सर कर लिया।' सर को लगा होगा, उन्होंने पहले डांटकर और फिर यामिनी मैडम के टोकने के बाद थोड़ा पुचकारकर सब ठीक कर लिया, लेकिन मेरी अब राज को लेकर जो मुसीबतें बढ़ने वाली थीं, उसका कोई ओर-छोर नहीं था। बीच मँझधार में हिचकोले खाती कश्ती किनारे को तरसती थी मगर कोई सहारा न था। बाइक से उतरकर पंजाबी बाग़ के बस स्टैंड पर खड़े होकर राज ने जो उस दिन लड़ाई की, कहें कि हम पर जो गुजरी, वो बस हम ही जानते हैं। उस डर और ख़ौफ़ के साये आज तक मेरा पीछा करते हैं। अगर जमाने में आँसुओं की कोई कीमत होती तो उस रात के भीगे तकिये को मेरी बेटियाँ करोड़ों में भी खरीद लेती।

'बेख़्याली में अण्डों की टोकरी झटके से सर से गिरने पर सेठ का पाँच रुपये का नुकसान हुआ होगा, पर शेखचिल्ली की तो पूरी दुनिया ही उजड़ गयी थी।'

वो दिन और आज का दिन लगभग तीस वर्ष की लम्बी अवधि में मुझे एक भी वाक़या याद नहीं आता जब सर मुझसे नाराज़ हुए हों।

मैंने राज से वायदा किया कि गौतम सर बहुत अच्छे इंसान हैं, अभी आप और सर दोनों मेरी बंदगी से बेखबर हो, जिन्दगी के सफ़र में एक दिन ऐसा जरूर आएगा, जब मैं इस जुल्मो-सितम के बारे में आप दोनों को बतलाऊँगा।

इसलिए सर के साथ बात करते हुए जब भी अजय अरोड़ा जी इस बात को बड़े गर्व से कहते थे कि 'सर के कारण ही सुधा से मेरी शादी सम्भव हुई थी'—तो मैं तुरन्त कहता था कि 'सर ने मेरी शादी की योजना को तो पंचर करने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी'—इस बात पर सर हमेशा ही ज़ोर का ठहाका लगाकर हँसते थे।

प्राचार्य
शिवाजी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

●

एक सुहृद मित्र : जो कद ही नहीं हर बात में बड़े थे

शकुंतला कालरा

रमेश जी की उनके संस्मरणों पर केन्द्रित पत्रिका में अपनी सहभागिता के लिए जब मुझे कहा गया तो मेरा उदास होना स्वाभाविक था। बड़ा अविश्वसनीय लगता है कि वह आज हमारे बीच में नहीं हैं। मैं चाह रही हूँ आपकी मुलाकात एक ऐसे विलक्षण व्यक्तित्व से कराऊँ जो कद ही नहीं हर बात में बड़े थे। सोच में बड़े, दिल के बड़े, मित्रता में बड़े, शील-सौजन्य मे बड़े और सम्बन्धों के निर्वाह में बड़े। इसी बड़प्पन के कारण वह 'सबके प्रिय सबके हितकारी' के रूप में सदा याद किये जाएंगे। डॉ. रमेश जी से मेरा परिचय लगभग 45 वर्ष पुराना है। एक मित्र के रूप में, एक सहकर्मी के रूप में और विभागाध्यक्ष के रूप से जुड़ी अनेक स्मृतियाँ हैं जो आज अतीत बन गयी हैं लेकिन जब उन्हें याद करने बैठी हूँ तो स्मृतियों की मंजूषा स्वतः खुलती जा रही हैं और पलक झपकते ही अतीत ने वर्तमान का रूप ले लिया है।

रमेश जी मेरी प्रिय सखी एवं सहकर्मी यामिनी गौतम जी के पति हैं और उसी नाते यामिनी जी, रमेश जी और हम मित्र रहे हैं। हालांकि हमारा संवाद बहुत कम होता था। रमेश जी के मित्र रूप को लेती हूँ तो वे यामिनी जी की भाँति ही एक परम सुहृद एवं शुभेच्छु मित्र रूप में याद आते हैं। मित्र की प्रगति में खुश होने वाले सच्चे सुहृद जनों में विरले ही लोग होते हैं। रमेश जी और यामिनी जी दोनों इसी प्रकृति के हैं। मुझे वह दिन याद है। याद क्यों न हो? वह भूलने वाला दिन भी नहीं है। दोनों ने लखनऊ विश्वविद्यालय से तभी- तभी डी.लिट् की थी। एक मित्र के रूप में उन्होंने मुझे भी सुझाव दिया कि मैं भी लखनऊ विश्वविद्यालय से डी.लिट् कर लूँ। उनका प्रोत्साहन और उत्साहवर्धन पाकर मैंने भी इसका मन बना लिया। रमेश जी ने मेरी बहुत मदद की और मुझे लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित जी से मिलवाया। यह मीटिंग उन्होंने अपने घर 'नीलाम्बर अपार्टमेंट' पीतमपुरा में रखी। हम चारों ने - रमेश जी, यामिनी जी और दीक्षित जी के साथ डी.लिट् के विषय को लेकर लंबी, विस्तृत चर्चा की। दीक्षित जी चाहते थे कि मैं आज की आवश्यकता को देखते हुए पत्रकारिता में शोध करूँ। किंतु मेरी रूचि भक्त कवियों के काव्य पर शोध करने की थी। गौतम जी ने दीक्षित जी से कहा कि इनका एम.लिट् और पीएच.डी. दोनों भक्ति साहित्य पर हैं और इनकी रुचि भी भक्ति साहित्य में है तो आप इन्हें भक्तिकाल पर ही ऐसा विषय दीजिए जिस पर अभी काम न हुआ हो। डॉ. दीक्षित जी ने मुझसे कहा कि मैं मध्ययुगीन हिन्दी कविता में निर्गुण-सगुण काव्य पर शोध करूँ और कहा कि आपको आचार्य रामचंद्र शुक्ल की धारणा का खंडन करना होगा कि भक्तिकाल में निर्गुण और सगुण की दो अलग-अलग धाराएँ हैं। आपको अपने शोध द्वारा उनके काव्य के माध्यम से यह सिद्ध करना होगा कि भक्तिकाल के निर्गुण काव्य में सगुण तत्त्व है और सगुण भक्तों की भक्ति में निर्गुण तत्त्व है इसीलिए मैं आपको यह विषय देता हूँ। 'मध्ययुगीन हिन्दी कविता में निर्गुण-सगुण-तत्त्व-समन्वय'। यह विषय हम चारों को अच्छा लगा। मुझे आज भी याद है कि उस दिन मैंने लंच भी उनके साथ किया। लंच करते हुए मुझे रमेश जी और यामिनी जी दोनों ने बधाई दी और मेरा मुँह मीठा करवाया। अगले ही सप्ताह लखनऊ जाकर मैंने डी. लिट् के लिए रजिस्ट्रेशन करवा लिया। कुछ समय बाद मेरे विषय को स्वीकृति मिल गयी और शोध निर्देशक के रूप में डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित जी मिले। मेरे डी.लिट् के शोधकार्य का सारा श्रेय मैं रमेश जी को देती हूँ। ऐसे बहुत कम मित्र होते हैं जो मित्रों की प्रगति में खुशी-खुशी सहायक होते हैं और पूरा सहयोग देते हैं। दीक्षित जी जब भी विभाग में पीएच.डी. के किसी विद्यार्थी का वायवा लेने आते या व्याख्यान के लिए आमन्त्रित होते तो यामिनी जी मुझे अवश्य सूचित करतीं और मैं उनसे मिलने हिन्दी विभाग आती। मुझे लखनऊ इसीलिए बहुत कम जाना पड़ा। रमेश जी के सौजन्य से दीक्षित जी यहीं मुझे मिल जाते। लगातार पाँच वर्ष की लंबी अवधि में मेरा डी.लिट् का यह कार्य सम्पन्न हुआ। उसका सारा श्रेय मैं रमेश जी को देती हूँ। यदि वह मुझे प्रेरित न करते तो मैं डी.लिट् करने के बारे में कभी सोच भी नहीं पाती।

विभागाध्यक्ष के रूप में भी वह अपने सभी सहकर्मियों का हर तरह से ध्यान रखते। टाइम-टेबिल में सबकी सुविधा का ध्यान रखते। रमेश जी और यामिनी जी की सहृदयता की और भी बहुत सी बातें हैं। किस-किस को याद करूँ? मुझे विभाग में एम.ए की कक्षा को मैथिलीशरण गुप्त का 'साकेत' पढ़ाने के लिए दिया गया। सप्ताह में एक दिन हमें कॉलेज की कक्षाएँ लेकर वहाँ से सीधा यूनिवर्सिटी जाना पड़ता। मेरी कक्षा बुधवार होती थी और यामिनी जी की वीरवार को। मेरी पारिवारिक समस्या को देखते हुए यामिनी जी के कहने पर गौतम जी ने यामिनी की क्लास भी बुधवार को कर दी ताकि मैं यामिनी जी के साथ आ-जा सकूँ। दोनों कॉलेज से इक्ठ्ठे यूनिवर्सिटी आते और क्लास लेकर वापस घर भी एक साथ आते। ऐसा सहयोग कोई सच्चा शुभचिन्तक ही कर सकता है जो यामिनी जी और रमेश जी ने किया।

यूनिवर्सिटी में नये पाठ्यक्रम की मीटिंग थी। डॉ. नामवर सिंह जी विशेषज्ञ के रूप में आये हुए थे। पूरा हिन्दी विभाग था और हर कॉलेज से एक प्रतिनिधि। अपने कॉलेज से मैं थी। हर मीटिंग में मैंने रमेश जी को धीर-गम्भीर रूप में सबकी पूरी बात सुनते देखा है। धीमा तथा मीठा बोलते। किसी भी मीटिंग में मैंने उन्हें ऊँचा बोलते नहीं सुना। इनके सान्निध्य में रहने वाला हर व्यक्ति इनकी मितभाषिता

और सारगर्भित वाणी से अवश्य प्रभावित होता। वह पूरी मर्यादा में रहते। अपना मत थोपते नहीं थे। अपनी बात को रखने के लिए सबको 'कनविंस' करने की पूरी आधारभूमि होती थी उनके पास। सिलेबस में क्या रखना चाहिए, क्या हटना चाहिए सबके मत अलग-अलग होते। डॉ. नामवर सिंह ने सिलेबस में कई बदलाव किये।

विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम की पुस्तकें तैयार हो रही थी। गौतम जी पाठ्यक्रम कमेटी के इंचार्ज थे। उन्होंने मुझे और खालसा कॉलेज की डॉ. आशा मेहता को द्वितीय वर्ष की पाठ्यक्रम की पुस्तक तैयार करने की जिम्मेदारी सौंपी। केवल जिम्मेदारी ही नहीं सौंपी पग-पग पर मार्गदर्शन भी किया। और जो मूल पुस्तकें लायब्रेरी में उपलब्ध नहीं थीं वे पुस्तकें हमें कहीं से भी उपलब्ध करवायीं क्योंकि पेपर में व्याख्या के लिए जो परिच्छेद और अनुच्छेद प्रश्न-पत्र में दिए जाते हैं उसके लिए मूल पुस्तक का ही प्रयोग किया जाता। इस तरह रमेश जी की मदद से हम दोनों ने 'आधुनिक कविता' पाठ्यक्रम की पुस्तक तैयार की। भले ही पुस्तक में श्रम और समय हमारा था किंतु पूरा सहयोग और मार्गदर्शन गौतम जी का था। उनका बड़प्पन ही था कि वह अपने सभी सहकर्मियों की हर तरह से मदद करते।

रमेश जी की कौन-कौन सी बात को याद करूँ? मैंने सदा उन्हें एक सहृदय एवं शुभचिन्तक गुरु के रूप में देखा है। वायवा के लिए आये हर शोधार्थी का मनोबल बढ़ाते। उनकी घबराहट स्वाभाविक होती। परीक्षा तो परीक्षा होती है। पता नहीं परीक्षक क्या पूछ ले। एक बार मेरे विद्यार्थी का वायवा था। विभागाध्यक्ष के रूप में वायवा में रमेश जी भी साथ थे। गाइड के रूप में मैं भी थी। मैंने देखा कहीं भी विद्यार्थी कुछ कन्फ्यूज होने लगता, रमेश जी सँभाल लेते और आसान तरीके से प्रश्न को दुहरा देते। शोद्यार्थी का उत्साहवर्धन करते। उसका सारा डर दूर हो जाता।

वाणी और लेखनी पर यदि किसी का जादू भरा अधिकार देखना हो तो उसे डॉ. रमेश गौतम को याद करना चाहिए। अपने विषय के ही अधिकारी विद्वान नहीं बल्कि अन्य विषयों की भी पूरी जानकारी रखते। विद्याव्यसनी रमेश जी के प्रखर पांडित्य का कोई मुकाबला नहीं। वह अपने छात्रों में बड़े लोकप्रिय थे। शोधार्थियों के सदा शुभेच्छु मार्गदर्शक रहे हैं। अपनी विद्वता, निश्छलता, विनम्रता और आदर्श चारित्रिक दृढ़ता से विद्यार्थियों में सदा सम्मान पाते रहे हैं। इनके स्नेह, अनुशासन, उच्च संस्कार तथा गौरवपूर्ण व्यवहार के इनके विद्यार्थी सदा कायल रहे हैं। रमेश जी सदा अपने विद्यार्थियों का मार्गदर्शन, प्रोत्साहन, उत्साहवर्धन करते। उनके कुशल निर्देशन में विद्यार्थियों को नई प्रेरणा, नया उत्साह मिलता। विश्वविद्यालय में रहते हुए उन्होंने अनेक प्राध्यापक और लेखक तैयार किये। विभिन्न पुस्तकों में उनके सुविचारित और खोजपूर्ण आलेख पाठकों का ध्यान बरबस आकृष्ट करते हैं। यह उन पर दैवीकृपा है जो उनकी लेखनी से बरस जाती है। रमेश जी साहित्य के क्षेत्र में सच्चे अर्थों में कर्मयोगी पुरुष थे। अध्ययन-अध्यापन, लेखन समन्वित आपका गम्भीर साधक व्यक्तित्व था। प्रबुद्ध आलोचक, कुशल सम्पादक रमेश जी का रचना-संसार विस्तृत और गहन है।

रमेश जी की किस-किस खूबी की तारीफ़ करूँ? जब भी नाटक से जुड़ी कोई पुस्तक सम्पादित करते तो वह नाटक के हर शोधार्थी को आमन्त्रित करते। स्वयं लिखना और दूसरों को लिखने की प्रेरणा देना उनके चारित्रिक औदार्य को दर्शाता है। वह उनको विषय देते ही नहीं थे, उसका पूरा महत्व और उपयोगिता भी समझाते। समय की सीमा में काम पूरा करना सिखाते। उनके आलेख में यत्र-तत्र परिवर्तन-परिवर्धन करके संशोधित करते। जब रमेश जी की सम्पादित पुस्तक में शोधार्थी अपना आलेख देखते तो स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करते। इस तरह रमेश जी अपने सभी शोधार्थियों को आगे बढ़ाकर उनकी प्रतिभा को उद्भासित करते।

रमेश जी को मैंने अपने कर्म-क्षेत्र में ही नहीं गार्हस्थ्य-जीवन में भी पूर्ण कर्त्तव्यनिष्ठ देखा है। रमेश जी और यामिनी जी की प्रकृति और रूचि में मैने अद्भुत साम्य देखा है, जो उनके खुशहाल गार्हस्थ्य-जीवन की नींव है। रमेश जी मीटिंग में चाय, कॉफी स्नैक्स वगैरह कभी कुछ भी नहीं लेते थे। वह बाहर का कुछ भी नहीं खाते थे। उनकी गाड़ी में घर का बना नाश्ता होता वह वही खाते। इतना ही नहीं उस गाड़ी में बिस्कुट, स्नैक्स आदि हमेशा रखे रहते जो उनके साथ गाड़ी में आता उसे भी खिलाते। यामिनी भी इसी तरह कॉलेज में कभी भी स्टाफ कौन्सिल की मीटिंग के बाद होने वाले जलपान को नहीं लेती थीं। चाय, कॉफी, ठंडा कभी भी यामिनी जी को लेते भी नहीं देखा। इस तरह दोनों पति-पत्नी की कई रूचियाँ कहीं एक समान थीं। यामिनी को मैंने इतना नजदीक से देखा है उसने अपनी इच्छा और रूचि को रमेश जी की इच्छा और रूचि में मिलाकर एक कर दिया था। यामिनी को देखकर मुझे हमेशा 'कामायनी' की श्रद्धा याद आती है जिसने मनु को अपना हृदय-रत्न पूर्ण रूपेण समर्पित कर दिया था -

''दया माया ममता लो आज / मधुरिमा लो अगाध विश्वास।
हमारा हृदय रत्ननिधि स्वच्छ / तुम्हारे लिए खुला है पास।''

मस्तिष्क की मंजूषा से यादों के कई बंद पन्ने खुलते जा रहे हैं। मैंने देखा और नज़दीक से महसूस किया है रमेश जी के स्नेह-भाजन के अधिकारी केवल उनकी पत्नी यामिनी या उनकी बेटी निमिषा और बेटा हिमाद्रि ही नहीं रहे, उनका दायरा बहुत विस्तृत था। उनके स्नेह अधिकारी उनके छोटे भाई मोहन जी और भाभी सुमन एवं दोनों बहनें भी उसी अनुपात में रहे हैं। मातृभक्त तो वह ताउम्र रहे। माँ की ममता चाहे सब बच्चों के लिए समान होती है लेकिन रमेश जी को सबसे ज़्यादा मिली। वह जीवन के अंतिम समय तक उनके पास रहीं। यह घटना उनके रमेश जी के प्रति अतिरिक्त वात्सल्य को दर्शाती है और माँ-बेटे के परस्पर जन्म-जन्मों के अटूट प्यार की साक्षी है।

नौकरी के अंतिम तीन वर्षों में वह I. L.L.L (Institute of Life Long Learning) के निदेशक बन गये थे। इस दायित्व के साथ विभाग में वह अपनी कक्षाएँ भी पूर्ववत् लेते रहे। इस पद पर रहते हुए उन्होंने पूरे भारत वर्ष के विद्यार्थियों के लिए ई-पाठ तैयार किये। 65 वर्ष की आयु में वे निदेशक के पद से रिटायर हुए। इस पद पर रहते हुए उनका सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य था अध्यापकों के लिए कॉलेज में वर्कशॉप करवाना। हमारे कॉलेज में भी यह वर्कशाप हुई जिसमें हमें कम्प्यूटर की काफी जानकारी मिली। हममें से बहुत अध्यापकों ने कम्प्यूटर देखा भी पहली बार था। हमारी उम्र के अध्यापक इस टेक्नोलॉजी से बिल्कुल अनभिज्ञ थे। मुझे याद है उन अध्यापकों को

विशेष रूप से अलग समय दिया गया। मैंने कम्प्यूटर का क.ख.ग. वहीं सीखा और आगे सीखने की ललक भी जगा दी। मैंने पहली बार अपनी आई.डी. बनवायी। वही आई.डी. आज तक चल रही है। मैंने मेल करना सीखा। मेल पढ़ना सीखा। इस सबका श्रेय भी मैं रमेश जी को देती हूँ।

रमेश जी और यामिनी जी का गार्हस्थ्य-जीवन सुख-शांति तथा संतोष से परिपूर्ण रहा। यामिनी जी का 22 अगस्त, 2001 में भीषण एक्सीडेंट हुआ। शायद रमेश की दुआओं से यामिनी बच गयीं किंतु उनका पैर कुचला गया था। वह 40 दिन तक रेलवे की अस्पताल में दाखिल रहीं। हम सब कॉलेज से बीच-बीच में यामिनी जी को मिलने आते। रमेश जी वहीं मिलते। उन दिनों वह विभागाध्यक्ष थे। वह विभाग की ज़िम्मेदारी भी निभाते और बाकी सारा समय यामिनी जी के पास रहते। रमेश जी ने कभी यामिनी को अकेला नहीं छोड़ा। जब उसने कॉलेज आना शुरू किया तो उन्होंने उसके लिए अलग नई गाड़ी ली और ड्राईवर रखा। यामिनी को गाड़ी चलाने नहीं दी और कहा कि आज से तुम ड्राईवर के साथ ही जाओगी। मुझे याद है जब मैं यामिनी के साथ आती तो रमेश जी दो-दो बार फोन करते। कहाँ तक पहुँची हो। ज़रा देर हो जाती तो चिन्तित हो उठते। फिर बार-बार फोन करते। जब घर पहुँचती तो नीचे गेट के बाहर इंतज़ार करते मिलते।

कर्मठता ही उनके जीवन का आधार थी। बिना रुके, बिना थके वह बढ़ते जा रहे थे किंतु दुर्देव ने कोरोना बनकर... उनकी गति को हमेशा-हमेशा के लिए अवरुद्ध कर दिया। उनके इतने सारे विद्यार्थियों की, सुहृद मित्रों की, परिवार की दुआएँ कबूल नहीं हुईं। उनकी कर्मनिष्ठता उससे भी सहन नहीं हुई। वह क्यों भूल गया कि पूरे देश में उनकी यशध्वजा के संवाहक बने उनके असंख्य छात्र, कॉलेजों में पढ़ा रहे उनके विद्यार्थी अपना गुरु और एक कुशल मार्गदर्शक खोकर अपने को कितना खाली-खाली और अकेला महसूस कर रहे हैं। विद्यार्थियों का प्यार और आदर रमेश जी की सबसे बड़ी पूँजी थी। अमूल्य और कभी खत्म न होने वाले धन ने उन्हें दुनिया का सबसे बड़ा बादशाह बना दिया था। अपने प्रदेय के कारण वह भले ही बड़े-बड़े सम्मानों और पुरस्कारों से पुरस्कृत हुए हों पर सच्चा पुरस्कार वह अपने विद्यार्थियों के अपार स्नेह को मानते थे।

रमेश जी बड़ा सम्मान करते थे अपनी जीवनसंगिनी का। जब कभी मैं इनके घर गयी या यूनिवर्सिटी में मिले। यामिनी जी कहकर उसे बुलाते। यामिनी जी उन्हें केवल रमेश कहतीं। मैं कभी हँसती थी यामिनी जी यहाँ तो सब उल्टा है। इतने 'केयरिंग' रमेश जी आज नियति के हाथों मज़बूर हुए होंगे। वेंटीलेटर पर बोल नहीं पाये पर ध्यान यामिनी जी का ही आया होगा। कुदरत की योजना देखिए रमेश जी जिन्होंने कभी यामिनी जी को अकेला नहीं छोड़ा वह दुनिया से जाने से पहले उसे कैसे अकेला छोड़ देते। दुबई बेटे और बहू के सुपुर्द कर गये। आपके बच्चों में आपके आचरण की छाप है। आपका परिवार आदर्श परिवार है। उनके जाने के बाद उनके बेटे हिमाद्रि और पुत्रबधू वैशाली माँ के भविष्य की सारी चिन्ताएँ हरने को तैयार बैठे हैं।

यामिनी जी जब भारत वापस आयीं तो मैं अपने बेटे के साथ उन्हें मिलने गयी। पहली बार मैंने यामिनी को रोते देखा। मोबाइल में रमेश जी की 'सेव' की गयी सारी फोटो दिखायीं। शादी से लेकर अस्पताल जाने से पहले बच्चों और बच्चों के बच्चों साथ हँसते-मुस्कराते रमेश जी की तस्वीरें थीं। मोबाइल में हँसता-खेलता पूरा अतीत समाहित था। काश समय वहीं रुक जाता। तस्वीरें देखते-देखते वह खामोश हो गयीं। खुद ही तस्वीर बन गयीं थी, यामिनी की खामोशी और आँखों का सूनापन बोल रहा था—

"रमेश जब तुम पास थे, हवाओं में संगीत था।
दिल धड़कता था मेरा, तब धड़कनों में गीत था।
हर मौसम खुशगवार था, पास जो मेरा मीत था।
कैसे कह दूँ साँसों को, रमेश मेरा अतीत था।"

सेवानिवृत्त एसोसिएट प्रोफेसर,
मैत्रेयी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

●

मेरी स्मृति में प्रोफेसर रमेश गौतम

राजवीर शर्मा

आज प्रोफेसर गौतम को स्वर्गवास हुए लगभग तीन वर्ष हो गये, परन्तु अब भी कई बार ऐसा लगता है अचानक कि वे कह रहे हैं राजवीर जी कैसे हैं और सभी लोग कैसे हैं, विश्वविद्यालय का क्या हाल है? भ्रम टूटता है और मैं फिर वास्तविक दुनिया में आ जाता हूँ। प्रो. गौतम से मेरा परिचय प्राध्यापक बनने के लगभग दो वर्ष बाद हुआ जब मुझे कहा गया कि आप डूटा, A.C. और E.C. के अपने उम्मीदवारों के प्रचार के लिए उत्तरी परिसर के महाविद्यालयों में जाएँ। प्रत्येक कॉलेज के लिए कुछ सम्पर्क प्राध्यापकों के नाम भी मुझे दिए गये। उन्हीं में से एक नाम रामजस कॉलेज के प्रो. गौतम का भी था। रामजस कॉलेज पहुँचकर वहाँ किसी साथी से पूछ रहा था "प्रो. गौतम कौन हैं?" उससे पहले कि वह मुझे जवाब देते वहीं से गुजरते हुए गौतम जी ने सुन लिया और स्वयं आकर बोले, "नमस्कार, मैं हूँ रमेश गौतम।" एक लंबे, चौड़े, सौम्य व्यक्तित्व के धनी रमेश जी ने पूछा, "बताईये क्या काम है?" मैंने अपना रामजस आने का उद्देश्य उन्हें बताया और प्रचार में मेरी सहायता करने का आग्रह किया। उन्होंने तुरन्त हाँ कर दी और लगभग दो घंटे तक विभिन्न विभागों में ले गये जहाँ पर मैंने और गौतम जी ने प्राध्यापकों से चुनाव में अपने उम्मीदवारों को वोट देने का आग्रह किया।

उस दिन ही उन्होंने स्टाफ़ एसोसिएशन की एक बैठक तुरन्त बुलाकर मेरा परिचय करवाया और उसमें मुझे संबोधित करने को कहा। उस दिन ही मेरा परिचय इस बात से भी हुआ कि संगठन के प्रति प्रतिबद्धता और ईमानदारी का अर्थ क्या होता है। उनका मुस्कराता हुआ चेहरे ने ऐसा अनुभव ही नहीं होने दिया कि मेरा उनसे पहली बार ही परिचय हुआ है। उनकी अपने कॉलेज में प्रतिष्ठा थी, सम्मान था और उनकी बात का प्रभाव था—यह मैं समझ गया और आश्वस्त हो गया था कि उस कॉलेज से हमारे उम्मीदवार को वोट अवश्य मिलेंगे, भले ही वह कॉलेज वामपंथ और कांग्रेस के समर्थकों की अधिसंख्या वाला था। बस, चुनाव हुआ, लेकिन मैं इसके बाद भी लगातार उनसे मिलता रहा। रमेश जी कुछ ही दिनों के बाद हिन्दी विभाग में आ गये परन्तु हम दोनों का मिलना और हालचाल पूछना चलता रहा।

इस सबके दौरान रमेश जी की छवि एक अच्छे अध्येता, एक कुशल अध्यापक तथा एक प्रखर शोधकर्ता के रूप में उभरकर आयी, उनकी पदोन्नति हुई और वे आचार्य बन गये, विभाग में विभागाध्यक्ष बने। विभागाध्यक्ष बनने के बाद पता चला कि वे एक अच्छे समरसतावादी, समन्वयवादी कुशल प्रशासक भी हैं। विभाग के सभी साथी जानते थे कि वे वामपंथी विचारधारा के समर्थक नहीं थे (विभाग के अधिकतर साथी वामपंथी या कांग्रेस के समर्थक थे) वे कांग्रेस का भी समर्थन नहीं करते थे। परन्तु यह उनके व्यक्तित्व और व्यावहार का चमत्कार था कि उनके विचारधारा के घोर विरोधी अध्यापक भी उनसे स्नेह रखते थे, उनके साथ मिलकर काम करते थे। प्रो. पचौरी वामपंथी होते हुए भी इनके बहुत करीब थे। प्रो. रमेश गौतम जी की कार्यशैली ने यह सिद्ध कर दिया था कि दो विरोधी विचारधाराओं के लोग भी शिक्षा और विश्वविद्यालय की व्यापक हित के लिए एक साथ काम कर सकते हैं। इसी कार्यशैली से वे जीवन पर्यन्त शिक्षा संस्थान के निदेशक के रूप में भी सफल रहे। विश्वविद्यालय में सभी ओर उनके कार्य, दृष्टि और विजनरी दृष्टिकोण की सराहना हुई। प्रो. गौतम एक सरल, सहृदय तथा मानव-मूल्यों के धनी व्यक्ति थे। वे एक राष्ट्रवादी चिन्तक और साहित्यकार थे। यही उनके अनेक लेख व पुस्तकों से देखने को मिलता है। कई बार घण्टों उनके साथ बैठकर यह ज्ञान प्राप्त हुआ कि हिन्दी के अनेक विद्वानों ने किस प्रकार अपनी लेखनी से स्वतंत्रता संग्राम में राष्ट्रवाद की लौ जलायी। उन्होंने भारतेंदु हरिश्चन्द्र के राष्ट्र-प्रेम से ओत-प्रोत साहित्य पर विशेष रूप से शोध किया है। यह सब सुनने व जानने का अवसर मुझे उस समय मिला जब मैं जीवन पर्यन्त शिक्षा संस्थान के समाज विज्ञान विषयों में एक परामर्शदाता के रूप में एक वर्ष तक उनके साथ कार्यरत था।

मेरा उनके साथ सम्बन्ध इसलिए भी और गहरा था क्योंकि वे मेरे कॉलेज के अति सम्मानित गुरुजी डॉ. सम्राट के दामाद थे।

प्रो. गौतम जी के आचार-विचार हम सब के लिए अनुकरणीय रहेंगे, उनके विद्यार्थियों के लिए एक प्रेरणा स्रोत रहेंगे।

सेवानिवृत्त एसोसिएट प्रोफेसर
राजनीति विज्ञान विभाग
आत्माराम सनातन धर्म कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

गुरु कुम्हार शिष्य कुम्भ है...

ममता

कबीरदास की यह पंक्तियाँ श्रद्धेय गुरुवर प्रो. रमेश गौतम पर चरितार्थ होती है। एक शिक्षक के रूप में उनकी भूमिका अपने विद्यार्थियों के लिए एक कुम्हार जैसी ही थी। यों तो मैं उनकी पुस्तकों के माध्यम से उनके नाम और प्रतिभा से काफ़ी पहले परिचित हो चुकी थी लेकिन व्यक्तिगत रूप में उनसे पहली बार सम्पर्क पी.एचडी के एडमिशन के बाद ही हुआ।

आज भी मुझे याद है कि मेरे शोध निर्देशक के रूप में प्रो. सुरेश चन्द्र गुप्त जी की नियुक्ति हुई थी। प्रो. सुरेश चन्द्र गुप्त उस समय कला संकाय के डीन भी थे। अतः अपनी व्यस्तता के कारण वे मुझे समय नहीं दे पा रहे थे। लगभग एक-दो महीने तक शोध-प्रबंध की रूपरेखा के निर्धारण हेतु उनसे समय नही मिल पाया। इसी क्रम में एक दिन डीन के कमरे में किसी मीटिंग या किसी विभागीय काम से प्रो. महेन्द्र कुमार जी का दो-तीन बार आना हुआ। संयोगवश उन्होने नोटिस कर लिया था कि मैं काफी देर से बाहर बैठी हूँ। उन्होंने मुझसे पूछा कि तुम इतनी देर से यहाँ क्यों बैठी हो?क्या काम है?मैंने उन्हें बताया कि प्रो. गुप्त मेरे गाइड है, मुझे विषय की रूपरेखा तैयार करने के लिए सर से मिलना है। वे मुझे उस दिन अपने साथ अन्दर ले गये और प्रो. गुप्त से अपनी चिर-परिचित शैली में बोले यह विद्यार्थी काफी समय से बाहर प्रतीक्षा कर रहा है, इसको देखो। गुप्त जी ने मुझे विषय सम्बन्धी कुछ बातचीत करके कहा कि तुम्हें जैसा समझ में आता है वैसी रूपरेखा बनाकर ले आओं। विषय की रूपरेखा बनाकर ले जाने से पहले ही लगभग हफ्ते भर में मुझे विभाग द्वारा एक पत्र प्राप्त हुआ, जिसमें मुझे सूचित किया गया था कि अमुक दिनांक (दिनांक मुझे याद नहीं है) से डॉ.रमेश गौतम आपके सह-निर्देशक होंगे।

पत्र प्राप्ति के अगले ही दिन प्रातः 10 बजे मैं हिन्दी-विभाग में उस पत्र के साथ पहुँच गयी। प्रो.गौतम की हिन्दी-विभाग में नियुक्ति हुए कुछ समय ही हुआ था, अतः उन्हें पहचानती नहीं थी। बग्गा जी ने गौतम सर के बारे पूछने पर बताया यही कहीं होंगे कद-काठी में लम्बे और स्मार्ट से दिखते हैं। अब इस पैरामीटर से कला-संकाय में उन्हें कैसे ढूँढ़ा जाए? खैर किसी ने बताया कि वे इस समय कमरा नंबर 59 या 60 (ठीक से मुझे याद नहीं कि इनमें से कौन-सा था) में एम.ए की क्लास ले रहे हैं। मैं दौड़ती हुई उस कमरे तक पहुँची क्योंकि क्लास खत्म होने में 2-4 मिनट ही बचे थे। डर था कि कहीं मेरे पहुँचने से पहले सर चले ना जायें, इसी जल्दबाजी में मैंने उस क्लास रूम में झाँककर देखा और पाया 50-60 बच्चों से भरी क्लास में सर पढ़ा रहे थे। यह देख मैं इत्मीनान से क्लास रूम के बाहर सर की प्रतीक्षा करने लगी। थोड़ी देर में सर क्लास रूम से बाहर आये। मैंने उत्साह-भाव से उन्हें नमस्कार किया लेकिन वे नाराजगी भरे स्वर में बोले आप लोग क्लास अटेन्ड नहीं करते, ये ठीक नहीं है। मैं समझ गयी कि शायद उन्होंने मुझे क्लास रूम में झांकते हुए देख लिया था। मैं इस बारे में कुछ कहती इससे पहले सर गम्भीर स्वर में क्लास में नियमित रूप से आने के लिए समझाने लगे। मैंने गुरुदेव को विभाग द्वारा भेजा गया वह पत्र सौंप दिया, पत्र को पढ़कर वो थोड़ा मुस्कुराये और शिकायती लहजे में बोले 'बेटा तुम्हें पहले बताना चाहिए था'। उस कोरिडोर में 5-7 मिनट ही बात हुई, जिसमें उन्होंने मुझसे मेरा शोध का विषय और इससे जुड़ी मेरी क्या तैयारी है? ऐसे कुछ सवाल किये। गौतम सर ने कहा बेटा अभी तो मेरी एक क्लास और है, तुम एक घण्टे के बाद विभाग में मुझसे मिल लेना विषय की रूपरेखा बना लेंगे। लगभग एक घंटे के बाद सर ने ना केवल विषय की रूपरेखा तैयार करवायी बल्कि शोध-कार्य कैसे करना है?कौन-कौन सी लाइब्रेरी से शोध-सम्बन्धी सामग्री मिलेगी-इस बारे में भी मेरा मार्गदर्शन किया। उस दिन मुझे लगा कि अब मेरा शोध-कार्य गति पकड़ेगा और वह हुआ भी।

श्रद्धेय गुरुवर से जुड़ा एक वाक़या और याद आता है। अभी उनके मार्गदर्शन में काम करते हुए महीना भर भी नही हुआ होगा कि मुझे शोध-कार्य के लिए 'नटरंग' पत्रिका के पुराने अंकों की ज़रूरत पड़ी लेकिन वे कहीं से भी मिल नहीं पा रहे थे। शोध-कार्य की गति धीमी होने का कारण जानने पर उन्होंने बड़ी सहजता से कहा, बेटा तुमने मुझे पहले क्यों नहीं बताया? मेरे पास 'नटरंग' के बहुत से अंक है, कल मुझसे ले लेना।

अगले दिन उन्होंने मुझे 'नटरंग' पत्रिका के 15-20 अंक सलीके से पैक किये हुए एक बण्डल के रूप में सौंप दिए। उस दिन मेरी खुशी का ठिकाना नहीं था। मुझे यह भी लग रहा था कि शायद सर भूल गये है कि वे मेरे को-गाइड है। व्यवहारिक अनुभव के आधार पर लगता था कि निर्देशक अपने विद्यार्थियों से ही ज्यादा स्नेह और अपनत्व का भाव रखते होंगे। डर था कि यदि कहीं उन्हें यह ध्यान आ गया कि वे मेरे को-गाइड है, तो फिर मुझ पर ऐसी कृपा ना करें तो? इस भय से मैं 'नटरंग' की सामग्री का अध्ययन करने तक सर से मिली नही। बहुत जल्दी अपनी इस सोच पर शर्मिंदगी महसूस हुई। हुआ यह कि पत्रिका से जुड़ा काम होने के बाद जब वे प्रतियाँ सर को लौटाने के लिए गयी तो शोध कार्य सम्बन्धी सुझाव/निर्देश देने के बाद उन्होंने मुझसे कहा—बेटा जो शोध-कार्य की रूपरेखा बनायी है, उसे पहले प्रो. सुरेशचंद्र गुप्त जी को दिखाकर उनकी सहमति ज़रूर ले लेना। उनकी यह बात सुनकर मैं जड़वत् हो गयी। उस दिन वे महज़ मेरे पी-एच.डी. के गाइड नहीं रह गये। वे सच्चे अर्थों में कबीर के 'गुरु अमृत की खान' बन गये। यद्यपि 4-6 महीने के बाद विभाग

द्वारा गौतम सर को ही पूर्ण रूप से मेरे निर्देशक के रूप में नियुक्त कर दिया गया लेकिन उनके को-गाइड के रूप में मेरे प्रति उदारतापूर्ण व्यवहार और शोध कार्य में किये गये मार्गदर्शन ने उनके प्रति आजीवन श्रद्धा और आदर-सम्मान का भाव पैदा कर गया। साल दर साल गुजरते गये। पी.एचडी पूरी कर ली, नौकरी लग गयी, यूजीसी का मेजर रिसर्च प्रोजेक्ट कर लिया-इन सभी उपलब्धियों में श्रद्धेय गुरुवर का मार्गदर्शन और आशीर्वाद सदैव बना रहा।

प्रोफेसर पद की पदोन्नति के अवसर पर उनकी कमी बहुत खली। वे अपने विद्यार्थियों की उपलब्धियों पर गौरवान्वित अनुभव करते थे। उनका असमय जाना परिवार-जनों के साथ-साथ उनके विद्यार्थियों के लिए भी अपूर्णनीय क्षति है। ईश्वर से यही कामना है कि हम सभी (उनके विद्यार्थी) अपने कार्यों और अपने आचरण से उनका नाम और भी रौशन करें।

प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
डॉ. भीमराव अंबेडकर कालेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

"सन्त हृदय नवनीत समाना।
कहा कविन्ह परि कहै न जाना॥
निज परिताप द्रवइ नवनीता।
पर दुःख द्रवहिं सन्त सुपुनीता॥"

(रामचरितमानस)

'आप आसान समझते हैं रमेश गौतम होना...'

रमा

किसी शायर ने कहा है—

"वो अपने घर में दीया इस सलीके से जलाता है
कि पड़ोसी के घर में बराबर का नूर जाता है।"

गौतम सर ऐसे ही थे। लोगों की मदद करना, अपने से पहले दूसरे की खुशी सोचना उनके स्वभाव का स्थायी हिस्सा था। उनसे न जाने कितने रिश्ते हैं, लेकिन ये जो 'सर' वाला रिश्ता था सम्मान से पगा हुआ है और ठोस भी। पहला रिश्ता तो ये कि सर हंसराज के विद्यार्थी रहे। हंसराज कॉलेज परिवार ऐसे विद्यार्थियों पर गर्व करता है। एक विद्यार्थी से आरम्भ हुई उनकी यात्रा विश्वविद्यालय के शीर्ष तक पहुँची। हिन्दी विभाग उनके होने से प्रदीप्त हुआ। गौतम सर चाहे किसी भी पद पर रहे लेकिन हंसराज कॉलेज के लिए उनके पास हमेशा वक्त रहता था। उन्होंने पूर्व छात्र की गरिमामय भूमिका का निर्वाह हमेशा किया। हमें उन पर तब और गर्व होता था जब वह एक निवेदन पर बिना सोचे समझे हमारे कार्यक्रमों में आ जाते थे। हंसराज कॉलेज की साहित्यिक और सांस्कृतिक परम्परा में वह न खुशी-खुशी केवल शामिल होते थे बल्कि अपने उपयोगी सुझाव भी देते थे, जिसका मैंने भरपूर लाभ भी उठाया। दूसरा रिश्ता विश्वविद्यालय का है। वह हमारे विभागाध्यक्ष रहे। हिन्दी विभाग का गरिमामय इतिहास रहा है। गौतम सर ने उस परम्परा को न केवल आगे बढ़ाया बल्कि उसे विस्तार भी दिया। अपने अध्यक्षीय कार्यकाल में उन्होंने हिन्दी भाषा और साहित्य की प्रतिष्ठा के लिए जो निर्णय लिए उससे हिन्दी का संवर्धन और विकास हुआ। उन्होंने अध्यापन करते हुए पहली बार ऐतिहासिक निर्णय लिया। हिन्दी साहित्य के इतिहास के पुनर्लेखन पर देशभर के प्रतिष्ठित वक्ताओं और साहित्यकारों को दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में इकट्ठा कर उन्होंने इतिहास के पुनर्लेखन का महनीय कार्य किया। शुक्ल के बाद हिन्दी साहित्य के इतिहास की जो परम्परा अवरुद्ध हो चुकी थी गौतम सर ने उसे पुनर्जीवित किया। मुझे नहीं लगता कि आज तक किसी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग को इतना बड़ा कार्य करने का अवसर मिला होगा।

उनकी याद आते ही याद आता है एक विराट व्यक्तित्व, सौम्य, सरल स्वभाव और स्नेहिल मुस्कान। न ज्यादा कहकहे लगाते, न ज्यादा गम्भीर होते। ऐसे में कई बार यह समझना मुश्किल हो जाता था कि आज सर का मूड कैसा है। मितभाषिता उनके स्वभाव का सबसे आकर्षक पक्ष था, उतना ही बोलना जितना काम है. यही कारण है कि विभाग के अन्य प्राध्यापकों से अलग उनकी छवि ऐसे व्यक्ति की बनती थी जिससे हम सहजता से मिल भी सकते थे और संकोच भी करते थे।

रमेश गौतम सर के जीवन में कई सारी उपलब्धियाँ है। अगर आप समझ रहे हैं कि मैं किसी ऐसी उपलब्धि की बात करूँगी जो किसी संस्था या संस्थान से पुरस्कार या सम्मान के रूप में मिलती है तो यह आपकी भूल है। दरअसल विश्विद्यालय में रहते हुए प्रशासन ने सबसे ज्यादा भरोसा उन्हीं पर दिखाया है। उन्होंने विश्वविद्यालय के कुछ ऐसे प्रभागों में कार्य करके उसमें प्राण फूँका जो बहुत दिन से शिथिल पड़े थे। ILLL जैसी संस्था को रमेश गौतम सर ही खड़ा कर सकते थे। हम सभी जानते हैं कि इस संस्थान ने देश के प्राध्यापकों और विद्यार्थियों को एक साथ जोड़ा। हिन्दी भाषा और साहित्य के तमाम लेखकों को एक बड़ा अवसर तो मिला ही साथ ही हिन्दी का विकास भी हुआ। यह उनके अकादमिक जगत की ऐसी उपलब्धि थी जिसे केवल लिखकर नहीं छोड़ा जा सकता है बल्कि उस पर गम्भीरता से बात करनी होगी। मेरा सौभाग्य रहा है कि उनके साथ मैं कई कार्यों में जुड़ी रही। ILLL को प्रारूप देने के दिनों में उन्होंने जितनी मेहनत की शायद और कोई नहीं कर सकता। घर-परिवार से अधिक उन्हें इस संस्थान को खड़ा करने की चिन्ता थी। विश्वविद्यालय के अभिन्न इस हिस्से को उन्होंने ऐसा सेंटर बनाया जो आज बौद्धिक विमर्श का केंद्र बना रहा। विश्वविद्यालय की महत्वपूर्ण अकादमिक गतिविधियाँ आज लगातार वहाँ होती हैं। मुझे लगता है यह देश के शैक्षणिक संस्थानों का ऐसा केंद्र है जहाँ पहली बार ऑनलाइन लर्निंग की प्रक्रिया को एक स्वरूप मिला। ILLL वास्तव में विद्यार्थियों के लिए ऐसा स्थान बना जहाँ उनकी तमाम समस्याओं का समाधान होता था। गौतम सर ने देश के प्रतिष्ठित और नये लेखकों लेकिन अच्छा और गम्भीर लेखन करने वालों को अवसर दिया। उनकी वर्षों की मेहनत के बाद महत्वपूर्ण सामग्री इकट्ठा हुई। हिन्दी के विद्यार्थियों के लिए ILLL सामग्री संकलन का सबसे प्रमाणिक और महत्वपूर्ण केंद्र है। आज जिस तकनीकी शिक्षा और ऑनलाइन टीचिंग पर करोड़ों खर्च किया जा रहा है उसे आज के डेढ़ दशक पहले ही गौतम सर ने कर दिखाया था। इससे उनकी दूर दृष्टि का भी पता चलता है। हिन्दी का सत्तर प्रतिशत पाठ्यक्रम आज भी यहाँ उपलब्ध है। ILLL की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह भी कि इसमें लेखों की प्रमाणिकता का ध्यान रखा जाता था जिससे लेखन शोध करके लिखते थे। अकादमिक लेखक को नयी दिशा देने में इस संस्था की भूमिका महत्वपूर्ण है।

गौतम सर सबसे पहले अध्यापक थे। उनकी विशेषता थी कि उन्होंने तमाम व्यस्तताओं के बाद भी अपने विद्यार्थियों और प्राध्यापकों को समय दिया। कक्षाओं में उनकी उपस्थिति हमेशा बनी रही। अपने विषय के वह निपुण थे ही उनकी अध्यापन शैली भी आकर्षित करती थी। विद्यार्थियों से बात करते हुए हमें यह लगातार पता चलता था कि क्लास लेते समय उन्होंने कभी अनावश्यक ज्ञान देने की कोशिश नही की। अपने पाठ्यक्रम को सहजता और विद्यार्थियों के अनुसार पढ़ाते-समझाते थे। नाटक उनका प्रिय विषय था। वर्षों तक वही पढ़ाते

रहे। मुझे लगता है भारत में हिन्दी नाटक के पहले दो दशक पर जितना प्रमाणिक और विद्यार्थियों के उपयोगी कार्य गौतम सर ने किया उतना अन्य किसी ने नहीं किया होगा। भारतेन्दु और प्रसाद तो उनके प्रिय थे ही अन्य नाटककारों पर भी उनका गहन अध्ययन था। अकादमिक दुनिया में जब भारतेन्दु और प्रसाद के नाटकों पर बात होना बंद हो गया तब भी गौतम सर ने उन्हें नये तरीके से स्थापित किया और लगातार उन पर लिखते थे। मुझे लगता है कि दिल्ली विश्वविद्यालय में नाटक और रंगमंच को लेकर जो एक सकारात्मक माहौल बना उसमें गौतम सर की भूमिका निर्णायक है। दिल्ली विश्वविद्यालय ही नहीं दिल्ली से बाहर के संस्थाओं में भी उनके लिखें लेख और पुस्तकें पढ़ायी जाती हैं जो नाटक और रंगमंच को समझने की नयी दृष्टि देते हैं।

गौतम सर ने दो तरह का लेखन किया। पहला तो यह कि उनके लेखन के केंद्र में हमेशा विद्यार्थी और शोधार्थी रहे। नाटक और रंगमंच के प्रतिष्ठित विद्वान् होते हुए भी उन्होंने अपने लेखन में विद्यार्थियों का ध्यान रखा। वह जब भी लिखते थे उनके जेहन में यह बात रहती थी कि यह विद्यार्थियों के कितना उपयोगी होगा। हिन्दी में यह आम बात है कि जरा सी प्रतिष्ठा मिलते ही लेखन को जटिल बना दिया जाता है ऐसा माना जाता है कि जब तक गम्भीर और जटिल भाषा का प्रयोग नहीं करेंगे या बात नहीं करेंगे लोग गम्भीरता से नहीं लेंगे या यश नहीं मिलेगा लेकिन गौतम सर इस तरह के किसी भी यश और कीर्ति से परे थे। अपने विद्यार्थियों के लिए उनकी चेतना हमेशा सक्रिय रहती थी। इसका एक उदाहरण और भी भी देती थी। गौतम जी की हमेशा यह कोशिश रही कि उनके लेखन का लाभ विद्यार्थी को मिले इसलिए उन्होंने दो दर्जन से अधिक टेक्स्ट बुक लिखी। यह पुस्तकें पढ़कर विद्याथी नाटक और रंगमंच के विद्यार्थी के अलावा अन्य विषयों के विद्यार्थी भी समझ सकते हैं। उनके लेखन का दूसरा केंद्र प्राध्यापक रहे। ऐसा कई बार हुआ जब संकाय संवर्धन कार्यक्रम में उन्हें बोलने का अवसर मिला तो उन्होंने यह भी समझाया कि पढ़ाया कैसे जाता है। साहित्य का अध्ययन कैसे किया जाए। ख़ासकर नाटक और रंगमंच का अध्ययन और अध्यापन कैसे बेहतर हो सकता है, इसके लिए विश्वविद्यालय में उनसे बेहतर कोई और विकल्प नज़र नहीं आता था।

नाटक के सम्बन्ध में उनकी मान्यताएँ भी अलग थी। उनका मानना था कि नाटक या रंगमंच की आलोचना करना अन्य साहित्यिक विधाओं की आलोचना से अलग है क्योंकि यह ही एक ऐसी विधा है जो दृश्य, श्रव्य और पठनीय है। इसके तीन गुण है। उनका मानना था कि नाटक को कहानी या कविता की तरह नहीं पढ़ाया जा सकता है, उनके लिए थोड़ा अभिनेता होना भी आवश्यक है क्योंकि नाटक का अध्यापन करते हुए सम्प्रेषण बहुत आवश्यक है। नाटक को पढ़ाते हुए यह महसूस होना चाहिए कि सामने एक दृश्य भी बन रहा है। यह सच भी है कि नाटक को पढ़ाने के लिए अलग तरह की मानसिकता चाहिए होती है जिसे गौतम सर समझते थे। वह हमेशा कहते थे नाटक को किसी पूर्वाग्रह से ग्रसित होकर नहीं पढ़ाया जा सकता है क्योंकि वह समय के अनुसार और दर्शकों की रूचि के साथ बदलता है। इसमें कोई दो मत नहीं है कि रमेश गौतम नाट्य आलोचना के निर्णायक आलोचक हैं। भारतीय नाट्य शास्त्र और रंग परम्परा का उन्हें विषद ज्ञान तो था ही साथ ही पाश्चात्य नाट्य परम्परा और चिन्तन का उन्होंने गहन अध्यन किया था जो उनके अध्यापन और वक्तव्य में झलकता भी था। एक समय ऐसा आया जब दिल्ली विश्वविद्यालय से नाटक और रंगमंच के अध्यापन और शोध कराने की बड़ी चुनौती सामने थी। सच कहे थे तो इसे हाशिये पर डाल दिया गया था लेकिन गौतम सर ने केवल दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारत के पाठ्यक्रमों में नाटक और रंगमंच के लिए बेहतर स्पेस बनाया और निर्णायक शोध भी करवाया।

अपने अध्यापन के दिनों में उन्होंने हिन्दी विभाग को हमेशा जगाये रखा। जब तक वह विभाग में रहे उनकी आभा से विभाग चमकता रहा। उनका व्यक्तित्व में ज्ञान, चिन्तन, दर्शन और सहजता का वैभवशाली समन्वय था। दरअसल गौतम जी अपनी कर्मठता से संस्थाओं को जीवंत कर देते थे। वह जहाँ भी रहे उन्हें कभी थकते हुए नहीं नहीं देखा गया। हिन्दी से इतर के कार्यक्रमों या किसी मीटिंग में उनसे अक्सर मिलना होता था। मुझे यह जानकर अचरज और ख़ुशी होती थी कि उन्हें दूसरे विभागों में भी लोग जानते हैं, सम्मान और प्रेम करते हैं। हिन्दी विभाग में रहते हुए दूसरे विभागों में उनकी प्रतिष्ठा थी। अपने विद्यार्थियों और शोधार्थियों के जीविका के प्रति वह हमेशा प्रयासरत रहते थे। मैंने हमेशा यह अनुभव किया कि उन्होंने अपने शोधार्थियों को कभी अनावश्यक परेशान नहीं किया। एक महत्वपूर्ण बात और अपने शोधार्थियों से मिलने से पहले उनके विषय को स्वयं गम्भीरता से पढ़कर आते थे, जिससे उन्हें कुछ सुझाव दिया जा सके यही कारण है कि उनके तमाम शोधार्थी आज दिल्ली सहित देश के तमाम विश्वविद्यालयों में प्राध्यापक पद पर हैं और उनका नाम रोशन कर रहे हैं।

अन्त में इतना ही कहना चाहूँगी कि गौतम सर ने अपने विद्यार्थियों, शोधार्थियों के साथ प्राध्यापकों से जो सम्मान पाया वह पता नहीं कभी हम लोगों को नसीब होगा या नहीं। उनके चाहने वाले उनके जीवन और साहित्य के विभिन्न पक्षों पर हमेशा कुछ न कुछ कार्यक्रम आयोजित करते रहते हैं। मुझे भी जाने का अवसर मिला है। उनके लिए असीमित सम्मान का भाव देखकर उनसे जुडी तमाम स्मृतियाँ जीवन्त हो उठती है और जीवन्त हो उठती हैं उनकी वह तमाम बातें, उनके सुझाव जिससे सीखकर हमने अपने जीवन को थोड़ा और बेहतर बनाया। आज वह हमारे बीच नहीं हैं लेकिन उनकी यादों की इतनी शाखाएँ हमारे जेहन की जड़ों में उलझी हुईं हैं कि उन्हें भूलना मुश्किल है।

ज़िन्दगी है इसमें सुख-दुःख आते-जाते रहते हैं लेकिन गौतम सर के लिए जीवन हमेशा एक सा रहा। उन्हें दुःख हिला नहीं पाया और सुख कभी भटका नहीं पाया। आजीवन साधारण और सहज रहे, वह विनम्रता की जीते-जागते परिभाषा थे। उनकी कर्मठता की मिसाल ये कि हमने कभी उन्हें अनुपस्थित नहीं देखा। जब भी उनकी जरूरत हुई, वे हमारे साथ खड़े रहे। मुझे लगता है संन्यासी होना सहज है लेकिन रमेश गौतम होना आसान नहीं है।

प्राचार्या

हंसराज कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

●

शब्दों के बोझ से मुक्त होती हैं, इसलिए दुआएँ जल्दी सुनी जाती हैं...

माधुरी सुबोध

आशा शर्मा का व्हाट्स एप पर मैसेज मिला, मैम एक चिन्ताजनक सूचना है कि डॉक्टर रमेश गौतम की तबीयत बहुत खराब है। वे दुबई के अस्पताल में है। अचानक यह क्या हो गया समझ नहीं आया। उनका और यामिनी जी का बच्चों के पास दुबई और अमेरिका आना-जाना अक्सर लगा रहता था। फिर सुना कोरोना संक्रमण हो गया था। यह सूचना चिन्ता में डाल गयी। स्वयं को तसल्ली दी, बाहर के मुल्कों में इलाज की व्यवस्थाएँ बेहतर हैं। दो एक सप्ताह में ठीक हो जायेंगे। यामिनी जी को मैसेज डाला कि डॉ. गौतम के स्वास्थ्य की सही जानकारी दें। उत्तर मिला—'वेंटीलेटर पर हैं। माधुरी जी दुआएँ कीजिए।' उनके सब सहयोगी, साथी और विद्याार्थी प्रार्थनाएँ ही तो कर रहे थे, इतनी दूर बैठकर इसके अतिरिक्त कुछ कर भी नहीं सकते थे। सुना था दुआएँ जल्दी सुनी जाती हैं। क्योंकि शब्दों के बोझ से मुक्त होती हैं, निःशब्द ।

यामिनी जी के लिए न सम्भव था और न ही व्यावहारिक कि सबके फोन सुने या उत्तर दें। जिसे भी सूचना मिलती, वह सबको सूचित कर देता। एक दिन सूचना मिली डॉ. रमेश गौतम नहीं रहे। कोरोना ने उन्हे स्मृति शेष कर दिया। भाग्य की विडम्बना देखिए जो व्यक्ति अपने विद्यार्थियों, सहयोगियों और प्रशंकों से घिरा रहता था, आज न कोई उनके अंतिम दर्शन कर सकता था, न अपनी अंतिम श्रद्धांजलि दे सकता था। अपने वतन से दूर, परायी ज़मीन पर ही उन्हे अपनी मिट्टी छोड़नी थी। फेसबुक और व्हाट्स एप पर संवेदनाओं और भावुक उद्गारों की बाढ़ आयी हुई थी। उनके विद्यार्थी उन्हें अश्रुपूरित शब्दों में याद कर रहे थे।

कुछ दिन पहले आद्यांतरा की वचुर्अल बैठक के संयोजन की परिकल्पना करते सोचा था कि एक निर्देशक, एक अभिनेता और दो समीक्षकों को आमन्त्रित किया जाय। समीक्षकों में एक डॉ. रमेश गौतम हों। अब यह कैसे सम्भव होगा। जिस कार्यक्रम में उनकी साक्षत् उपस्थिति के बारे में सोचा था, उसका आरम्भ उनके प्रति श्रद्धांजलि से होगा, इसकी तो कल्पना भी नहीं की थी। उनके विद्यार्थियों से फोटोग्राफ एकत्र किये गये और रंगमंच केंद्रित वह बैठक श्रद्धांजलियों से आरम्भ हुई। जिस के बिना कार्यक्रम की कल्पना भी नहीं की थी, उसके बिना कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। रंगमंच का भी तो नियम है, 'शो मस्ट गो ऑन'। दुनिया भी तो रंगमंच ही है। किसी के जाने से खालीपन और सन्नाटा भले ही महसूस हो, रुकती नहीं, चलती रहती है।

चल रही है.....।

फिर सुना उनके विद्यार्थी यामिनी जी के सानिध्य में 'उद्गीत' पत्रिका का प्रवेशांक प्रो. रमेश गौतम की स्मृति को समर्पित किये जाने की योजना बन रही है। डॉ. आशा शर्मा का आग्रह था कि कुछ संस्मरणात्मक लेख लिखकर इस आयोजन में अपने शब्दों की आहुति दूं। क्षणभंगुर जीवन की स्मृतियों को चिरंजीवी बनाने का प्रयास। शब्दजीवी व्यक्तित्व को उसके जन्म के अमृतकाल में याद करने का इससे बेहतर तरीका कोई हो नहीं सकता। पूर्वदीप्तियों को शब्दबद्ध करने के प्रयास में स्मृतियों के कुछ -कुछ बुलबुलों की एक श्रृंखला सी बनने लगी।

किसी कार्यक्रम के सिलसिले में विश्वविद्यालय जाना हुआ, तो डॉ. रमेश गौतम से मुलाकात हुई। तब तक वे रामजस कॉलेज से दिन्नी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में रीडर के रूप में शामिल हो चुके थे। 'देखिए माधुरी जी, सी.पी.डी.एच.ई. एक रिफ्रेशर कोर्स करवा रही है। विभागाध्यक्ष चाहते हैं कि आप रंगमंच पर एक वक्तव्य दें, समय दो घंटे रहेगा।'

कुछ दिन बाद रंगमंच पर दो दिन की कार्यशाला का आग्रह जिसका वेन्यू किरोड़ीमल कॉलेज होगा। फिर अंधायुग का एक क्लास और रंगमंच विशेष के विद्यार्थियों की एक क्लास। मेरा नियमित रूप से विश्वविद्यालय में कक्षाएँ लेने का सिलसिला शुरू हो गया। इस बीच वे विभागाध्यक्ष बन गये। नया सिलेबस बनाने और कमेटियों के गठन का सिलसिला शुरू हुआ। कई तरह के कोर्स बनाने की प्रक्रिया शुरु हुई। हर मीटिंग के आरम्भ में प्रारूप प्रस्तुत करने के बाद समिति पर छोड़ देते कि विस्तृत सिलेबस तैयार करें। फिर होता चर्चाओं - परिचर्चाओं का दौर, सुझावों का सिलसिला। अंतिम सहमति- असहमति विभागाध्यक्ष के रूप में उन्ही की होती। नयेपन की ओर रुझान और ग्रहण के लिए तत्परता दिखाते। कई बार सदस्य का कुछ लोगों की अनुपस्थिति की शिकायत करना। उसे गम्भीरता से लेकर उन सदस्यों का सिलेबस कमेटी की मीटिंग के आरम्भ में उपस्थित होना। और फिर ए.सी. की किसी मीटिंग या डूटा के कार्यक्रम में जाने की अनुमति मांगने पर यह कहकर स्वीकृति देना कि 'आप लोग टीचर्स का ही काम कर रहे हैं, कैसे रोक सकते हैं।' शिकायत करने वालों को भी

सहयोगियों की अनुपस्थिति का कारण और तर्क समझ आ जाता, शिकायत करने की कोई वजह शेष नहीं रहती। हैरानी होती कि लोगों की शिकायत को दूर करने और सुगमता से अनुपस्थिति का तर्क समझाने का यह कैसा कौशल था!

अनेक सेमिनारों में उनकी अध्यक्षता में हिन्दी नाटकों की विभिन्न धाराओं और रंगमंच पर अपनी बात रखने का मौका मिला। विश्वविद्यालय में उन दिनों रंगमंच कार्यक्रम की सफलता की चर्चा थी। निश्चय ही डॉ. रमेश गौतम को इसका श्रेय जाता है। रंगमंच के प्रति अपनी रूचि और रूझान के कारण विभिन्न कॉलेजों में रंगमंच से जुड़े शिक्षकों को इस पाठ्यक्रम को पढ़ाने के लिए जोड़ा। उनका परिचय विद्यार्थियों से करवाया। विश्वविद्यालयी पाठ्यक्रम और रंगमंच के बीच रहे अन्तराल को कम कर एक सेतु तैयार किया। विद्यार्थियों में रंगमंच के प्रति उत्सुकता और रूचि जगायी। जिसके परिणाम स्वरूप मुन्ना कुमार पांडे, अमितेश कुमार, आशा शर्मा, ज्योति शर्मा, हर्षबाला, प्रज्ञा, रोहिणी जैसे विद्यार्थी इस विषय की ओर आकर्षित हुए, जो आज इस दिशा में सक्रियतापूर्वक उल्लेखनीय काम कर रहे हैं।

जब वे सी.पी.डी.एच.ई. के डायरेक्टर नियुक्त हुए, तो ई-लेसन तैयार करवाने का दायित्व उन्होंने स्वीकार किया। मुन्ना पांडे उनकी सहायता कर रहे थे। डॉ. राजेंद्र गौतम इस विषय के महारथी थे ही, मुझसे भी कुछ पाठ तैयार करवाये गये। अन्य लोगों ने भी सहयोग दिया होगा। तात्पर्य यह कि अपने कार्यकाल के दौरान हिन्दी पाठ्यक्रम के ई-पाठ तैयार करवाने की चुनौती स्वीकार करना उनका बड़ा योगदान था। उसके वैज्ञानिकीकरण और आधुनिकीकरण की दिशा में बड़ा कदम मानना चाहिए। इस प्रक्रिया में शामिल करके हमें भी सीखने और अपने ज्ञानवर्द्धन का अवसर दिया। जो आज भी हमें नयी चुनौतियाँ स्वीकारने और नये कामों को सफलतापूर्वक सम्पन्न करने की शक्ति दे रहा है।

डॉ. रमेश गौतम से अंतिम मुलाकात साहित्य अकादमी सभागार में, मेरे लिखे नाटकों पर 4 अक्तूबर 2019 को एक सेमिनार आयोजित था। डॉ. आशा जोशी और डॉ. विजया सती का सह-संयोजन। अध्यक्षता के लिए डॉ. रमेश गौतम निमन्त्रित थे। डॉ. यामिनी गौतम को स्वयं निमन्त्रित किया। आश्वासन भी मिला कि 'आने की पूरी कोशिश रहेगी।' जब डॉ.गौतम से बात हुई कि 'यामिनी जी को भी साथ लायें, मेरी बात हो गयी है। वे आने के लिए तैयार हैं।' मुस्कराहट के साथ उत्तर मिला -'आपका मन रखने के लिए कह दिया होगा। वास्तव में माता जी को लम्बे समय तक छोड़कर हम दोनों नहीं आ सकते। एक को तो घर पर रहना होगा।' बहुत बार ध्यान दिया कि माताजी को लेकर दोनों को चिन्ता रहती थी। वयोवृद्ध माँ के पास कोई न कोई ज़रूर रहे। वय और स्वास्थ्य संबंधी चिन्ताओं के कारण उन्हे अकेला न रहना पड़े, इसका ध्यान दोनों को रहता था। अन्ततः यामिनी जी को घर पर रहना पड़ा और अध्यक्ष के रूप में डॉ. गौतम सेमिनार में उपस्थित थे। अपने अध्यक्षीय अभिभाषण में वे बता रहे थे कि 'हर नाटककार को समझने के लिए मैं एक बीजवाक्य तलाश लेता हूँ। जो उसे समझने के काम आता है।' मेरे नाटकों के संदर्भ में भी उन्होने एक बीजवाक्य का उल्लेख किया। आज भी उनके वक्तव्य का वह अंश कानों में गूँजता है :

'जब हम दुःखों और संघर्षों से घिरे होते हैं, तब लगता है किसी अन्धकूप में गिर गये हैं। किंतु स्मरण रहे तब हम मिट्टी की कोख में दबे बीज हैं जो शीघ्र ही अंकुरित हो जाएगा। समय का चक्र हमारे व्यक्तित्व को नये रूपाकार में ढालता है। अपने प्रति निर्मम और अपनों के प्रति निर्मोह हुए बिना कर्मक्षेत्र में निखरना सम्भव नहीं। भविष्य में क्या लिखा है, यह तो भविष्य ही बतायेगा।' (समंतक तीर्थ पृ. 61)

तब किसे पता था कि यह अंतिम मुलाकात होगी। और मेरे नाटक के संदर्भ में कहा गया वह वाक्यांश जीवन की सच्चाई बन जाएगा। उस समय तो भविष्य क्या बतायेगा, इसका अंदाज़ नहीं था, किंतु वह इतना निर्मम होगा, यह भी नहीं सोचा था।

डॉ. रमेश गौतम की पार्थिव काया इस दुनिया में शेष नहीं है किंतु सूक्ष्म रूप में उनकी प्रेरकशक्ति और यशःकाया आज भी विराज हैं।

सेवानिवृत्त एसोसिएट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, लेडी श्रीराम कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

मेरे मांझी—मेरे कर्णधार

यामिनी गौतम

तुम्हारा इस तरह से चले जाना अत्यन्त ही मर्मान्तक है, असह्य है और अस्वीकार्य है। रमेश, तुम ऐसे कैसे चले गये? इसे मन स्वीकार नहीं करता। तुम मेरे सर्वस्व हो, मेरे जीवन के प्राण तत्त्व हो। तुम्हारे प्रेम की स्नेहिल छाया से ही मैं अपने को जीवन पथ पर इतना विस्तार दे पाई हूँ। मेरी शक्ति, ऊर्जा, निश्चिन्तता, प्रसन्नता और आत्मतोष का एकमात्र कारण तुम ही हो। एक सम्पूर्ण व्यक्तित्व के तुम धनी हो। तुम्हारा जीवन उज्ज्वल दर्पण की तरह निर्मल रहा है। तुमने सिर्फ, सिर्फ देना ही जाना, कहीं कोई अपेक्षा नहीं, शान्त भाव से सबको तुमने यथासामर्थ्य अपने जीवन की अर्जित पूँजी लुटाई। यह पूँजी आर्थिक नहीं है, यह है तुम्हारा व्यवहार, ज्ञान, कर्त्तव्यनिष्ठा, समर्पण भाव। जिसकी शुरुआत घर से हुई—सर्वप्रथम माँ के लिए श्रद्धाभरित हृदय से समर्पण और सेवाभाव, पुनः बच्चे और परिवार और उसका विस्तार, अपने सम्पर्क में आये उन सभी व्यक्तित्व-विशेष को जो तुम्हारे समीप आए। किसी से कुछ न चाहते हुए मौन भाव से यथासमर्थ्य करना, चाहे भावनात्मक हो या व्यावहारिक पक्ष, सभी में एक सन्तुलन, एक अनुशासन। एक समर्पित शिक्षक, पूर्ण शिक्षक ज्ञान से भरा हुआ और मौन भाव से सम्पूर्ण देने का भाव लिये, हर क्षण तत्पर।

अद्भुत व्यक्तित्व को मैंने ईष्ट कृपा से पाया है, हे ईश्वर! तूने अपनी कृपा कर हमारे जीवन में धीरे-धीरे ही सही पर विस्तार किया और एकाएक हे मेरे मालिक! हे जगत नियन्ता, तूने सब पलट दिया, सब कुछ एक झटके में छीन लिया। जीवन का दृश्य-पटल बदल दिया और सबकुछ होते हुए भी बेमानी कर दिया। मेरे जीवन को धुरी हीन बना दिया। मैंने तो हे ईश्वर! तुझे और तेरी ही कृपा से मिले अपने जीवन सारथि को सब कुछ सौंप दिया था....अब ...अब कैसे निर्वाहित करूँ....

हे सर्वविनायक! तुम्हारी कृपा से विवेक भी है, चिन्तन का बल भी, पर तब भी, तब भी, यह आन्तरिक शून्य है और रहेगा। आत्मिक दृष्टि से ज्ञात है कि सब क्षणिक और नाशवान है, जो आया है, सो जायेगा...'जातस्य ध्रुवं मृत्यु', ध्रुवमं जन्म मृतस्य च'—यह सभी ज्ञात है पर अन्तःकरण का पुर्जा भी तो तेरी देन है—जो कि संवेदनशील है, जो एकाकी जीवन की छटपटाहट को अनुभव करता है। जीवन के रंगमंच पर एकाएक सम्पूर्ण दृश्यपटल बदल गया है।

वह 20 जून 2021 का दिन बार-बार कौंध जाता है, जब तुम्हें घर से भेजा था, ठीक होने के लिए और उसके बाद प्रतीक्षा...प्रतीक्षा. ..और चिर एक तरफी प्रतीक्षा रह गयी। कहाँ गये रमेश तुम...यह मैं नहीं जानती, यही मेरी (जीव की) सीमा है। मेरी भावों की अंजलि सदैव श्रद्धा और समर्पण भाव से तुम्हें समर्पित है...तब तक, जब तक इस देह में चेतन तत्त्व है। रमेश, तुम्हारा वियोग असह्य है, मर्मान्तक है और अन्तर तक कचोटता है...तुम्हारी यामिनी अकेली रह गयी। तुम्हीं ने निश्चिन्तता, प्रसन्नता और अपनत्व दिया और मैं वंचित खड़ी दिशा और दशाहीन।

असमय जाने से रमेश सभी कुछ अर्थहीन हो गया है, सारे आकर्षण, निष्प्रभ हो गये हैं। अकल्पनीय घटित हो जाने से जो बड़ी गहरी और मार्मिक पीड़ा होती है, उसे महसूस करती हूँ। तुम्हारा व्यक्तित्व सदैव से ही एक प्रेरणा का प्रबल स्रोत रहा है। जिसने जीवन को अनुशासित किया है, कर्तव्य चेतना का व्यावहारिक पक्ष तुमने साकार किया। आत्मतोष के आगे सारे प्रलोभन तुमने ठुकराये और आत्म स्वाभिमान को हमेशा मुख्यता दी। घर-बाहर दोनों ही रूपों में तुमने संतुलन बनाया और आदर्श प्रसतुत किया। उठते बैठते तुम सदैव चिन्तन की मुद्रा में रहे। एक जागरूक मानव कैसे होता है, यह कोई तुम्हारे जीवन से सीख ले सकता है। विषम परिस्थिति में भी अपने को संयमित रखते हुए, मर्यादापूर्ण व्यवहार करना कोई तुम्हारे से सीखे। अपने कार्यक्षेत्र में पूर्ण समर्पण भाव के साथ जैसे तुमने अपनी छाप छोड़ी, वह अमिट है क्योंकि न कोई स्वार्थ, न प्रलोभन, न गरिमा से कोई समझौता। अपने को पूर्णतः समर्पित कर तुमने एक कुशल प्रशासक की भूमिका निभायी तो दूसरी ओर एक ऐसा शिक्षक जो अपने छात्रों को नयी दृष्टि के आलोक से भविष्य की ओर ले जाने की भरपूर कोशिश में लगा रहा। आजीवन मर्यादित आचरण के साथ अपने विद्यार्थियों के हित को सर्वोपरि रखते हुए, निर्भीक होकर अपने कर्तव्य की पूर्ति की। नियति के क्रूर प्रहार ने एकाएक सब बदल दिया। अभी तो बहुत-बहुत सम्भावनाएँ थीं, अभी तो तुमने बहुत कुछ अपने जीवन से सबको बहुत कुछ देना था, पर ...पर सब धरा का धरा रह गया, इसे कहते हैं—हम जीवों की विवशता।

यह रिक्तता कोई भी नहीं भर सकता। मैं अपने संचित और अर्जित ज्ञान के बल से अपने को संयमित करने का निरन्तर प्रयास कर रही हूँ और विचार का क्रम निरन्तर अन्तर्मन में चलता रहता है। यह भी ज्ञात है कि इस विश्व के उद्यान के फूल समय के साथ मुरझा जाते हैं, चार दिन का खिलना है, जीवन आकाश के चलचित्रों की भांति बनता और बिगड़ता है, जो बीत गया, जो चला गया वह वापस उसी रूप में लौटकर नहीं आ सकता, प्रातःकाल जो तरू से पत्र झड़ गया वह वहाँ पुनः नहीं लग सकता, सारे साथी नौका में बैठे मुसाफिर जैसे हैं, कोई कहीं से आया तो कोई कहीं चला जाता है...जीवन का यही सहज क्रम है। 'संसृति इति संसार' है अर्थात् जो निरन्तर सरक रहा है, बदल रहा है, वह संसार है, 'गच्छति इति जगत्' है अर्थात् जो निरन्तर जा रहा है, जा रहा है। परिवर्तित हो रहा है, वह जगत है। जो देखते-देखते जीर्ण क्षीर्ण हो जाये, वह शरीर है,.

..क्षीयते इति 'शरीरः' है। यह शरीर भी प्रारब्ध की देन है और प्रारब्ध को मैं 'छुटा हुआ तीर' कहती हूँ अर्थात् जिस पर हम जीवों का कोई बस नहीं है, यह भी मालूम है कि काल पलक झपकते की देर में सब हर लेता है, आयु का एक क्षण भी 'न लभ्यते सुवर्ण कोटिभिः' है अर्थात् सौ करोड़ों सोने की मुद्राओं के बदले में भी आयु का एक क्षण नहीं मिलता है। यह वास्तविकता और जानकारी का एक प्रबल पक्ष है और दूसरा पक्ष यह भी कहता है—'तरति शोकं आत्मवित्' अर्थात् आत्मवेत्ता शोक के अर्णव (समुद्र) को पार कर जाता है, वह ही टूटना है—'घट्यते इति घटा' है। घड़ा बनता मिटता है पर मिट्टी तो घड़े के न रहने पर भी रहती है। वह बनकर भी मिट्टी है और घट के न रहने पर भी यथावत है—वही आत्मा है, जिसके विषय में भगवान् श्रीकृष्ण गीता के 2 अध्याय में कहते हैं।

'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राषि...नैनं दहति पावकः' है वह तो 'न हन्यते न हन्यमाने शरीरे है अर्थात् शरीर के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होती। यह जीवन अनन्त जीवन की यात्रा में पुस्तक के एक पृष्ठ की तरह है जिसके पहले कितने जन्मों के पृष्ठ लगे हैं कोई नहीं जानता पर आगे के पेज लगे या न लगे यह हमारे (जीव) के बस में है—तभी तो 'तारति शोकं आत्मवित्' कहा है।

भागवत् के छटे अध्याय में बहुत स्पष्ट रूप से कहा गया है—

यथा प्रयन्ति संयान्ति स्रोतोवेगेन बालुकाः।
संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते तथा कालेन देहिनः ॥

अर्थात् जैसे जल के वेग से रेत के कण एक दूसरे से जुड़ते और बिछुड़ते रहते हैं, वैसे ही समय के प्रवाह में प्राणियों का मिलन और बिछोह होता रहता है। (61-15-13)

एवं

यथा धानासु वैधाना भवन्ति न भवन्ति च
एवं भूतेषु भूतानि चोदितानीश मायया।।

अर्थात् जैसे कुछ बीजों से दूसरे बीज उत्पन्न होते हैं और नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही भगवान की माया से प्रेरित होकर प्राणियों से अन्य प्राणी उत्पन्न होते और नष्ट हो जाते हैं।

विचलित मन को समझाने के लिए ऋषि चिन्तन ने अपनी आर्षवाणी से इतना विशद आत्मज्ञान का अमृत पूर्ण असीम वरदान हमें दिया है और ज्ञान की यह निष्कम्प लौ पथ भी प्रशस्त करती है, एक अवलम्बन भी देती है और मानव जीवन की स्थिति को भी स्पष्ट करती है। निश्चय ही आत्मज्ञान से भरी यह वाणी, हम जीवों के जीने का एक मजबूत आधार है जो आघातों को सहने एवं समझने की सामर्थ्य रखती है।

आत्मज्ञान की महिमा निश्चिय ही अवर्णनीय है, मनोबल का यही उचित मार्ग है परन्तु इन सभी के साथ-साथ उस परमात्मा ने ही हम जीवों को यह बेहद अनमोल करण भी दिया है जो 'अन्तः' होने के कारण ही अन्तःकरण है, हमारी संवेदना को पनाह देने वाला यह बेशकीमती पुर्जा है। इस अन्तःकरण से ही जब सारी सृष्टि से नाता जुड़ता है तो वही जुड़ाव का गहन तन्तु मेरा रमेश से है। इस तरह से एकाएक जीवन से चले जाना मानों दिन में ही अमावस्या का घटित होना है। एक जीवन्त व्यक्तित्व, हठात् बरबस छिन्न जाना और वह भी जीवन से, अत्यंत ही भावविह्वल करता है। यह भी मालूम है कि और कोई चारा नहीं, राह नहीं, जहाँ से उसी रूप में तुम आ पाओ। सर्वनियामक परमात्मा ने बस हमारे लिए इससे ज्यादा नहीं सोचा। सोचती हूँ कि जीवन के हरेक कार्य में तुम्हारी इतनी ज्यादा उपस्थिति रही कि शायद ही घर-परिवार एवं समाज के किसी भी कार्य म्रें तुमने अपनी विशिष्ट पहचान न छोड़ी हो। स्वयं उपस्थित रहकर हर छोटे बड़े कार्य को पूर्णता और सलीके से करना। वह अमिट छाप हम सभी के मन में तुमने अंकित की है। तुम्हारे जैसा होना और बनना अत्यन्त ही कठिन है क्योंकि जो पूर्णता तुम्हारे में थी, वह अन्यत्र नहीं। व्यवहार पक्ष को सन्तुलित बना कर कार्यक्षेत्र में आगे बढ़ना रमेश तुम्हारे स्वभाव की विशेषता रही है। तभी तो मैं प्रायः कहा करती थी कि परमात्मा ने एक पूर्ण पुरुष बना दिया है, अब वह सोचता है कि दूसरा कैसे बनाऊँ। क्या-क्या लिखूं या कहूँ...इन सभी की एक सीमा है और...तुम उस सीमा के दायरे से आगे हो।

रमेश, तुम्हें नियति भी छल करके ले गयी और हम असहाय रह गये। नियति के आगे हम मानव तिनके से भी गये बीते हैं।

रमेश, तुम्हारी यह चिर विदाई बड़ी कष्टदायक है, हा सभी स्तब्ध हैं और विधाता के क्रूर प्रहार को समझ नहीं पा रहे हैं। पूर्ण स्वस्थ जीवन, कहीं कोई स्वास्थ्य सम्बन्धी परेशानी नहीं, नियमित जीवनचर्या, अपने आपको, स्वस्थ रखने के लिए सदैव सक्रिय रहना और उस क्रम में कभी बाधा नहीं आने देना। करोना काल में जितना कठोर अनुशासन तुमने रखा, वही...वही...तुम्हें हठात् हमारे से बलपूर्वक छीन ले गया। इसे क्या कहूँ? बुद्धि, विवेक, तर्क, कई तरह के विश्लेषण—ये सब धरे रह गये—इस काल की सुनामी के आगे।

इस काल रूपी सुनामी ने हमारे से एक विराट और उदात्त व्यक्तित्व को निगल लिया। काल ने हमारी एक नहीं चलने दी। दोष किसे दें...इसका कोई उत्तर नहीं।

'कालहिं, कर्महि, ईश्वरहीं मिथ्या दोष लगावहिं' है। बस हमारी किस्मत ही खराब थी। ऐसे में श्रीमद्भागवत् में राजा बलि का यह कथन बार-बार हृदय को छू जाता है—

यः प्रभु सर्वभूतानां सुखदुःखोपपत्तये।
तं नातिवर्तितुं दैत्याः पौरुषैरश्वरः पुमान। (8.21.20)

अर्थात् दैत्यो! जो काल समस्त प्राणियों को सुख और दुःख देने की सामर्थ्य रखता है—उसे यदि कोई पुरुष चाहे कि मैं अपने प्रयत्नों से दबा दूँ, तो यह उसकी शक्ति के बाहर है। एवं

बलेन सचिवैर्नुदया दुर्गमन्त्रौषादिभिः।
सामादिभिरुपायैश्च काल नात्येति वै जनः॥

(बल, मंत्री, बुद्धि, दुर्ग, मन्त्र, औषधि और सामादि उपाय इनमें से किसी भी साधन के द्वारा अथवा सबके द्वारा मनुष्य काल पर विजय

नहीं प्राप्त कर सकता।

पिछले दो साल से रमेश तुम निरन्तर लेखन कार्य के प्रति विशेष सक्रिय रहे हो, मैंने तुम्हें घण्टों अपने 'स्टडी' में बैठ कर लिखते देखा है। अपने सभी प्रिय विद्यार्थियों के साथ नाट्य जगत के विभिन्न क्षेत्रों में तुम्हारी निरन्तरता को जानती हूँ। शायद कुदरत को तो पता था, इसलिए उसने यह महत् कार्य अत्यन्त ही समर्पण भाव से करवाया। अभी भी तुम्हारी दो पुस्तकें तैयार थीं और आगे की योजना में गतिशीलता थी...पर ईश्वरेच्छा ने सब उलट-पुलट कर दिया। अब केवल बिछोह है, जो अन्तर तक कचोटता है, मथित करता है।

सबकी चिन्ता को अपने ऊपर लेने वाली ऐसी सोच मिलना बहुत, बहुत कठिन है। मेरी क्या प्रारब्ध है, मैं नहीं जानती, शेष जीवन रमेश तुम्हारे बिना जीना...कैसे...क्या कहूँ। तुम्हारे लिए परिवार के सभी आत्मीय सदैव भावविह्वल रहेंगे। तुम्हारे परिवार का दायरा बहुत विशद है, उसमें तुम्हारे प्रति पूर्ण समर्पित शिष्य भी हैं और साथी भी।

रमेश, तुम सम्पूर्ण व्यक्तित्व की साकार प्रतिमा हो। मैंने सितम्बर 1976 के बाद से मात्र तुम्हें ही जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपने साथ देखा और जीया है। मुझे हर स्थिति में तुमने निश्चिन्त रखा। सारी व्यस्तता के बावजूद तुमने अपने को घर की जिम्मेदारी से हमेशा जोड़कर रखा। धीरे-धीरे तुम्हारे व्यक्तित्व का दायरा निरन्तर बढ़ता गया ओर उस सबके बीच पूर्ण तालमेल और व्यवस्था को कायम रखना तुम कभी नहीं भूले। तुम प्रायः कहा करते थे कि 'यामिनी' हमें हर विपरीत परिस्थिति में भी 'बैलेंस' बनाना है' और उसे तुमने हर क्षेत्र में बनाये रखा। तुम मित भाषी (कम बोलने वाले) रहे और जो कर सकने में तुम समर्थ थे, उसे चुपचाप शान्त भाव से करते रहे। सेवा निवृत्त होने के बाद मैंने कभी भी, किसी भी क्षण अपने अतीत के क्षेत्र में पुनः सक्रिय होकर जुड़ने की कोई इच्छा नहीं देखी। छोड़ा तो छोड़ दिया, न राग न द्वेष। कर्मठता बहुत थी पर कभी भी आत्मस्वाभिमान के आगे अपने व्यक्तित्व की गरिमा को ही बनाये रखा। अत्यन्त ही जागरूक और चिन्तन मनन में तुम्हें लीन देखा।

कभी-कभी नियति के घटनाक्रम पर जब सोचती हूँ तो समझ नहीं आता। हम जीवों का भविष्य का कुछ भी आभास नहीं होता पर नियति तो सब जानती है। उसी ने जीवनचक्र को अपने ही नियमानुसार इतनी तीव्रता और कठोरता से चलाया कि हम सब की समझ में कुछ भी नहीं आया और न हमारा कोई वश चल पाया। नियति अत्यन्त ही निष्ठुर बनकर तुम्हें हमारे से छीन कर ले गयी। बहुत-बहुत पीड़ा होती है जब तुम्हारे अस्पताल के विकट भोग के बारे में सोचती हूँ। वहाँ भी तुम अकेले लड़े और कष्ट झेले, किसी से कोई आदान-प्रदान नहीं, मिलना नहीं, यह एकाकी यातना जो रमेश तुमने भोगी, वह बहुत बहुत विचलित करती है। क्या कहूँ, कैसे कहूँ, इस घोर पीड़ा के बारे में।

तुम मेरे कर्णधार, मेरे मांझी
मेरी जीवन की नौकर रह गयी बीच मंझधार में
मेरे तो खेवनहार भी तुम और पतवार भी तुम
कहाँ खोजूं, कहाँ पाऊँ तुम्हें,
ओ मेरे हमसफर, ओ मेरे हमराज।

उस नियामक, जगतनियन्ता ने सभी कुछ बदल दिया, सब अर्थहीन कर दिया। रमेश, तुम सही अर्थों में पति थे—जो पत् लज्जा रखे, वही पति होता है। मेरे तो सब कुछ तुम, जीवन तुम, आशा और विश्वास तुम आश्रय भी तुम और बल भी तुम...और अब सब श्री हीन...

तुम परोपकारार्थम् इदम् शरीरम्' की साकार प्रतिमूर्ति थे। तुम बहुत गुनगुनाते थे—

अच्छा है कुछ ले जाने से, देकर ही कुछ जाना,
चल उड़ जा रे पँछी अब यह देश हुआ बेगाना

एवं बिछुड़े सभी बारी-बारी और यह गीत गाते हुए मैंने बहुत बार तुम्हारी आँखों को सजल होते देखा'...क..तुम ओझल हो गये...नहीं समझ में आता। जीवन का सारा संगीत ही मानो मौन हो गया है।

रमेश, अनन्त, अनन्त भावनाएँ तुम्हारे इस तरह चले जाने से आहत हैं, पीड़ित हैं, सभी तुम्हारा अपने भावविह्वल भी हैं और श्रद्धानवत भी।

पूर्व उपप्राचार्या
मैत्रेयी कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

"निर बैरी निहकामंता, सांई सेती नेह।
विषिया सूं न्यारा रहै, संतनि को अंग एह॥"

(कबीर)

प्रोफेसर रमेश गौतमः एक विद्वान और मार्गदर्शक

अजय अरोड़ा

कोविड-19 के कारण हुए प्रोफेसर रमेश गौतम के असामयिक निधन ने उनके परिवार, दोस्तों, छात्रों और समूचे शैक्षणिक समुदाय में एक अपूरणीय शून्य छोड़ दिया है।

नाटक में गहरी विशेषज्ञता के साथ हिंदी के प्रोफेसर के रूप में, प्रोफेसर गौतम न केवल एक उच्च कोटि के विद्वान थे, बल्कि हम में से कई लोगों के लिए एक प्रिय पारिवारिक मित्र, अनगिनत छात्रों के लिए एक मार्गदर्शक और एक ऐसे व्यक्ति थे जिनकी उदारता और ज्ञान ने उन सभी को प्रभावित किया, जो उनको जानते थे।

प्रोफेसर गौतम का हिंदी नाटक के क्षेत्र में योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण था। उन्होंने नाटक के अध्ययन-अध्यापन को बौद्धिक अनुशासन और समर्पित लगाव के दुर्लभ संयोजन के साथ अपनाया। उनके व्याख्यान केवल पाठ-आधारित कक्षाएँ नहीं थीं—वे ऐसी अनुभवात्मक यात्राएँ थीं जो हिंदी साहित्य की समृद्ध परतों को जीवित कर देती थीं। उन्हें क्लासिकल और समकालीन रचनाओं को जोड़ने की अद्भुत क्षमता थी, जो नये दृष्टिकोण प्रस्तुत करती थी और छात्रों को चुनौती और प्रेरणा देती थीं। उनके द्वारा किया गया शोध-कार्य और नाटक की आलोचना से सम्बन्धित दर्ज़नों पुस्तकें अत्यन्त उपयोगी हैं और भविष्य में भी शोध की दिशा में मजबूत एक आधार प्रदान करने वाला सिद्ध होंगी।

उनका उदारतापूर्ण व्यवहार उनके विद्यार्थियों को भी संस्कार-रूप में मिला स उनके विद्यार्थी केवल शिक्षक के रूप में नहीं बल्कि एक मार्गदर्शक के रूप में उन्हें याद करते हैं जो उनके अकादमिक क्षेत्र के साथ व्यक्तिगत जीवन की भी चिंता करते थे। विभिन्न प्रकार की चुनौतियों का सामना करने के लिए प्रोफेसर गौतम अपने शिष्यों के मार्गदर्शन और प्रोत्साहन के लिए हमेशा सहज-सुलभ रहते थे।

तमाम शैक्षणिक उपलब्धियों और प्रशासनिक दायित्वों से परे, प्रोफेसर गौतम एक पारिवारिक मित्र थे जिन्होंने अपनी गर्मजोशी, बुद्धिमत्ता और उदारता से हमारे जीवन को गहराई से प्रभावित किया। उनके पास लोगों से जुड़ने की अद्भुत क्षमता थी, जिससे हर कोई स्वयं को उनका नजदीकी महसूस करता था। उनकी सलाह हमेशा विवेकपूर्ण और दूर-दृष्टि से सम्पन्न होती थी, उनका समर्थन अडिग था और उनकी उपस्थिति ने सभी को आतंरिक खुशी दी।

एक स्नेहीजन, प्रसिद्ध विद्वान, उदार और ईमानदार व्यक्तित्व के रूप में आज, हम प्रोफेसर रमेश गौतम को श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे हैं। उनका जीवन प्रतिभा और गहन मानवता का मिश्रण था जिसके रिक्त स्थान को कोई भी नहीं भर सकता। उनके द्वारा जिया गया जीवन, उनकी सोच मेरे जैसे अनेक लोगों के लिए प्रेरणास्रोत और मार्गदर्शक बनेगा। भले ही वे अब हमारे बीच भौतिक रूप से नहीं हैं किन्तु उनकी पुण्य आत्मा, उनसे जुड़े अनुभव और उनका सानिध्य आशीर्वाद के रूप में हम सबके भीतर संचरित होता रहेगा।

प्राचार्य
रामजस कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

“श्रीगुर पद नख मनि गन जोती।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती॥”

(रामचरितमानस)

गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु : प्रोफेसर रमेश गौतम

अनीता यादव

जीवन परिवर्तनशील है, प्रारम्भ बिन्दु से लेकर अन्त तक। जीवन को बनाने में आपका जितना योगदान होता है उससे कहीं ज्यादा योगदान उन लोगों का होता है जो आपके घर, परिवार अथवा परिवेश का हिस्सा होते हैं। घर से लेकर विद्यालय और फिर महाविद्यालय जैसी संस्थाओं का निर्माण ही इसलिए हुआ ताकि वे व्यक्तित्व के सर्वांग विकास में सहयोग दें। ये संस्थाएँ घर की तरह हमारे व्यक्तित्व और परिवेश का महत्वपूर्ण हिस्सा होते हैं। शारीरिक विकास के लिए भले ही माता-पिता उत्तरदायी हो सकते हैं लेकिन मन-मस्तिष्क के विकसित होने का दारोमदार विद्यालय, महाविद्यालय और ऐसी ही शैक्षणिक संस्थाओं के जिम्मे माना जाता हैं जिसमे शिक्षकों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। आपके जीवन में आये सकारात्मक बदलावों के पीछे आपके शिक्षक ही होते हैं। शिक्षक कब और कैसे आपके व्यक्तित्व को गढ़ कर जीवन से चुपके से निकल जाते हैं पता ही नहीं चलता। आपकी जीवन की दिशा और दशा को बदलने में ऐसे शिक्षकों की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। शास्त्रों में गुरु को ब्रह्मा, विष्णु, महेश कह कर जो महिमा गायी गयी हैं वह ऐसे ही नहीं हैं। और कबीर ने गुरु पर बलिहारी होने की बात भी ऐसे ही नहीं की। गुरु जीवन का सार होता हैं। प्रोफेसर रमेश गौतम सर मेरे लिए एक ऐसे ही व्यक्तित्व रहे जिन्होंने गुरु के रूप में न केवल मेरे जीवन की दिशा बदली बल्कि जीवन के प्रति मेरी दृष्टि को विकसित करने में भी महती भूमिका अदा की।

मेरे मन मस्तिष्क पर आज भी वह दिवस अन्कित है जब दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रांगण में पहला कदम रखा था। मेरी वह पहली ही क्लास थी जब प्रोफेसर रमेश गौतम सर किताबें हाथ में लिये अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व के साथ कक्षा में आये थे। प्रथम व्याख्यान ने मेरे ही नहीं कक्ष में उपस्थित सभी विद्यार्थियों के हृदय और मस्तिष्क पर गहरी छाप छोड़ी इसमें शक की कोई गुंजाइश नहीं। पहली कक्ष का पहला व्याख्यान ही बेहद प्रभावशाली रहा। प्रथम प्रभाव को आगे तक बनाये रखने में सर पूरी तरह सफल रहे। उनके सुपरविजन में एम फिल अथवा पीएचडी करने वाले विद्यार्थी जब भी मिलते तारीफों के पुल बाँधते नहीं थकते। नाटक को पढ़ाते हुए जिस तरह से सर रंगमंच की बारीकियाँ और रंगमंच का नाटक के साथ सम्बन्ध और महत्व बताते चलते, वह आज भी मन मस्तिष्क पर अपने पूरे प्रभाव के साथ अंकित है। प्रोफेसर गौतम के निर्देशन में शोध करने वाले विद्यार्थियों में मैं भी शामिल हूँ और इसे अपना सौभाग्य मानती हूँ।

विश्वविद्यालयों के परिसर में एक शोध निर्देशक और शोधार्थी के मध्य हमेशा स्नेह ही नहीं रहा बल्कि खटास के किस्से भी हम खूब सुनते रहे हैं। जो कभी तो शोधार्थी की तरफ से और कभी शोध निर्देशक की तरफ से मन फाड़ने का काम करते रहे हैं। प्रोफेसर गौतम ऐसे शिक्षक और निर्देशक रहे जिनके विषय में ऐसा कोई किस्सा सुनने को कभी नहीं मिला। शांत और संतुलित व्यक्तित्व के धनी सर ने अपने किसी विद्यार्थी को कभी नाहक परेशान नहीं किया फिर चाहे निदेशक के तौर पर रहे हो अथवा साक्षात्कार लेने की भूमिका में रहे हो। विद्यार्थियों की मदद के लिए हमेशा तैयार रहते। मुझे आज भी वह दिन याद है जब मेरा पी-एचडी में नामांकन हो चुका था। इधर पारिवारिक दबाव के चलते शादी हो गयी थी। मतलब वैवाहिक जीवन का प्रथम चौप्टर शुरू हो रहा था तो उधर पी एचडी का प्रथम चौप्टर भी मैं साथ साथ लिख रही थी। हालांकि यह सब घर में बैठकर ही कर पा रही थी। अन्य विद्यार्थियों की भांति दिल्ली विश्व विद्यालय के रिसर्च फ्लोर की बजाय घर के कमरे में कॉलेज लाइब्रेरी और दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी जाकर लायी किताबें और उनके बीच मैं। इस तरह घर बैठकर पढ़ना शुरू हुआ। इसी तरह 6 महीने बीत गये मेरा लिखना तो जारी था लेकिन अपने शोध निर्देशक से चैप्टर नहीं दिखा पा रही थी। तभी दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग से एक पत्र प्राप्त हुआ। जिसमें पी एचडी कार्य की प्रगति पूछी गयी थी। उस समय दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष प्रोफेसर गौतम थे। वह पत्र लेकर मैं सर से मिलने गयी और साथ में अध्याय भी ले गयी जो अब तक लिख पायी थी। पी एच डी में प्रवेश के पश्चात शोध छात्रा के तौर पर मिलने पहली बार गयी थी। इतने लम्बे समय तक शोध छात्र/छात्रा का गायब रहना किसी भी शिक्षक निर्देशक के लिए नाराजगी का विषय हो सकता हैं लेकिन सर ने बड़े ही आत्मीय भाव से कहा—'बेटे शादी का मतलब पढ़ाई से दूरी नहीं हैं'। जब मैंने विश्व विद्यालय से इशू हुए पत्र को दिखाया तो हँसते हुए कहने लगे—'ये अपने सास ससुर को दिखाओ ताकि तुम्हें पढ़ने का समय दें और उन्हें पी एचडी का महत्व भी बताओ ताकि तुम्हारी पी एचडी पूर्ण होने में कोई बाधा ना हो'। मैंने हामी में सिर हिलाया और उन्हें अब तक लिख चुकी प्रथम अध्याय दिखाया तो प्रसन्न हो उठे। यह प्रसन्नता बिल्कुल वैसी ही थी जैसे कोई पिता अपनी पुत्री को विवाह के पश्चात् मिले और पाए कि लड़की अपने उत्तरदायित्व निभाते हुए भी पढ़ रही है।

अपने विद्यार्थियों को आगे बढ़ता देख सर अत्यन्त प्रसन्न होते थे। जिन दिनों मैं सृजनात्मक लेखन के तौर पर हास्य-व्यंग्य लिख रही थी और मेरी रचनाएँ विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होती तो सर उन्हें पढ़कर बहुत खुश होते। जब जब रचना प्रकाशित होती वे जरूर पढ़ते, बल्कि आलोचक रूप में रचना के गुण दोष पर भी बात करते। यामिनी मैम और सर व्यंग्य रचनाओं को पढ़कर जिस

तरह की प्रतिक्रिया और आशीर्वाद देते उससे मेरा मन गद्‌गद् हो उठता। 'ग्रामीण परिवेश की शब्दावली मेरी व्यंग्य रचनाओं की जान है'—ऐसा कहते थे सर। अकादमिक ही नहीं बल्कि लेखन क्षेत्र में आगे बढ़ाने के लिए उनकी प्रेरक टिप्पणियाँ आजीवन भुलायी नहीं जा सकती।

ऐसे ही एक बार अखबार में रचना पढ़कर मुझे फोन किया और कहा था कि जब भी मायके आओ तो मुझसे मिलकर जाना। सर के आग्रह को कैसे टाल सकती थी, मैं गयी, और मुझे जो भेंट के रूप में प्राप्त हुआ वह न केवल मेरे पास जीवन भर रहेगा बल्कि मुझे अपने लेखन में सुधार और सीखने को प्रेरित भी करता रहेगा। सर ने हरिशंकर परसाई की रचनावली के आठों खंड मुझे यह कहते हुए भेंट कि परसाई की इन पुस्तकों को तुमसे बेहतर पाठक क्या मिलेगा। उनकी इस टिप्पणी के पीछे मेरा उस व्यंग क्षेत्र से जुड़ा होना है। 'ये पढ़ो और बेहतर लिखने का प्रयास करो'...यही कहा था अंतिम वाक्य उन्होंने। आज जब वे हमारे बीच नहीं हैं तो मेरी बुक सेल्फ के मुख द्वार पर रखी परसाई जी की ये रचनावली को जब भी देखती हूँ तो मुझे न केवल सर की टिप्पणियाँ बल्कि उनके आदर्श, जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टि, सिद्धांत सब स्मरण हो उठता है। सच कहते हैं गुरु पिता भी होता है, पिताजी के जाने के पश्चात सर मेरे गुरु और पिता दोनों भूमिकाओं में थे। क्या मालूम था कि जिन विषम परिस्थितियों में पिता को खोया, इतनी जल्दी वे स्थितियाँ पुनः दोहरायी जाएँगी। स्वाइन फ्लू ने पिता को छीन लिया था और साल भर बाद ही आये कोरोना की दूसरी भयावह लहर ने सर की जिंदगी को लील लिया। जिंदगी में ईश्वर प्रदत्त ये ऐसे घाव हैं जिन्हें समय भी नहीं भर पाएगा क्योंकि हर दर्द की दवा समय भी नहीं होता। उनके आदर्श, उनके सिद्धांत और यामिनी मैम की उपस्थिति हमें उनकी उपस्थिति भी आभासित रहेगी जो हमारे जीवन के लिए प्रेरणा है। भले ही वे आज सशरीर हमारे बीच नहीं लेकिन उनका आशीर्वाद सदा मेरे और मेरे जैसे सभी विद्यार्थियों पर सदैव रहेगा। एक शिक्षक अपने विद्यार्थी का जीवन गढ़ देता है और विडंबना यह है कि विद्यार्थी प्रतिदान में कुछ भी नहीं कर पाता। प्रोफेसर गौतम सर जैसा शिक्षाविद् और शिक्षक बनना तो सबके लिए सम्भव नहीं है लेकिन यदि लेश मात्र भी उनकी तरह अपने विद्यार्थियों के लिए कुछ भी कर पाई तो मैं समझूँगी कि कुछ प्रतिदान गुरु के प्रति समर्पित हुआ है।

प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, गार्गी कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

"रामनाम मनिदीप धरु जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजियार॥"
(रामचरितमानस)

आदरणीय प्रोफेसर रमेश गौतम की यादें

महेन्द्र पाल शर्मा

प्रोफेसर रमेश गौतम जी को याद करते हुए मेरे सामने उनका तेज़ तर्रार व्यक्तित्व अपनी सम्पूर्णता में सामने आ रहा है। उनके साथ व्यतीत हुए अकादमिक जीवन की मधुर स्मृतियाँ अचानक सजीव हो गयीं हैं। उनसे मेरा केवल औपचारिक सम्बन्ध ही नहीं था, बल्कि उसमें गाढ़ी आत्मीयता थी। गौतम जी विश्वसनीय शोधकर्ता, श्रेष्ठ अध्यापक, कुशल प्रशासक और सच्चे मित्र थे। उनके अनगिनत विद्यार्थियों का एक लम्बा-चौड़ा समुदाय जो न केवल दिल्ली में, बल्कि दिल्ली के बाहर भी देश-विदेश के विश्वविद्यालयों और अन्य अनेक सरकारी तथा ग़ैर-सरकारी संस्थाओं में कार्यरत है। उनके अकादमिक व्यक्तित्व का कैनवस बहुत व्यापक था। उनके साथ काम करते हुए अकादमिक दुनिया से सम्बद्ध अनेक समितियों, उप समितियों, बोर्ड आफ़ स्टडीज़, आरडीसी आदि के दौरान उनको बहुत निकट से जानने-समझने का अवसर मिला। सही अर्थों में वे एक ऐसे व्यक्तित्व के धनी थे जिनसे सदैव कुछ न कुछ सीखने को मिलता था। जब वे दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष बने तो उनसे अधिक सम्पर्क बढ़ा। यों तो दिल्ली विश्वविद्यालय और उसके बाहर भी उनकी अकादमिक गतिविधियों और उनमें उनकी सक्रियता के बारे में सुनता रहता था लेकिन दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग से तकनीकी रूप से मेरा प्रत्यक्ष या परोक्ष सम्बन्ध नहीं बन पाया था।

शोध-कार्य पूर्ण करने के दौरान ही मेरी नियुक्ति जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली के हिन्दी विभाग में प्रवक्ता के रूप में हो गयी थी। यहीं रीडर और फिर प्रोफेसर बना। हालाँकि जामिया केंद्रीय विश्वविद्यालय था पर दिल्ली विश्वविद्यालय जितना विशाल नहीं था। शायद इसी का लाभ उठाते हुए दिल्ली विश्वविद्यालय के एक भूतपूर्व अध्यक्ष और हमारे साथी मुझे उलाहना देते हुए कहा करते थे कि 'दिल्ली विश्वविद्यालय का हिन्दी विभाग स्वयं में एक 'स्टेट' है। इसके इतने सारे कॉलेज और उनमें इतने अधिक अध्यापक हैं कि इसकी अपेक्षा आपका हिन्दी विभाग हमारे एक कॉलेज से भी छोटा है।' मैं भला उनके इस तर्क या उनके तथाकथित व्यंग्य का क्या जवाब देता। केवल मुस्कराहट से ही काम लिया। लेकिन गौतम जी को ऐसा कहते कभी नहीं देखा। वे ऐसे लोगों में से नहीं थे। उन्होंने कभी किसी बात का अभिमान नहीं किया। वे मुझे बहुत सम्मान देते थे और मेरी राय को अहमियत भी। बहुत लम्बे समय तक वे हिन्दी विभाग के अध्यक्ष रहे। ख़ैर, काफ़ी समय गुज़र गया और जब मैं जामिया के हिन्दी विभाग का अध्यक्ष बना तो मैंने सोचा कि दिल्ली के सभी प्रमुख विश्वविद्यालयों के बीच किसी न किसी तरह का अकादमिक आदान-प्रदान या सक्रिय सहयोग होना चाहिए। विभाग की ज़िम्मेदारी मिलने के बाद मैंने हिन्दी विभागों के बीच सम्पर्क बढ़ाने के बारे में दिल्ली के सभी विश्वविद्यालयों के हिन्दी विभागों के अध्यक्षों को इस आशय का एक पत्र लिखा। मेरा पत्र मिलते ही सबसे पहले उनका ही फ़ोन आया। कहने लगे कि 'आपका प्रस्ताव पढ़कर बहुत अच्छा लगा। पहले किसी ने इस ओर ध्यान ही नहीं दिया था। इसे अवश्य आगे बढ़ाया जाना चाहिए। कल तो आपसे इग्नू में भेंट होगी ही। वहीं बात करते हैं।' मुझे जानकारी नहीं थी कि इग्नू की उस बैठक में गौतम जी भी आएँगे। ख़ैर, संयोवश उनसे मेरी पहली और औपचारिक मुलाक़ात इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के भाषा एवं मानविकी संकाय में उस बैठक के दौरान ही हुई। यह बैठक प्रयोजनमूलक हिन्दी के पाठ्यक्रम से संबंधित थी, जिसमें विभिन्न विश्वविद्यालयों के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष तथा अन्य अनेक विशेषज्ञ आमन्त्रित थे।

इत्तफ़ाक़ से बैठक में पहुँचते ही मेरी दृष्टि गौतम जी पर ही पड़ी। उन्होंने भी मेरी ओर देखते हुए तुरन्त कहा, '(जैसे कि वहाँ मेरी ही प्रतीक्षा हो रही थी) आइए, डाक्टर साहब। आइये।' आपकी ही प्रतीक्षा हो रही थी। इतना कहते हुए उन्होंने अपने समीप रखी खाली कुर्सी की ओर संकेत कर दिया। सारांश में कहा जा सकता है कि मेरी पहली मुलाक़ात और पहली बार मेरी बातचीत प्रो. रमेश गौतम जी से उसी दिन हुई। उस समय जितनी भी उनसे बात हुई उसके आधार पर कहा जा सकता है कि उनकी आत्मीयता से मैं बहुत ही प्रभावित हुआ था। उनके काम करने की शैली, बोलने का ढंग, शब्दों का सही चयन और उच्चारण आदि सभी बहुत सुंदर। मैंने उनसे पूछा कि 'आप कभी जामिया मिल्लिया इस्लामिया में नहीं आये, इसका कोई ख़ास कारण?' इस पर उनका उत्तर था कि 'बुलाते तो आते। कभी बुलाया ही नहीं गया।' मुझे उनकी बात सुनकर स्वयं बड़ा आश्चर्य हुआ। कारण कि व्यक्तिगत रूप से कभी न मिल पाने के बावजूद अकादमिक कार्यों के लिए मैं उनका नाम प्रस्तावित करता था।

थोड़े दिनों बाद ही एक ऐसा अवसर आ ही गया कि विभाग की मॉडरेशन कमेटी की बैठक होनी थी। मैंने गौतम जी को फ़ोन किया। उन्होंने निवेदन स्वीकार करते हुए अपनी सहमति दे दी और वे बैठक के लिए निर्धारित दिन तथा ठीक समय पर आ भी गये। इसके पश्चात् तो अकादमिक और प्रशासनिक गतिविधियों का एक ऐसा दौर आया कि उनसे अक्सर मुलाक़ात होने लगी। मैं जामिया के हिन्दी विभाग का अध्यक्ष था और रमेश गौतम जी दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष। उन्हीं दिनों सौभाग्य से मैं यूजीसी की वृहत परियोजना की मूल्याँकन समिति का सदस्य बना तो दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग को हिन्दी साहित्य के इतिहास के पुनर्लेखन पर एक बड़ा प्रोजेक्ट मिला। प्रोफेसर रमेश गौतम ही उस

परियोजना के मुख्य संयोजक थे। हालाँकि उनके साथ हुई किसी बैठक में गौतम जी ने परियोजना का उल्लेख मुझसे नहीं किया था। उल्लेखनीय बात यह है कि इतिहास लेखन से सम्बन्धित उस परियोजना में पहला विस्तार व्याख्यान उन्होंने मुझसे ही करवाया। उनका मानना था कि विषय विशेषज्ञ की दृष्टि से इसका कारण यह था कि हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन और उसकी परम्परा पर मेरा शोध कार्य भी था।

रमेश गौतम जी ने हिन्दी नाटक पर अपना शोध कार्य किया था जो पुस्तक के रूप में प्रकाशित भी है। लोग जानते ही हैं कि उनकी पच्चीस से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हैं, उन्होंने लगभग पचास पाठ्य पुस्तकों का सम्पादन किया है। दो हिन्दी शोध पत्रिकाओं के सम्पादन के साथ-साथ उनके तीन दर्जन शोध-आलेख भी है। शायद ही भारत का कोई ऐसा विश्वविद्यालय हो जिससे किसी न किसी रूप में प्रो. गौतम जी का सम्पर्क न रहा हो। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि प्रोफेसर रमेश गौतम तकनीकी कार्यों में बहुत ही सावधानी बरतते थे। उनके काम में किसी भी तरह की कोई कमी निकालना कम से कम मुझे असम्भव लगता था। एक बार की बात है कि चयन के पश्चात जब विषय-विशेषज्ञों के हस्ताक्षर करने की बात आयी तो मैंने हस्ताक्षर कर दिए उसके बाद फ़ाइल रमेश गौतम जी के पास हस्ताक्षर के लिए रखी गयी। उन्होंने पूरी मिनट्स दो बार पढ़ीं और मेरे हस्ताक्षर भी देखे। उन्होंने फिर मेरी ओर देखा और कहा कि 'डॉक्टर साहब, एक बात का आज से ज़रूर ध्यान रखिए। कहीं भी आप हस्ताक्षर करें, लेकिन तिथियाँ ज़रूर अंकित करें। बिना तिथि डाले कहीं भी हस्ताक्षर ना करें और दूसरी बात हस्ताक्षर करने से पहले जो लिखा है उसको शांति से ध्यानपूर्वक एक बार पढ़ ज़रूर लें। कुछ चूक भी हो सकती है। किसी से भी हो सकती है। चयन समिति के मामले बहुत गम्भीर होते हैं। आजकल तकनीक और आरटीआई का ज़माना है। उनकी बात सुनकर थोड़ा अटपटा तो लगा पर उनसे सीखने को मिला। मैंने उनको धन्यवाद कहा और उसी दिन से तय कर लिया कि चाहे कितनी भी देर हो रही हो बिना स्वयं के पढ़े किसी भी निर्णय पर हस्ताक्षर नहीं करूँगा। गौतम जी के बारे में यह भी उल्लेखनीय है कि किसी काम को अपने हाथ में लेने से पहले वे स्वयं को ज़रूर सुनिश्चित करते कि क्या अपनी व्यस्तताओं के रहते हुए उस कार्य के साथ न्याय किया जा सकता है। यही कारण था कि जिस कार्य को भी अपने हाथ में लेते उसको पूरी जिम्मेदारी के साथ पूरा न्याय करके ही छोड़ते। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सीबीसीएस के तहत बी.ए. आनर्स हिन्दी का पाठ्यक्रम तैयार करने की ज़िम्मेदारी पहले रमेश गौतम जी को दी गयी थी। शायद तालमेल का अभाव और समुचित व्यवस्था न होने के कारण गौतम जी ने उस काम को छोड़ दिया। कहने का आशय है कि जिस काम को करने के लिए उनकी आत्मा न कहती वह काम गौतम जी नहीं करते थे। कारण चाहे जो हो। दरअसल रमेश गौतम जी के साथ काम करते हुए बहुत आनन्द आता था। उनको देखने से यह लगता था कि बहुत ही धीर-गम्भीर व्यक्ति हैं। वैसे तो वे थे ही बहुत गम्भीर व्यक्तित्व। जैसा उनका क़द-काठी था वैसे ही उनके स्वस्थ और उत्तम विचार थे। उनके सामने जब भी मैं कोई समस्या रखता वे यथासम्भव उसका समाधान निकालते। एक लम्बे समय तक उनके साथ गोपनीय कार्य करने का अवसर मिला। वैसे तो औपचारिक रूप से मैं उस समिति का संयोजक था। लेकिन प्रमुख काम वही करते थे। पूरा हो जाने के बाद काम को दो बार अलग-अलग लोगों के साथ पढ़ते। उनके उत्तर बार-बार मिलाते और स्वयं संतुष्ट हो जाने के बाद ही उनको सील करवाते। काम करते हुए भी बीच-बीच में बात करते हुए कोई पुराना अनुभव सुनाया करते थे जो उस समय बड़ा ही प्रासंगिक होता था। उन्हें साहित्य जगत की अनेक बड़ी हस्तियों के साथ काम करने का अनुभव प्राप्त था। उनके बारे में उनके पास असंख्य संस्मरण थे। एक दिन मैंने उनसे कहा कि आप इन संस्मरणों को व्यवस्थित करके पुस्तक रूप में छपवाइये। उन्होंने कहा कि 'डॉक्टर साहब, इन्हें प्रकाशित कराने की मेरी योजना तो है लेकिन उसके लिए समय ही नहीं मिल पा रहा है। दिल्ली विश्वविद्यालय का अध्यक्ष होने के नाते मेरी जिम्मेदारियाँ भी बहुत रहती है। मैं अपने व्यक्तिगत कार्यों के लिए भी समय भी नहीं निकाल पाता हूँ। मैंने कहा कि 'यदि आप तैयार हों तो उनको व्यवस्थित करने का काम भी हो जाएगा।' लेकिन क्या मजाल कि वे आसानी से मान जाते। उन्हें किसी पर सहज विश्वास ही नहीं होता था। कहने लगे 'कोई बात नहीं। मैं किसी दिन इनको पूरा पर लूँगा।'

प्रो. रमेश गौतम बहुत शानदार वक्ता थे और बड़े शोधकर्ता भी। किसी विषय से सम्बन्धित वे अपनी राय आसानी से नहीं बदलते थे। कही-सुनी या केवल आत्म-ज्ञान पर आधारित किसी बात को कभी स्वाक़ीर नहीं करते थे। जब कभी ऐसी समस्या सामने आती तो वे स्पष्ट कहते कि 'देखो जी, आपकी बात अपनी जगह सही हो सकती है। पर केवल जानकारी के आधार पर हम किसी प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकते। ठोस प्रमाण चाहिए। कही-सुनी बात पर निर्भर नहीं कर सकते। हमारी स्मृति की सीमाएँ भी तो हो सकती हैं। इस सम्बन्ध में सबसे ज़रूरी है तथ्य। तथ्य लाइए, मैं स्वीकार कर लूँगा। द्वितीय या तृतीय सोर्स नहीं।' साहित्य के इतिहास, साहित्यकार या उसकी किसी रचना के विषय में किसी जानकारी के लिए उन्हें रामचंद्र शुक्ल के 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' पर सर्वाधिक विश्वास था।

स्वास्थ्य के बारे में वे अतिरिक्त सावधानी बरतने वाले गिने-चुने लोगों में से थे। जहाँ तक मेरी जानकारी है वे पानी या खुली हुई कोई चीज़ वे कभी नहीं लेते थे। घर से बाहर पानी वे कम ही पीते थे। वे केवल बोतल और वह भी बिसलरी के पानी पर ही भरोसा करते थे। चाय भी बहुत कम पीते थे। किसी बैठक के दौरान चाय आती और मैं उनसे जब चाय के लिए कहता तो वे तुरन्त उत्तर देते कि 'डॉक्टर साहब, मैं इस मामले में बहुत सचेत रहता हूँ। घर से चलते समय बोतल में छाछ या लस्सी लेकर चलता हूँ और रास्ते में पी लेता हूँ। अभी रखी है। आपके लिए मँगाऊँ?' मेरे पास उनकी बात का कोई उत्तर ना होता। बहुत संस्कारी थे और जिनसे उनका सम्बन्ध था उनके बारे में संवेदनशील थे। मेरी माता जी के गुजर जाने का समाचार सुनते ही वे तुरन्त हमारे घर आये। बड़ी बेटी की शादी के अवसर पर दिल्ली से बाहर किसी पूर्व निर्धारित व्यस्तता के कारण नहीं आ सकते थे तो शादी से एक दिन पहले शगुन देने के लिए आए। दिल्ली में बहुत सीमित लोगों से मेरा सम्बन्ध रहा है।

रमेश गौतम जी उनमें से एक थे। मैं जिस रूप में उनसे अधिक जुड़ा, उससे सम्बन्धित अनेक यादें हैं। सभी को यहाँ समेटना सम्भव नहीं लग रहा है। कोरोना आ जाने के बाद मैंने उनसे वैक्सीन लेने के लिए बहुत कहा। सदैव कहते कि मुझे इस वैक्सीन पर विश्वास नहीं है। बेटे के पास दुबई जा रहा हूँ। वहीं ले लूँगा। ईश्वर की जैसी इच्छा वैसी ही स्थितियाँ बन जाती हैं। मेरी दृष्टि में थोड़े संकोची स्वभाव के थे। बहुत जल्दी किसी से घुलते-मिलते नहीं थे। किसी पर सहज ही विश्वास भी नहीं करते थे। अपने शिष्यों के प्रति उन्हें बहुत लगाव था। उनको बहुत मानते थे। यही कारण है कि उनको बड़े अच्छे लोग मिले। जितना अपने काम के प्रति समर्पित उससे अधिक अपने परिवार के प्रति समर्पित थे। अपने बच्चों के बारे में जब कभी बात करते तो उनकी तारीफ़ करते न थकते। बाद के दिनों में घर से बाहर नहीं जाना चाहते थे। वे बड़े ही कुशल प्रशासक थे। अवकाश प्राप्ति के बाद उनके इस पक्ष को और विकसित पल्लवित होने का अवसर न मिला। उनका तो क्या खुद विश्वविद्यालयी परिवेश को ही उनकी सेवाएँ न लेने का नुक़सान हुआ होगा। हालाँकि कई दूसरे विश्वविद्यालयों से उनको अकादमिक और प्रशासनिक कार्य के लिए निमंत्रण थे पर वे वहाँ न गये। जब कभी उनसे इस प्रसंग में मेरी चर्चा होती तो कहते कि 'मैं अब घर से बाहर नहीं जाना चाहता। ऐसे सच्चे व्यक्ति और अपने शुभचिन्तक की स्मृति को सादर नमन।

सेवानिवृत्त प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय

●

परिवेश जिसे कुण्ठित कर दे,
बुद्धि-कौशल है विवेक नहीं।
आंधी पानी में बुझ जाये,
वह रत्नदीप का तेज नहीं॥

(जगदीश चन्द्र 'सम्राट')

अब नहीं सुनाई देता वह "ऐ श्रीमन्!"

राजेन्द्र गौतम

सन् 2021 की मई के बीत जाने पर कोरोना की दूसरी लहर का आतंक कुछ कम होने लगा था और सबके मन में एक आश्वस्ती जन्म लेने लगी थी कि अब तो इस दैत्य से मुक्ति मिलेगी। जीवन में सामान्य गतिविधियाँ लौटने लगी थीं। यात्राएँ आरंभ हो गई थी। लगता था जिंदगी ढर्रे पर लौट आई है। तब नहीं सोचा था कि ढलान पर जाकर भी यह इतना घातक हो जाएगा! जुलाई की एक दोपहर हैदराबाद से प्रोफेसर एम. वेंकटेश्वर का फोन आया कि क्या प्रोफेसर रमेश गौतम के स्वास्थ्य के नवीनतम समाचार मुझे ज्ञात हैं? यों तो मार्च 2020 से ही आशंकाओं भरा समय चल रहा था और इस तरह के किसी भी प्रश्न से दिल दहल जाता था। यथासंभव निकट मित्रों से संबंध और संवाद की स्थिति में बने रहने की कोशिश रहती थी लेकिन एक दशक में कि पहली बार कुछ असामान्य हुआ था। देश के अलग-अलग शहरों के हम पांच-छह मित्र वर्ष में दो बार सप्ताह भर के लिए यूजीसी की कुछ गोपनीय बैठकों में जरूर शामिल होते थे। प्रोफेसर एम. वेंकटेश्वर भी इसी दल में हमारे सहयोगी थे। उनके प्रश्न ने मुझे अशांत और आशंकित कर दिया। कोरोना के कारण अप्रैल 2020 से रमेश जी से कभी-कभार फोन पर ही बात हुई थी, मिलना नहीं हुआ था। आशंका में डूबा मन लिए मैंने प्रिय अनिल शर्मा (जाकिर हुसैन कालेज) को फोन मिलाया। मुझे पूरा विश्वास था कि अनिल जी और आशा जी के पास रमेश गौतम जी की अद्यतन सूचनाएँ अवश्य होंगी। मेरा यह अनुमान तो सही निकला लेकिन जो सूचना मिली वह परेशान करने वाली थी। अनिल जी ने बताया कि जून के अंतिम सप्ताह से ही रमेश जी कोमा में है। कोरोना की दूसरी लहर के मंद पड़ने के बाद उन्होंने सोचा था यामिनी जी और वे कुछ दिन बेटे के पास दुबई जाकर पोते को लाड़ लडाने का सुख लेंगे। उनका पोता और मेरा पोता भी लगभग हमउम्र थे। मैं उस मोह और सुख को अच्छी तरह अनुभव कर सकता था। यह संयोग ही था कि मेरे बेटे दिगंत की शादी और उनके बेटे की शादी एक ही दिन हुई थी। दुर्भाग्य देखिए की दुबई जाकर वे कोरोना की मंद होती लहर में भी इसके शिकार हो गए। डॉ. अनिल ने बताया था कि यामिनी जी को भी कोरोना हुआ लेकिन वह स्वास्थ्य लाभ करने में समर्थ रहीं। वर्षों तक साथ काम करने से मैं जान चुका था कि रमेश जी खानपान में कितने संयमित रहते थे। घर का बना भोजन, लस्सी और पानी लेकर विभाग आते थे। गाहे-ब-गाहे बाजार की जो चटपटी चीजें विभाग में आती थीं तो उन्हें नहीं खाते थे। विशेष अवसरों पर मिठाई आती थी तो विभाग-कर्मचारी मिश्रा जी को उनका विशेष आदेश होता था कि फलां दुकान से ही लानी है। इतनी सावधानी का ही शायद यह परिणाम था कि उनकी चुस्ती-फुर्ती हमेशा बरकरार रहती थी और शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य का भी विभाग में आदर्श माने जाते थे। यह कहाँ सोचा था कि इतना व्यवस्थित जीवन जीने वाले रमेश जी को कोरोना इस हद तक विवश कर देगा। 27 अगस्त को जब उनके इस लौकिक संसार के त्याग की दुखद सूचना मिली तो परिवार जनों के साथ-साथ हम सब—उनके सभी सहयोगी, उनके हजारों विद्यार्थी और देशभर में फैले हिंदी विभागों के साथी सकते में आ गए थे।

वे मुझ से दो वर्ष बड़े थे। शिक्षा और अध्यापन में भी यही क्रम था। लेकिन मेरा उनसे परिचय दिल्ली आने के बहुत बाद में हुआ। मैं मैट्रिक से लेकर एम.ए. तक पंजाब विश्वविद्यालय का विद्यार्थी रहा और उन्होंने अपनी सारी पढ़ाई दिल्ली विश्वविद्यालय से की। जब मैं 1975 में दिल्ली विश्वविद्यालय के रामलाल आनंद (सांध्य) कॉलेज में आया, तब रमेश जी रामजस कॉलेज में पढ़ाते थे। लेकिन दिल्ली विश्वविद्यालय का विद्यार्थी न होने के कारण मेरा यहाँ बहुत लोगों से संपर्क नहीं था। विश्वविद्यालय परिसर भी मेरा जाना कम ही होता था। शायद 1985-86 की बात है। डूटा चुनाव निकट था और अपने दल के अभ्यर्थियों के पक्ष में प्रचार के लिए अन्य कॉलेजों के अध्यापकों की आवाजाही लगी रहती थी। रमेश जी तब तक विभाग में नहीं गए थे। तब वे डूटा की कन्वेस्सिंग के संदर्भ में जब हमारे कालेज आए तो उनसे संक्षिप्त-सी पहली मुलाकात हुई। मैं न जातिवादी रहा हूँ और न वंशवादी अथवा परिवारवादी लेकिन गौतम नाम से एक उत्सुकता जरूर पैदा हुई कि क्या ये भी मेरी तरह हरियाणा के किसी गाँव से हैं? तब उन्होंने यह तो बताया था कि उनका गाँव भी हरियाणा में है लेकिन बहुत विस्तार से चर्चा नहीं हुई थी। उनके विभाग में सेवारत होने के बाद भी मेरा उनसे ज्यादा मिलना-जुलना नहीं हो पाया क्योंकि मेरा विभाग जाना ही बहुत कम होता था। लेकिन एक तो 95-96 से मैंने उत्तर परिसर और दक्षिण परिसार में एमए की कक्षाएं पढ़ानी शुरू कर दी थीं, दूसरे सन् 1999 में जब रमेश जी हिंदी विभाग के अध्यक्ष बने तो नए पाठ्यक्रम के निर्माण का सिलसिला शुरू हुआ। इससे पूर्व भी 1995 से लेकर 99 तक दिल्ली विश्वविद्यालय में पाठ्यक्रम परिवर्तन की मुहिम चलती रही थी और मैं अक्सर अपने कॉलेज के प्रतिनिधि के रूप में बैठकों में भाग लेता था। बहुत गरमागरम बहस होती थी। लेकिन कोई ठोस परिणाम नहीं निकलता था लेकिन जब रमेश जी ने कमान संभाली तो कुछ सार्थक काम हो सका। स्नातक स्तर के पाठ्यक्रम के निर्माण के लिए जो सात-आठ लोगों के समिति बनी थी उसमें मुझे भी शामिल कर लिया गया था और महीना भर लगतार समिति की बैठक चली। तब मैंने डॉ. रमेश गौतम में प्रशासनिक दृढ़ता की झलक देखी थी। वे ठोस परिणाम तक पहुँचने के इच्छुक नजर आए। उनका स्पष्ट कहना था कि पाठ्यक्रम निर्माण में हमारी कोई राजनीतिक प्रतिबद्धता हावी नहीं होनी चाहिए और पक्षपात या व्यक्तिगत रुचि-अरुचि को हमें किनारे कर देना चाहिए। बात अच्छी

लगी और काम करने का मन हुआ। परिणाम यह हुआ कि स्नातक स्तर का एक बहुत संतुलित पाठ्यक्रम तो तैयार हुआ ही, उसी समय एक नई पहल भी हुई। पहले विश्वविद्यालय द्वारा पाठ्यक्रम में निर्धारित रचनाओं और रचनाकारों का नाम भर दे दिया जाता था। प्रकाशक अपने लाभ को ध्यान में रखते हुए अपने ढंग से ज्यादा बिकने वाली पुस्तकें तो छाप लेते थे (उनमें भी प्रमाणिकता का अभाव रहता था।) लेकिन पाठ्यक्रम के कुछ विषयों पर पुस्तक उपलब्ध ही नहीं होती थी। विद्यार्थियों को तो परेशानी होते ही थी परीक्षा के प्रश्न-पत्र तैयार करने में भी दिक्कत आती थी। इस बार तय यह हुआ कि दो-दो अध्यापकों के संपादन में पुस्तक तैयार की जाएँ। उनके प्रकाशन का अनुबंध प्रतिष्ठित प्रकाशकों से किया जाए। एक-तिहाई रॉयल्टी विभाग को प्राप्त हो, जिससे विभाग में कुछ सुविधाओं का विकास किया जा सके। मुझे एमए प्रथम वर्ष के लिए कहानी संग्रह संपादित करने का काम सौंपा गया। दूसरे अध्यापक नरेंद्र मोहन थे लेकिन बाद में व्यक्तिगत कारणों से उन्होंने अपना नाम वापस ले लिया। समिति ने कहा कि मैं अकेला ही संपादन करूँ लेकिन गौतम जी सिद्धांत के बहुत पक्के थे उन्हें लगा कि ऐसा करने से पक्षपात का आरोप लग सकता है। तब हरिमोहन जी ने और मैंने मिलकर पुस्तक संपादित की। लेखक-परिचय हरिमोहन जी ने तैयार किया और 24 पृष्ठ की कहानी की परिचयात्मक भूमिका मैंने लिखी। गौतम जी की यह योजना अगले पाठ्यक्रम परिवर्तन तक निरंतर चली और इससे विभाग को आर्थिक लाभ तो हुआ ही, पाठ्यक्रम संबंधी विवादों का भी सम्यक् हल मिला, जिसके कारण प्रश्नपत्र तैयार करने में बहुत-सी उलझनें सुलझ गईं। इस सबके विस्तार से वर्णन का उद्देश्य यही बताना है कि गौतम जी में निर्णय लेने की दृढ़ता थी और साथियों से काम करवाने का कौशल भी था। बाद में 2011 के इसी कौशल को साकार होते मैंने तब भी देखा जब वे 'जीवनपर्यंत शिक्षण संस्थान' के निदेशक बने। विभाग में नियुक्ति से पहले इस संस्थान में मैं दो वर्ष तक समन्वयक के रूप में काम कर चुका था और साथी अध्यापकों से सामग्री लिखवाने की कठिन चुनौती को समझता था लेकिन रमेश गौतम जी ने सभी विभागों के युवा अध्यापकों की ऐसी टीम बनाई, जिससे पाठ-निर्माण का कार्य समयबद्ध रूप से संभव हो पाया। सेवानिवृत्ति के बाद भी हम विश्वविद्यालय से बाहर अकादमिक कार्यों में साथ रहे। उन बैठकों में भी उनके टीमवर्क के कौशल और समय-सीमा में कार्य सम्पन्न करने के निश्चय का मैं साक्षी रहा हूँ।

विश्वविद्यालय और आयोगों के स्तर पर पाठ्यक्रम और प्रश्नपत्रों के तैयार करने में प्रामाणिकता पर उनका बहुत बल रहता था। स्मृति चाहे अपनी हो या दूसरों की, वे मूल स्रोतों उसकी पुष्टि अवश्य करते थे। लंबे अध्यापन के दौरान बड़े लेखकों के उद्धरण हमें याद हो जाते हैं लेकिन गौतम जी का मानना था कि स्मृति के आधार पर हम जो आलेखित करते हैं वह शत-प्रतिशत सही हो, यह जरूरी नहीं। प्रवाह में कई बार कुछ चीज छूट जाती हैं। इसलिए मूल स्रोतों से मिलाने के बाद ही वे आगे बढ़ते थे। कई बार तो हम कहते थे कि क्यों समय बर्बाद करें लेकिन तब उनकी बात बहुत महत्त्वपूर्ण लगती थी जब साथी विद्वानों की स्मृति का और मूल पाठ का अंतर मिल जाता था। स्मृति तो उनकी भी बहुत अच्छी थी। प्रसाद के 'पाठ' के तो वे विशेषज्ञ थे ही, सूरदास की कविता भी उन्हें बहुत स्मरण थी लेकिन जब मामला पाठ-निर्धारण का होता था, चाहे वह परीक्षा के संदर्भ में हो या पाठ्यक्रम की संदर्भ में, वे अपनी स्मृति को भी प्रमाण नहीं मानते थे। वे मूल से मिलान के बिना आगे नहीं बढ़ते थे। इस तरह के कार्यों में केवल अपनी बात पर अड़ना उनका स्वभाव नहीं होता था और दूसरों से भी उनकी यही अपेक्षा होती थी। जो संशोधन अन्य साथी प्रस्तावित करते थे तार्किक होने पर भी उसे तुरंत मान भी लेते थे। बौद्धिक बहस को वे कटुता का आधार नहीं बनाते थे। मुझे याद है, एक बार विश्वविद्यालय आयोग की एक बैठक में कुछ बिंदुओं पर मेरा उनसे मतभेद हुआ। संयोग से ज्यादातर अन्य साथी भी मेरे मत से सहमत नहीं थे। तो भी रमेश जी ने 'संख्या के लोकतंत्र' को बौद्धिक बैठकों के लिए स्वीकार्य नहीं माना और अगले दिन मुझे प्रमाण देने के लिए कहा। मैंने जब आधार-ग्रंथों के संदर्भ सामने रखे तो उन्होंने तुरंत स्वीकार कर लिया।

रमेश गौतम जी की जिस विशेषता का मैं सर्वाधिक कायल रहा वह थी उनकी सभा-शिष्टता। हिंदी विभागों की राजनीति और झगड़ों की चर्चा अक्सर हुआ करती है। यह राजनीति विचारधारा को लेकर भी होती है और प्रशासनिक दबदबे के लिए भी होती है। रमेश गौतम जी जिन पदों पर रहे, उनके कारण उनके विरोधियों और आलोचकों की संख्या का बड़ा होना स्वाभाविक था। वे लंबे समय तक कॉलेजों में होने वाली नियुक्तियों की चयन समिति में भी रहे। ऐसे में विभाग में और विभाग से बाहर उनसे मतभेद रखने वाले अध्यापकों की संख्या कम नहीं थी लेकिन मैंने कभी उन्हें आवेश में आते या कटु शब्दों का प्रयोग करते नहीं देखा। वह अपनी बात बहुत संयत ढंग से कहते थे। विभाग में भी और अन्यत्र भी उन बैठकों के दौरान मैं उनकी जिस बात का सबसे ज्यादा कायल था, वह थी, उनका हर छोटे बड़े को सम्मान देते हुए संबोधन करना, तब भी जब माहौल गर्म हो। वह अपनी बात की शुरुआत 'ऐ श्रीमान' अथवा 'ऐ श्रीमन्' संबोधन से करते थे। सामने वाले के कथन के उत्तर में वे अपनी बात को रखने से पहले इन शब्दों का प्रयोग जरूर करते थे। बैठक में मैंने किसी का अपमान करते उन्हें नहीं देखा, न अध्यापकों का न विद्यार्थियों का। एक अध्यापक और छात्र के रूप में दिल्ली विश्वविद्यालय से उनकी संबद्धता लगभग पाँच दशकों की रही। इसका उन्हें गर्व भी था इसीलिए वे इस संबद्धता का अक्सर जिक्र भी करते थे। उनके सामने विश्वविद्यालय की प्रतिष्ठा और गरिमा सदैव रही। यही उदात्त भावना उनके क्रियाकलापों को दिशा भी देती थी। हमने उनकी जिस शालीनता की चर्चा की है, वह एक महान् संस्था के प्रति उनकी निष्ठा का परिणाम भी थी। मैं तो सेवा-निवृत्ति के बाद वर्षों से विभाग नहीं गया हूँ। कल्पना ही कर सकता हूं कि अब दिल्ली विश्वविद्यालय की बैठकों में यह शिष्ट संबोधन सुनने को मिलता होगा या नहीं—'ऐ श्रीमन्!'

सेवानिवृत्त प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

गुरु गुन लिखा न जाय

राज भारद्वाज

दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के आधुनिक चाणक्य कहे जाने वाले प्रो. रमेश गौतम केवल प्रोफेसर या अध्यक्ष नहीं अपितु एक संस्था थे। वे ऐसे वट वृक्ष थे जिसकी छाया में उनके शिष्य ही नहीं अन्य विभागों के छात्र और प्राध्यापक भी खूब फले-फूले। जहाँ उनके प्रशंसकों की स्मृति में उनकी एक आदर्श तेजतर्रार, कर्मठ प्रशासक की छवि उभरती है वहीं हिन्दी के छात्रों, प्राध्यापकों में सुदर्शन छवि वाले पूर्णतः व्यवस्थित, और साहित्य को आधुनिक संदर्भों में व्याख्यायित करने वाले सजग, प्रखर बुद्धिजीवी का रूप साकार होता है।

आत्मविश्वास से लबालब, सजीला, रोबीला व्यक्तित्व हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष के रूप में अन्य विभागाध्यक्षों, डीन, डायरेक्टर्स के मध्य आकर्षण और स्पृहा का कारण भी बनता रहा होगा।

सन् 1992 में पी.एच.डी. सुपरवाइजर और शोध-विषय के चयन की बात आयी तो वीरेन्द्र ने कहा—''विभाग में नये प्राध्यापक डॉ. रमेश गौतम आये हैं। उनसे मिलकर लगा कि वो बहुत ही गहरे संवेदनशील शिक्षक हैं, स्टूडेंट्स की बात सुनते-समझते हैं। मैं तो पी-एच.डी. करूँगा तो उन्हीं के साथ। तुम्हें कल मिलवाएँगे, आज शायद वो चले गये हैं।'' अगले दिन मैं भी सर से मिलने गयी। सर आर्ट्स फैकल्टी के हिन्दी-विभाग के सामने वाले लॉन में खड़े मिले। उन्होंने पूछा—''किस विधा में रूचि है?'' मैंने कहा- "सर, आधुनिक कविता में।'' सर ने नाटक पर काम करने की बात कही। मैंने स्पष्ट रूप से मना करते हुए कहा—''नहीं सर, मैं तो कविता पर ही काम करूँगी।'' यह जवाब व्यावहारिकता के बिल्कुल विपरीत था साथ ही मैं इस बात से भी अनभिज्ञ थी कि सर, नाटक विधा के विशेषज्ञ हैं। सर ने कहा ठीक है। आज जब मैं अपने इस जवाब पर सोचती हूँ तो अपनी नादानी पर मुस्कुरा कर रह जाती हूँ। इस प्रकार मैं और वीरेन्द्र सर के पहले पी.एच.डी. शोधार्थी के रूप में हिन्दी विभाग में पंजीकृत हुए और बाद में अन्य मित्रों की एक लम्बी श्रृंखला सर के साथ जुड़कर स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करती रही।

रिसर्च फ्लोर पर शोध-कार्य करते या हिन्दी-विभाग के साथ बने बैंक के आस-पास जैसे ही सर मिलते- तुरन्त पूछते—''कितना काम हुआ?'' यदि दिन में तीन बार भी मिल जाते तो उनका सवाल यही होता। परिणाम था कि जून 1995 में पीएच.डी. की डिग्री अर्वाड हो गयी।

शुरू में सर से बात करते हुए थोड़ा डर-सा लगता था किन्तु धीरे-धीरे सर का अभिभावक का सा रूप सामने आने लगा था। समस्या सामने आयी नहीं कि निदान हो गया। 1993 में हमारी शादी में सर का सपरिवार आशीर्वाद मिला। हमारा परिवार भी मैडम और सर के आत्मीय स्वभाव से अभीभूत हुआ। इसके बाद तो सर के साथ पूरा परिवार जीवन के सुख-दुःख में इस तरह शामिल रहे कि—

'जिक्र हो आसमां का, या जमीं की बात हो,
खत्म होती है तुम्हीं पर अब कहीं की बात हो।'

अमृषा के जन्म पर अगले ही दिन सर और मैडम आशीर्वाद देने पहुँचे और कुछ दिनों बाद इसके नाम से खाता खोलने की सलाह भी सर ने दी थी। बाद में अनेक स्कूलों में से ए.पी.जे. में दाखिले की सलाह और पी.जी की पढ़ाई के लिए यू. एस. जाने और वहाँ पर आगामी जीवन से जुड़ी अनेक दूरगामी योजनाएँ - सर अक्सर बनाते रहते थे। बच्चों से घर पर सर जब भी मिलते - एक अलग ही रूप सामने आता। प्रथम तल पर जाकर उनके लिए उनकी पसंद के जूस, बिस्किट, चॉकलेट लेकर आते। घर पर पिज्ज़ा बनता और बच्चों से हँसी-मजाक करते हुए जो निश्छलता छलकती- आशीर्वाद मिलता- वे अविस्मरणीय पल थे। इस जन्म में कुछ अच्छा किया या नहीं पर पिछले जन्म में ज़रूर कुछ अच्छा किया था जो ऐसे विरले गुरु का आशीर्वाद मिला। वे हमारे तो कुल गुरु थे। हमारे सदाशिव थे। वीरेन्द्र के कन्धे पर ऐसे हाथ रखते जैसे कह रहे हो—'मैं हूँ न।' ऐसे गुरु, अभिभावक दुर्लभ हैं।

सन् 2014 में जब वीरेन्द्र ने पिताजी को खोया तब सर आई ट्रिपल एल (ILLL) में डॉयरेक्टर थे। वहाँ की पूरे दिन की थकान के बावजूद भी सर लगभग रोज़ शाम को घर आकर वीरेन्द्र के पास बैठते। वीरेन्द्र के लिए वे कितने तसल्ली के क्षण थे यह मुझसे बेहतर कौन जानता है? यह गुरु-शिष्य की आदर्श जोड़ी थी। पूरी तरह एक-दूसरे में घुले हुए जो एक-दूसरे के छोटे से संकेत को एक दूसरे की इच्छा मान उसे पूरा करने में जुट जाते थे। यह जोड़ी विश्वविद्यालय परिसर में, ए.सी. मीटिंग में, डूटा में, हिन्दी-विभाग के गलियारों में चर्चा का विषय बनती रही।

सर खुलकर कम ही हँसते थे। यामिनी मैडम मज़ाक में सर को इसी बात पर 'बुनियाद' के हवेली राम कहतीं। जब कभी ऐसा लगता कि माताजी के कमरे का दरवाज़ा बंद है या सो गयी हैं तो वीरेन्द्र माता जी से बिना मिले डॉइंग रूम में चले जाते। वहाँ सर के साथ बातचीत, हँसी-मजाक का सिलसिला शुरू होता। वीरेन्द्र मिमिक्री करते और तब सर ठहाका लगाकर हँसते तो माता जी बाहर आकर कहतीं- "रमेश की हँसी की आवाज़ आयी तो मुझे लगा- वीरेन्द्र आया होगा। रमेश इतना तो तभी हँसता है।''

अपने शोधार्थी के भविष्य की चिन्ता तो सर स्वयं शोधार्थी से ज्यादा करते। इन्टरव्यू में वे कभी किसी अभ्यर्थी को अटपटे प्रश्न पूछकर हतोत्साहित नहीं करते थे अपितु सम्मान पूर्वक साक्षात्कार लेकर

वापस भेजते। नौकरी लगने पर अपने छात्रों को सलाहनुमा आदेश देते—'अपनी कक्षा समय पर ज़रूर लेना, कक्षा लेने से बचना नहीं।' सर स्वयं भी अपनी कक्षाएँ नियमित रूप से लेते थे। दिल्ली विश्वविद्यालय में नाटक विधा के सर्वाधिक लोकप्रिय समालोचक प्रो. गौतम के साथ कितनी बार मंडी हाउस और लालकिला में नाटक देखने जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। सर, बड़े मनोयोग से नाटक की समीक्षा करते और साथ ही रंगकर्मियों की प्रशंसा भी करते।

सर ने अनेक बार मंच से अपनी शिष्या रमा यादव के रंगकर्म, उसकी उपलब्धियों की तारीफ भी की। प्रो. मुन्ना पाण्डेय की रंगक्षेत्र में बढ़ती गतिविधियों से सर प्रफुल्लित होते। आशा-अनिल की नाट्य आलोचनाओं की प्रशंसा करते। सर, नाटक पर किसी संगोष्ठी में बोलने के अपने छात्रों के आमंत्रण को सहर्ष स्वीकृति प्रदान करते। मुझे याद है जब हमने अपने कॉलेज में 'कृष्ण गुप्ता - स्मृति व्याख्यान माला' प्रारम्भ की तो सर प्रतिवर्ष वहाँ व्याख्यान के लिए उपस्थित होते। सर की यह उपस्थिति उनके नाट्यानुराग और अपने छात्रों के प्रति स्नेह का प्रतीक होती थी। आज मेरी नाटक विषय की जो थोड़ी-बहुत समझ बनी है - वह सर की वज़ह से ही है।

ज़िंदगी तो ज़िंदगी है, हर रंग से गुजरती है। सर ने अपने जीवन में अपनों से लेकर कई अजीज छात्र मित्रों तक, विश्वविद्यालय परिसर से लेकर सामाजिक-राजनीतिक फ़लक तक अनेक रंग देखे। कई जटिल परिस्थितियों में वीरेन्द्र और सर को जूझते और सँभलते हुए भी देखा। चुनौतियों के सम्मुख उनका 'गुरुत्व' और बड़ा होकर सामने आता था। वो स्वाभिमान और निष्ठा के साथ तन कर खड़े रहते थे। कुँवर बेचैन के शब्दों में—

''कोई उस पेड़ से सीखे, मुसीबत में खड़े रहना, कि
जिसने बाढ़ के पानी में भी सीखा खड़े रहना
मैं कितने ही बड़े लोगों की निचाईयों से वाकिफ़ हूँ
बड़ा मुश्किल है दुनिया में बड़े होकर बड़े रहना।''

सर की जीवन-शैली को देखकर लगता था कि उनके जीवन का मूल-मंत्र है—'न दैन्यं न पलायनम्'। सर को न तो दीन-हीन दिखना या बनना पसंद था और न ही स्थितियों से पलायन करना। सर ऐसे आचार्य थे जो अपने आचरण से अपने विद्यार्थियों को शिक्षा देते थे। वे स्वयं ऐसे स्वाभिमानी व्यक्ति थे जो दूसरे के स्वाभिमान की रक्षा का भी पूरा ध्यान रखते थे। स्थितियों से जूझने में विश्वास करते थे। वे मैनेजमेंट गुरु थे। हर कार्य योजनाबद्ध तरीके से समय पर करते। कई बार सलैक्शन कमेटीज़ में सर के साथ बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। विरोधी को भी सम्मान देते हुए तर्क से अपने पक्ष में करते हुए देखा। एक-एक बात पर सतर्क रहते। मिनिट्स ध्यान से लिखवाते-पुनः पढ़ते।

मैंने सर के जितना व्यवस्थित व्यक्ति नहीं देखा। उन्हें मैंने किसी चीज़, कागज़ को खोजते नहीं देखा। सब यथास्थान ही रहते।

मैडम ने वह डिब्बा भी दिखाया जिसमें सर अपनी अंतिम दुबई यात्रा पर जाने से पहले एक-एक चाबी पर्ची लगाकर अलग-अलग पैकेट में सँभाल कर गये थे।

सर अपने छात्रों की कितनी चिन्ता करते थे, इससे जुड़ा एक किस्सा मुझे याद आता है- किसी कॉलेज में एडहॉक का इन्टरव्यू होना सुनिश्चित हुआ था जिसकी सूचना सर मुझ तक पहुँचाना चाहते थे। इन्टरव्यू अगले ही दिन था। उस समय तक मोबाइल फोन नहीं आये थे और यदि लैंडलाइन फोन खराब हो जाते थे तो ठीक होने में हफ्ता लग जाना आम बात थी। जब लैंडलाइन नहीं मिला तो सर ने सुमन मैडम (प्रिंसिपल LSR) को जो घर के पास ही सरोजिनी नगर में रहती थीं- नौरोजी नगर वाले घर में भेजकर संदेश दिया। क्या आज के आपाधापी भरे जीवन में यह सम्भव है? लेकिन सर ऐसा करते थे।

सर, हरफन मौला स्वभाव के व्यक्ति थे। वे नाटक देखने, पुराने गीत सुनने, गुनगुनाने के शौकीन तो थे ही क्रिकेट और फुटबाल के मैच भी शौक से देखते थे। टेबल टेनिस इतनी अच्छी खेलते थे कि हिमाद्रि और वीरेन्द्र को अक्सर हरा देते थे।

यादों की बहुत लम्बी फेहरिस्त है। जिस दिन भगिनी निवेदिता कॉलेज में नौकरी लगी तो अगले दिन सर के घर गये तो उन्होंने कहा—'राज इस कॉलेज की प्रिंसीपल बनेगी।'

सर का आर्शीवाद हमेशा ही फलीभूत होता है।

यथा पुत्रस्तथा शिष्यों ने भेदः पुत्रशिष्ययो- की उक्ति सर पर अक्षरशः चरितार्थ होती है।

मेरे हृदय में सर की स्मृतियों का कोई अंतिम छोर नहीं। उनकी पुण्य स्मृति को सादर नमन।

''सब धरती कागद करूँ, लेखनि सब बनराय
सात समुद्र की मसि करूँ गुरु गुन लिखा न जाय।''

प्राचार्या
भगिनी निवेदिता कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

मेरे शिल्पकार

मुनीश शर्मा

रास्ता पार हो जाता है चाहे ना चाहे ...कोई पथप्रदर्शक मिल जाये तो सुगम और सुलभ हो जाता है काँटों से, संशयों से भरा रास्ता... आसान तो जिंदगी होती नहीं..कुछ के लिए परीक्षाएँ पीछा छोडती ही नहीं। शायद परीक्षार्थी को तो नही मगर प्रकृति जानती होगी कि किसको कसौटी पर रगड़कर परखना है। मुझ अनगढ़, बाढ़ में बह गयी शिला के खण्ड खण्ड हो रहे पत्थर को भी कहने को बिना आत्मिक मजबूरी के कहने का मन नहीं हो पाता कि अपने शिल्पकार के बारे में कह पाने का साहस कर पाता..। अनिल भाई का फोन आया सर की स्मृति में एक विशेषांक निकालने का प्रयास है कुछ दे दो। पार्क में घूमते हुए बड़ी जीजी जो एक महीना पहले ही अचानक छोड़कर निसर्ग में विलीन हो गई थी। बिना कुछ कहे सुने.. उसके जाने की पीड़ा से दुखी था बहुत दुखी..अनिल का फोन आया और सर की स्मृतियों को कागज पर उतारकर देने की बात आयी मन घबरा गया...सर का जाना भी ऐसे ही हुआ था। अप्रैल (2021) में ही तो उनसे फोन पर बात हुई थी.. "अरे मुनीश, सब ठीक है" मैंने कहा था आपका आशीर्वाद है सर .. बहुत सारी बातें की उन्होंने.. सऊदी से ही फोन आया था। हिमाद्रि (बेटे) के पास गये थे..कोविड के मृत्यु तांडव के बीच जब चारों ओर बस एक ही खबर मौत का बोलबाला था तब उसी समय सर बेटे के पास चले गये थे वहीं से उन्होंने फ़ोन किया था। मेरे बच्चे मुझे छेड़ते थे..पापा आप तो अपने सर से आज भी इतना ही डरते हो.. और मैं मुस्कराकर रह जाता था। एक दिन मैंने उन्हें बताया था कि इस डर में उनका स्नेह, प्रेम और उनके प्रति मेरी कृतज्ञता सब कुछ होती है। जो अधिकार वो मुझपर रखते हैं उसमें लेश मात्र भी कमी मेरा मन स्वीकार नहीं कर सकता ..आज जो कुछ हूँ सिर्फ पद, मान सम्मान से नहीं जीवन की गहरी समझ के लिए मेरे सामने पहला पाठ उनके व्यक्तित्व का ही था। जिसे मैंने वैसे ही सीखा जैसे कोई नौसिखिया कई पड़ावों में सीखता है। मेरे संस्कार, मेरी क्षुद्रताएँ, मेरी निराशाएँ, मेरे अविश्वास से सुलगते जीवन में पहले वही थे..जो मेरे अस्तित्व के खिलाफ थे..मेरे अस्तित्व को मिटाने और नये सिरे से गढ़ने वाले कुम्हार वही थे..उन्होंने मुझे तब तक रौंदा जब तक मुझ में से मेरी क्षुद्रता के रिड़कते कंकर करकट मिट ना गये..मैं उनसे कहता था.. मेरे सर गौतम जी पहले ऐसे शख्स थे...जिनके व्यक्तित्व से सीखा जा सकता था..मगर मेरी बुद्धि को वे तब तक समझ नहीं आये जब तक मैं उस स्थितियों के सामने नहीं पहुँचा जिन्हें उन्होंने भोगा झेला और सीखा होगा। मेरी मूर्खताओं ने मुझे सर में अनेक खामियाँ दिखायीं... एक अनजान बच्चे को उनकी गुरुता कुछ गुरुत्व के बाद ही समझ आयी।

कहानी जब मझदार में होती है उस वक्त कहानी नहीं होती भवरों, तूफानों, लहरों के भयानक शोर की मार झेलती जिंदगी होती है..डूबने से बच रहे तो कहानी हो जाती है। कहने वाला और कथा दोनों जिन्दा बने रह गये हों..बच गया और कह रहा हूँ...एक लम्बी कहानी.. कितनी बार उसकी डोर लमक गयी.. टूट टूट गयी मगर. . टूटी नहीं..चलती रही..उस लम्बी कहानी का लम्बा कथानक गौतम सर के बिना सम्भव नहीं था। अगर गौतम जी ना होते तो मेरी कहानी दूसरी होती क्या होती .. सोच नहीं सकता। बड़े भैया रामजस में हिन्दी ऑनर्स में एडमिशन करा गये थे..घर की हालत ऐसी थी नहीं कि कॉलेज लाइफ को एन्जॉय कर पाता....जिम्मेदारियों से भरी हुई जिन्दगी लेकर कॉलेज आना हुआ। तब कई दुर्घटनाएँ देख चुका था.. व्यक्तित्व में खिंचाव और कुछ दरक भी गया था। गौतम जी वहीं मिले.. रामजस कॉलेज के सबसे आकर्षक टीचर..कुछ अलग और साहसिक करने की आदत सर में शुरू से थी। आज इस बात को समझ सकने में सक्षम हूँ...उन्हें समझने की अकल आदमियों के जंगल में निकलने के बाद आयी...हमसे पहले प्रेमचंद या एक एक आधा पेपर विकल्प में थर्ड इयर में सब लिया करते थे.. मगर सर ने तब नाटक को विकल्प के तौर पर पहली बार रखा। उस समय तक सर मेरे लिए सर नहीं थे बस बाकियों की तरह थे। नाटक गिरीश और कुछ ने लिया तो मैंने भी ले लिया.... समझ का तो तब तक 'स' भी नहीं उगा था.. क्योंकि पहली बार विकल्प आया था तो क्लास के बहुत कम बच्चों ने रिस्क लिया पता नहीं कैसा पेपर होगा.. मैंने ले लिया.. और मुझे आज तक याद है सबसे ज्यादा नम्बर उसी में आए.. गौतम सर से ज्यादा परिचय नहीं हो पाया। मेरी अपनी मुसीबतों से अटी पड़ी जिन्दगी के कारण. . कॉलेज कम ही जा पाता था। एम.ए. में आ गया था मगर रोटी की फिकर ने अच्छे खासे नम्बर होने के बावजूद फ़ाइनल में छोड़ दिया। कॉम्पिटिशन की तैयारी में लग गया.. ये लम्बी कहानी है।

एम. फिल. में सर से सही मायने में पहली बार मुलाकात हुई. ..वक्त की रगड़ ने छीला मगर कुछ चमक भी दी। गौतम जी का व्यक्तित्व बाकी के हिन्दी प्रोफेसर की तरह ढीला-ढाला नहीं था। ओढने पहनने का सलीका, साफ-सुथरा रहना और रुआब के साथ-साथ हास्य बोध भी गजब का था। रोबीले होकर भी हँसी मजाक उन्हें और आकर्षक बनाता था। सर नाटक पढ़ाते थे। नाटककारों में जयशंकर प्रसाद और भारतेंदु उनके प्रिय नाटककार थे...क्यों थे आज समझ में आता है। प्रसाद जी का चन्द्रगुप्त उन्हें बहुत भाता था। समय के घात-प्रतिघात देखें होंगे तभी उनका साधारणीकरण चन्द्रगुप्त से हुआ होगा आज कह सकता हूँ। बहुत कम लोग अपने जीवन के सभी आयामों को संतुलित कर पाते हैं। हिन्दी विभाग में वे ईर्ष्या के पात्र थे। उन्हें देखकर लगता था मानो चाणक्य से दीक्षित होकर चल रहे

हों। दिल्ली विश्वविद्यालय की राजनीति को जितना वे समझते थे शायद ही कोई दूसरा समझता हो। आज मोदी जी के व्यक्तित्व और उनके व्यक्तित्व में बहुत-सी समानताएँ स्थापित कर सकता हूँ। राजनीति राजनीति में ही नहीं शिक्षा के मंदिरों में भी होती है ये एम् फिल में आने के बाद का मेरा पहला सबक था। राजनीति है इसका विलाप करने से काम नहीं चल सकता राजनीति को जैसा चाणक्य ने बताया समझाया था वह ऐसी भी हो सकती है उसका एक दृष्टान्त प्रोफेसर रमेश गौतम सर ने प्रस्तुत करके दिखा दिया। विभाग में मार्क्सवादी प्राध्यापकों की बहुलता थी। श्रद्धेय प्रोफेसर महेंद्र कुमार जी दक्षिणपंथी धारा के एकमात्र प्रोफेसर थे। सर रामजस से विभाग में आ गये और हिन्दी विभाग में मार्क्सवादियों के एकाधिकार के दिन चले गये। साहस और कुशाग्र बुद्धि दोनों के धनी थे सर। कभी किसी से बिगाड़ा नहीं मगर अपनी राष्ट्रवादी विचारधारा को विभाग में धीरे धीरे प्रवाहित कर दिया। नाटक के अधिकारी विद्वान् थे। चन्द्रगुप्त पढ़ाते ही ना थे उसे जीते भी थे। जयशंकर प्रसाद जी की भारतीय संस्कृति और मूल्यों के प्रति आस्था का सर पर गहरा प्रभाव था। चन्द्रगुप्त के चाणक्य ने उन्हें भी एक हद तक कौटिल्य बना दिया था। भारतीय जीवन मूल्यों में गहरी आस्था होने के साथ साथ यथार्थवादी भी थे।

जीवन को देखने की मेरी समझ भावुकता और कोरे आदर्शों के कोहरे से आच्छादित थी मगर सूर्य के ताप ने सब कुछ बदलकर रख दिया। किशोरावस्था से लेकर प्रौढ़ होने तक भी एक वही थे जिन्होंने वह सिखाया जिसने मेरे जीवन के सभी प्रश्नों के उत्तर दे दिये। जितने कठोर अनुशासित थे उतने ही अपने शिष्यों की किसी भी समस्या के लिए हमेशा एक पिता की तरह विश्वास बने रहे। उनकी उपस्थिति बुरे से बुरे समय में भी उनके कुछ कहे बिना भीतर तक आत्मविश्वास भर जाती थी। हिन्दी नाटकों के त्रासद तत्व मेरा पीएचडी का विषय था त्रासदी देखी भी जी भी। सर ने त्रासदी नायक बनना सिखाया। संघर्षो को ताकत बनाना सिखाया। अरिवंदों कॉलेज का वो पहला मेरा साक्षात्कार दिल्ली विश्वविद्यालय का पहला ऐसा साक्षात्कार रहा होगा जब प्रिंसिपल पूरी तरह से हमारे विरोध में थी मगर सर का वो तेवर और कौटिल्य पहली बार देखा। लाख विरोध के बावजूद साक्षात्कार हुआ और मैं वहाँ प्रवेश पा गया। ऐसा ही एसोसिएट प्रोफेसर के समय हुआ। प्रिंसिपल की अनीतियों का विरोध करने के कारण मैं उनके टारगेट पर। तत्कालीन समय बहुत ही अराजक था। उसी समय मैंने एसोसिएट प्रोफेसर के लिए भरा हुआ था। सर से बात की.. छूटते ही बोले यार तुम क्या हमेशा सींग फंसाए रहते हो। मगर उन्होंने सभी कुछ कितना सरल सुगम और अनुकूल बना दिया था। उसे कैसे भूल सकता हूँ। साक्षात्कार पूरा होने के बाद मेरा मान बढ़ाने के लिए स्टाफ रूम तक आये। साथ में चाय पी, सिर पर हाथ रखा और चले गये। एक कठोर पिता की तरह सदा डाँटा भी और पुचकारा भी माँ चली गयी, तेरहवीं थी मुझे किसी ने कहा तुम्हारे सर आये हुए हैं। मैंने बाहर देखा वीरेन्द्र भाई साहब, अनिल शर्मा, संजय शर्मा सबके साथ सर आये। अपनी उपस्थिति से मुझे ढाढस बंधाया और चले गये।

आज कुछ थोड़ा बहुत लिख पाने के पीछे उन्हीं का अनुशासन था। जब लिखना मेरे लिए बहुत दुष्कर था मन ही मन कहता था कि ना खुद चैन से बैठने हैं ना ही बीतने देते हैं। 'भारत दुर्दशा' और 'अंधेर नगरी' पर लिखने के लिए कहा। एक पुस्तक पर काम कर रहे थे सर. ..लिखना कितना मुश्किल काम है और वो भी मौलिक लिखना। एक साल लगा मुझे सीखने में कितनी ही बार ख़ारिज किया उन्होंने कभी वाक्य विन्यास को लेकर कभी भाषा को लेकर। मगर जब शब्दों को साधना सीखा तो आर्ट्स फैकल्टी के कमरा नम्बर 22 में वाइस चांसलर साहब के सामने मेरी प्रशंसा भी की और कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा मुनीश मैंने बोलते समय तुम्हारे इस नये मुहावरे को ले लिया। मैंने लज्जित होते हुए कहा सर आपने ही सिखाया है आप ही ने तराशा है. .आप ही का दिया हुआ है सब...कितनी बार सर के घर जाना होता था..कई प्रोजेक्ट्स में सर ने मुझे भी मौका दिया। घर पर ही उनकी छोटी सी लाइब्रेरी थी वहीं बैठे लिखते पढ़ते रहते..हर विषय पर बात करते .. मेरी सुनते अपनी कहते.. उनका स्नेह और विश्वास मैं पा सका यह उनकी ही कृपा और प्रेम था। कभी भी डांट और खाना खिलाए बिना उन्होंने नहीं भेजा। मैडम से कह देते थे.. यामिनी मुनीश आया है दूर से आया है खाना खाकर जाएगा। मेरे लाख मना करने के बाद भी कभी ऐसा नही हुआ कि साथ बिठाकर खाना खिलाये बिना आने दिया हो....कितना कुछ है कितनी स्मृतियाँ हैं उनके साथ की एक पुस्तक बन सकती है.... घर दूर था और वे मीटिंग करते तो बाकि स्टूडेंट्स पहुँच जाते मैं सबसे लेट पहुँचता था.. एक बार मुन्ना पांडे ने बताया कि जब आप देर से आये और आपने फोन पर कहा कि सर बस पहुँचने वाला हूँ तो सर ने मुझसे कहा था अभी नही आएगा एक घंटे तक इसे तब से जानता हूँ जब ये छोटा-सा रामजस में आया था।

प्रोफेसर हो गया था मगर सर का फोन आते ही जहाँ होता था वहीं खड़ा हो जाता था। एक ही आवाज अरे मुनीश शर्मा कैसे हो..और मैं उनके स्नेह कृतज्ञता से झुका इतना ही कह पाता सर आपका आशीर्वाद है। कोविड की भयंकर त्रासदी का शिकार होने से दो महीने पहले भी उनका फ़ोन आया था किसी प्रोजेक्ट के सिलसिले में...बोले हिमाद्रि के पास जा रहा हूँ। मगर समय पर जो काम कहा है उसकी रिपोर्ट करते रहना। मैंने कहा सर बिलकुल हो जायेगा। मगर मई या जून में अनिल शर्मा से बात करते हुए पता लगा की सर कि तबियत बहुत खराब है। पता नहीं था कि कोविड का प्रकोप सर को ले जाएगा। विश्वास नहीं होता आज भी कि वो तेजस्वी चेहरा, सधी हुई मुनीश शर्मा कहाँ हो कहने वाली आवाज आज नहीं है... मेरा शिल्पकार जिसने एक मिटटी के लोंदे को पात्र बना दिया वो नहीं हैं...मेरे पिता तुल्य सर का यूँ आकस्मिक चले जाना मेरे जीवन के शोध प्रबंध में त्रासदी का नया अध्याय जोड़कर चला गया। आज दुनिया को देखता हूँ। पग पग पर सर की बातें जो उस समय कभी मैं स्वीकार नहीं कर पाता था आज समझ आती हैं। जैसे दुनिया के जंगल में उतरता जा रहा हूँ सर के व्यक्तित्व की सार्थकता महसूस होती हैं। आज जो भी कुछ हूँ उन्हीं के स्नेह जल और जीवन की माटी से गढ़ा हुआ उनका मानस पुत्र हूँ।

प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, श्री अरविन्द महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

प्रभावशाली व्यक्तित्व

रामबक्ष जाट

इग्नू से जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय आने के कुछ वर्षों बाद मुझे भारतीय भाषा केंद्र के अध्यक्ष की जिम्मेदारी मिली। तब दिल्ली विश्वविद्यालय से हमारे प्रशासनिक रिश्ते और मजबूत हुए।

मैंने एक बार प्रो. रमेश गौतम को मेरे विश्वविद्यालय की अकादमिक परिषद के सदस्य बनाने का प्रस्ताव रखा। विश्वविद्यालय ने मान लिया। हालांकि वे किसी भी बैठक में नहीं आ पाये। दिल्ली विश्वविद्यालय से रिश्तों को मजबूती देने के लिए अशोक वाजपेयी के साथ प्रो. निर्मला जैन को भी विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में आमन्त्रित किया। उन्होंने स्वीकृति दी और वे दोनों आये।

हालांकि कुछ मित्रों का मत था कि नामवर जी ने कभी विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में किसी को आमन्त्रित नहीं किया। मैंने कहा कि वे नामवर सिंह थे। कुछ भी कर सकते थे। लेकिन अब नामवर जी का समय चला गया। हमें अपने समय के हिसाब से चलना चाहिए।

इसके बाद विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की महत्वाकांक्षी परियोजना आयी। हिन्दी के ऑनलाइन पाठ्यक्रम बनाने की जिम्मेदारी मुझे दी गयी। मैंने भारतीय भाषा केंद्र में सभी प्रदेशों और विचारधाराओं के शिक्षकों की बैठक बुलाई। नामवर जी ने इसका उद्घाटन किया। इस बैठक में और लोगों के साथ प्रो गौतम ने भी भाग लिया। मैंने नामवर जी से निवेदन किया कि उद्घाटन भाषण देने के बाद आप चले जाएं। इस बैठक में हिन्दी के 16 प्रश्नपत्र और उनका पाठ्यक्रम बनाना था। मैं जानता था कि नामवर जी के रहते हुए कोई बोलेगा नहीं। इस तरह वह पाठ्यक्रम नामवरजी का बनाया हुआ पारित हो जाएगा। यह मैं नहीं चाहता था। मैं चाहता था कि इसमें सबकी सक्रिय भागीदारी हो। इसमें हिन्दी के कई वरिष्ठ प्रोफेसर उपस्थित थे। इस बैठक में सबका सहयोग तो मिला ही। मित्रों ने यह लक्षित किया और मुझे बताया कि प्रो. रमेश गौतम आपका बहुत सहयोग कर रहे थे।

नामवर जी के जाने के बाद विस्तार से पाठ्यक्रम की चर्चा हुई। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने मुझे पूरी स्वतंत्रता दे रखी थी। विश्वविद्यालय से कोई अनुमति नहीं लेनी थी। मैंने इस सोलह प्रश्न पत्रों के सोलह संयोजक बना दिये। प्रो रमेश गौतम को नाटक और रंगमंच के प्रश्न पत्र की जिम्मेदारी दी गयी। जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया।

मैंने प्रश्न पत्र संयोजकों से निवेदन किया था कि आप अपनी पसंद के पाठ लेखकों से पाठ तैयार करवा लो। प्रो. गौतम ने दिल्ली विश्वविद्यालय में पाठ लेखकों की बैठकें बुलाई और मुझसे कहा कि आप इनको सारी प्रक्रिया समझा दो। मुझे सुखद आश्चर्य हुआ कि प्रो. गौतम ने बीच में कोई दखल नहीं दी। आम तौर पर हिन्दी का प्रोफेसर अपने शिष्यों और चाहने वालों को किसी को सौंपते नहीं। सौंप दे तब भी वह अपने अहंकार को आपसे ऊपर रखते हैं। प्रो. गौतम ने इस तरह की कोई बात कभी नहीं की। यह उनका बड़प्पन था। मेरे मन में उनके लिए आदर भाव बढ़ता ही गया।

साल डेढ़ साल बाद पाठ्यक्रम का पहला प्रारूप तैयार हो गया। काम सही दिशा में जा रहा था।

इसके बाद विश्वविद्यालय अनुदान आयोग में एक बैठक हुई। मुझे पता चला कि महात्मा गांधी अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय के कुलपति इसको करना चाहते हैं। आयोग ने मुझसे पूछा तो मैंने बताया कि हमारा आधे से अधिक काम हो चुका है। नौ प्रश्न पत्रों का काम मेरे पास ही रहा। मैंने सूचित किया कि आधे से ज्यादा काम हो चुका है। इसलिए इस तथ्य का उल्लेख होना चाहिए। सभी प्रश्न पत्रों के संयोजक वही रहने चाहिए। यदि आप अपने पसंद के प्रश्न पत्र संयोजक बनाते हो तो इन वर्तमान संयोजकों को सह संयोजक के रूप में रखना चाहिए। मुझे इस पाठ्यक्रम के बारे में किसी तरह का कोई विवाद करना ही नहीं था। मैं चाहता था कि यह पाठ्यक्रम बन जाये। जब इन संयोजकों को बदलने लगे तो प्रो. रमेश गौतम ने पुराने संयोजकों को ही जारी रखने के लिए कहा। अन्ततः प्रो. रमेश गौतम नाटक और रंगमंच प्रश्न पत्र के संयोजक रहे।

फिर जब देश में करोना का प्रकोप हुआ तब दो तीन वर्षों तक सारे भारत के छात्र ईपीजी पाठशाला के भरोसे हो गये। अब भी मैं कहीं जाता हूँ तो कुछ लोग मिल जाते हैं जिन्होंने उस दौर में ईपीजी पाठशाला का अध्ययन किया है। अब भी करते हैं।

प्रो. रमेश गौतम के इस सहयोग का मैं आभारी हूँ। उनके असामयिक निधन से मेरी बहुत अधिक हानि हुई है। यह मैं आज भी कहूँगा।

सेवानिवृत्त प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

●

प्रोफेसर रमेश गौतम : मेरे गुरुवर : 'ऐसो को उदार जग माहीं'

रमा यादव

प्रोफेसर रमेश गौतम हिन्दी साहित्य का एक ऐसा नाम हैं जिनके नाम को छात्रों के मध्य रंगमंच का पर्याय कहा जाता रहा है। रमेश गौतम सर से मेरा पहला परिचय तब हुआ जब वो हमें हमारी स्नातकोत्तर की कक्षा में जयशंकर प्रसाद का नाटक 'चन्द्रगुप्त' पढ़ा रहे थे। अरसा बीत जाने पर भी आज भी कोने की वो 'चेयर' और उस पर बैठे सर मेरी स्मृति में वहीं है आज भी मैं उनके चेहरे की उस स्निग्ध मुस्कान को यहाँ बैठी देख पा रही हूँ और उसके रस से सिंचित हो रही हूँ। उस दिन मुझे नहीं पता था कि आज जो मुझे 'चन्द्रगुप्त' पढ़ा रहे हैं कल उन्हीं के मार्गदर्शन में मेरा जीवन गढ़ा जाना है और वहीं से मेरी शिक्षा का गुरुमंत्र मुझे मिलने वाला है।

नाटकों में अभिनय करती हूँ और नाटक निर्देशित करती हूँ तो अगर इस दृष्टि से एक विहंगम दृष्टि डालूँ तो सम्पूर्ण दिल्ली विश्वविद्यालय में कोई भी ऐसा शिक्षक नहीं जो नाटक और रंगमंच को लेकर इतना कटिबद्ध रहा हो या जिसने नाटक और रंगमंच के इतने छात्र और शिक्षक गढ़ दिये हों, जितने प्रोफेसर रमेश गौतम ने, आने वाले ज्यादा नहीं तो चार दशकों तक दिल्ली विश्वविद्यालय में नाटक और उसको समझने और पढ़ने-पढ़ाने वालों का अकाल नहीं पड़ेगा।

दिल्ली विश्वविद्यालय के लगभग प्रत्येक कॉलेज में नाटक पढ़ाया जा रहा है और जब भी उस नाटक पढ़ाने वालों से नाटक के किसी एक विद्वान का नाम पूछा जाएगा तो वो प्रोफेसर रमेश गौतम का ही नाम लेंगे। नाटक पढ़ाने और करने वाले दोनों ध्रुवों को नज़दीक से जाना और पहचाना है और ये दो ध्रुव तभी क़रीब आ सकते हैं जब दोनों आपस में मिल जाएँ या फिर कोई एक ऐसा हो जो इनके मध्य में एक 'सेतु' का काम कर सके। सर वो 'सेतु' रहे जो इन दोनों ध्रुवों को जोड़ते रहे या फिर अपने शिष्य तैयार करते रहे जो नाटक को वहाँ तक ले जा सकें जो उसका परिणति क्षेत्र है अर्थात् मंच तक और उन्हीं छात्रों में से एक मैं भी हूँ। जब मैं अभी अपना 'मास्टर्स' ही कर रही थी तो हिन्दी विभाग में सर के नाम की तूती बोला करती थी और दिल्ली विश्वविद्यालय का उत्तरी परिसर नाटक के शिक्षण का गढ़ माना जाता था। मेरा परम सौभाग्य रहा कि मैं भी इस दिशा का एक कण बन पायी। कहते हैं न कि गुरु कुम्हार होता है शिष्य कुंभ गुरु ही शिष्य को गढ़ता है। गुरुवर प्रोफेसर रमेश गौतम ने नाटक के अध्ययन की जो सुदृढ़ नींव मेरे भीतर रखी। उसे प्रयोग में कैसे लाऊँ, के आगे के पाठ को समझाने का काम थियेटर गुरु भानु भारती जी ने किया, पर रमेश सर प्रेरणा के रूप में सदैव वहीं खड़े सँभालते रहे। मेरे द्वारा अभिनीत या निर्देशित नाटकों को देखकर सर जितना प्रसन्न होते उसकी कोई समता नहीं। आज भी याद है जब 'आषाढ़ का एक दिन' की प्रथम प्रस्तुति पर सर और यामिनी मैम साथ–साथ प्रेक्षागृह में उपस्थित रहे तो जैसे इस पथ के सारे पुण्य एक साथ सुफल हो गये।

नाटक के पठन–पाठन को लेकर सर में जो उत्साह दिखाई देता था वो अद्भुत था। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय और तमाम मंडी हाउस के गलियारों में घूम–घामकर भी मुझे कोई ऐसा व्यक्तित्व नहीं मिला जिसकी हर नाटक पर उतनी पकड़–परख हो जितनी प्रोफेसर रमेश गौतम की एक अलग ही चाव रहा उनके मन में नाटक को लेकर मुझे आज भी याद है जब यूनिवर्सिटी में 'गोदान' के प्रदर्शन हुए उसके पीछे प्रोफेसर रमेश गौतम का वो मन ही था जो यह चाहता था कि नाटक का मंचन मंडी हाउस के गलियारों को पार कर विश्विद्यालय तक पहुँचे। 'गोदान' के मंचन के समय सर स्वयं दिल्ली विश्वविद्यालय के उस प्रेक्षागृह के बाहर खड़े थे उनके मन में उस दिन जो उल्लास था, उसकी चमक उनके चेहरे पर साफ़ दिखायी दे रही थी। दिल्ली विश्विद्यालय के उस ऑडिटोरियम को उस दिन मैंने पहली बार 'प्रेक्षागृह' में तब्दील होते देखा। इसके बाद 'गोदान' का मंचन कुछ और कॉलेज में भी हुआ। सर की नीति इस विषय में यही थी कि विश्वविद्यालय में नाटक का केवल अध्ययन ही न हो बल्कि उसे रंग शालाओं में खेला भी जाये। सर पढ़ाते हुए अक्सर इस बात पर चिन्तन किया करते थे कि कालिदास के नाटकों के पाठ का वितान यदि इतना भव्य है तो उनके समय का मंच कैसा रहा होगा। कालिदास के नाटकों से उदाहरण देते जाते और सर उसके मंचीय परिवेश पर चर्चा करते जाते। इन्हीं संदर्भों में अक्सर मैंने सर के उस दृष्टिकोण को भी देखा जहाँ 'आभिज्ञान शाकुन्तलम्' में सर कालिदास के प्रकृति प्रेम और नाटकों की सामाजिक उपयोगिता की बात करते। सर की इसी दृष्टि का ही परिणाम था कि मैंने 'मेघदूत' का संस्कृत और हिन्दी दोनों में साथ-साथ मंचन किया और उसकी दृष्टि में कालिदास की वही 'भूमा' के कल्याण की दिव्य दृष्टि थी जिसे सर ने हमेशा अपने अध्ययन और अध्यापन में सर्वोपरि रखा।

प्रोफेसर रमेश गौतम नाटक के मंचीय पक्ष को लेकर इतने सजग और जागरूक रहे कि उन्होंने शायद ही किसी अच्छे नाटक का मंचन देखना छोड़ा हो। फ़िरोज़ शाह कोटला में जब भानु सर ने 'अंधायुग' और 'तुग़लक' का मंचन किया तो दोनों ही नाटक में सर उपस्थित रहे और बाद में इब्राहिम अल्काज़ी साहब के 'अंधायुग' और 'तुग़लक़' का उन्होंने जो वर्णन किया उससे पता चलता है कि उनकी नाटक को मंच पर अवतरित होते देखने की दृष्टि कितनी सूक्ष्म और पैनी थी। बरसों बाद भी उन्हें अलकाज़ी साहब की मंच योजना ज्यों की त्यों याद थी।

नाटक साहित्य की एक अत्यन्त ही अलग विधा है, विश्वविद्यालय के गलियारों में पढ़ते-पढ़ाते उसे मंडी हाउस या जहाँ वो हो रहा है उसे जाकर देखना उतना आसान नहीं यह केवल वही कर सकता है जिसे नाटक से सच में लगाव हो। इससे भी इतर यह कि नाटक को पढ़ाते हुए उसे देखना और फिर मंच पर जो प्रस्तुति हुई है या नाटक को मंच पर जो लोग लाये हैं उनको साधुवाद देना कोई आसान काम नहीं, इसमें ताक़त लगती है किसी के काम की प्रशंसा आसान नहीं पर सर में वो तत्व मौजूद था। इसका प्रधान कारण था सर का अध्ययन और साथ ही उस अध्ययन का चिन्तन। शायद यही कारण है कि जब 2011 के आस पास एक बार उतरी परिसर के कला संकाय में मुझे नाटक पर अपना पर्चा पढ़ना था तो सर ने बार-बार मुझे एक ही विषय पर अपना पाठ तैयार करने को कहा और वो विषय था 'नाटक के संदर्भ में प्रेक्षकीय दृष्टि का विकास'। मैं दावे के साथ कह सकती हूँ कि आज मेरे स्वयं के नाट्य समूह 'शून्य' प्रेक्षक को लेकर जो एक अलग तरह का दृष्टिकोण रखता है वो प्रोफेसर रमेश गौतम सर की ही देन है। अपनी प्रशंसा के अर्थों में नहीं पर 'रस सिद्धांत' पर समय के साथ मेरी जो समझ-पकड़ और सोच विकसित हुई तथा 'रस सिद्धांत' और 'ग्रीक ट्रेजेडी' तथा 'कैथॉर्सिस' के संदर्भों को साथ-साथ देखने और विचारने की जो दृष्टि बाद में विकसित हुई जिसे मैं अपने नाट्य निर्देशन के प्रयोगों में बहुतायत से प्रयोग में लाती हूँ वो मुझे सर से जो अपने अनुसंधान के संदर्भ में जो मार्गदर्शन प्राप्त हुआ, उसी का परिणाम है। जब भी अपने विषय पर सर से बात करने जाती या कुछ भी काम जो मैंने किया है वो दिखाने जाती तो सर हमेशा ही प्रत्येक विचार का स्वागत उसी स्निग्ध स्मित से करते। कई बार उनके साथ जो और प्रोफ़ेसर्स होते उनसे सर चर्चा भी करते कि कई विद्यार्थी कितनी गम्भीरता से अपने विषय का अध्ययन करते हैं। सर अपने प्रत्येक विद्यार्थी के विषय में अच्छे से जानते-पहचानते थे। अपने प्रत्येक विद्यार्थी की संभावनाओं का उन्हें ज्ञान है। जब मैंने अपना सिनोपसिस तैयार किया और सर को दिखाया तो मुझे अच्छे से सर के शब्द याद हैं उनका कहना था कि मैं इससे अभी संतुष्ट नहीं हूँ मुझे तुमसे कुछ और ही अपेक्षा थी और तब मैंने एक बार पुनः उसका अवलोकन कर समय लेकर फिर से जब उसे लिखा तो सर की शाबाशी मैंने पायी। उसके बाद जब भी मैं काम करके ले जाती तो उसे इतना गुनती कि सर को कुछ कहने की आवश्यकता न पड़े। मुझे आज भी याद है 'प्रलय की छाया' कविता को 'शून्य' ने मंच पर जिस तरह से रूपायित किया उस रूपायन और बिम्ब योजना को मंच पर उतरा जब सर ने देखा तो उन्होंने जो शब्द कहे उन शब्दों में साफ़ था कि वो 'प्रलय की छाया' का ऐसा ही प्रतिफलन मंच पर देखना चाहते थे, यह सब सम्भव इसीलिए हो पाया था कि नाटक के बीज सर ने मेरे मन की भूमि पर जो डाले थे, उनका प्रभाव बहुत गहरा था। इसे क्या कहूँ कि जो दो नाटक प्रकाश में आये उन्हें सर के हाथों में अर्पित न कर पायी। पर 'इज़ाडोरा' का जब बरेली में मंचन हुआ और उस पर जो सर्वश्रेष्ठ अभिनय और सर्वश्रेष्ठ निर्देशन के पुरस्कार 'शून्य' के हिस्से में आये तो सर का पहला प्रश्न था कि इस आत्मकथा का नाट्यरूपांतरण किसने किया और जब उन्हें पता चला कि इज़ाडोरा की आत्मकथा का नाट्यरूपांतरण रमा ने किया है तो उस पर सर की जो प्रतिक्रिया थी वो वही थी जिसे शब्दों में नहीं कहा जा सकता जैसे शायद एक पिता अपनी पुत्री को पहला पाँव जब धरा पर धरते देखे और उसे चलता देखे ये ठीक वही भाव था—इस प्रसन्नता की तुलना मैं केवल एक इसी एक भाव से कर सकती हूँ। ऐसे उदार तो सर ही हो सकते हैं।

सर का अध्ययन जितना विस्तृत रहा उसी के अनुसार उनकी दृष्टि भी अत्यन्त विशद और उदार रही। 'नाट्यशास्त्र' का अध्ययन और उसमें पारंगत छात्रों का निर्माण सर के अध्यापक मन का कौशल था। इस बात को इतने दावे के साथ इसलिए कह सकती हूँ कि जब मेरे अनुसंधान का विषय निर्धारित हुआ तो सर ने पहले ही कह दिया था कि विद्वत् मंडली अर्थात् अनुसंधान के विषय के चयन के लिए जो समिति बैठेगी उसमें शायद ही यह विषय पारित हो और हुआ भी वही जब मैं अपने अनुसंधान का मूल विषय लेकर पहुँची—'हिन्दी का नया नाट्यशास्त्र' तो चयन समिति में से कोई भी इस विषय पर राज़ी नहीं हुआ। प्रोफेसर गौतम भी उस चयन समिति में थे पर वो केवल मंद-मंद मुस्कुरा रहे थे क्योंकि वे तो पहले ही इस बात को मुझे बता चुके थे कि यह विषय चयन समिति द्वार अनुसंधान के लिए पारित न होगा। 'हिन्दी का नया नाट्यशास्त्र' न होकर मेरा विषय अब 'हिन्दी का नाट्य विधान : परंपरा और मौलिकता है' परन्तु सर के शब्द थे कि हम इसे करेंगे उसी दृष्टि से—'हिन्दी का नया नाट्यशास्त्र' और फिर काम हमने अपनी ही दृष्टि से किया।

नाटक और रंगमंच से सर के ये सरोकार बहुत गहरे थे। दिल्ली रंगमंच को लेकर बहुत ही उत्साही मैंने उन्हें देखा। एक रूपरेखा जो सर ने दिल्ली रंगमंच पर तैयार करवायी वो आज भी मेरे पास है जिसमें दिल्ली में आरम्भ से लेकर जिस भी प्रकार का रंगमंच हो रहा था उसे समेटने का पूरा-पूरा प्रयास किया जा रहा था। स्वतंत्रता पूर्व दिल्ली का नाट्य साहित्य, दिल्ली का आधुनिक कालीन नाट्य साहित्य, दिल्ली का आपातकाल और परवर्ती नाटक, दिल्ली के नाटककार, दिल्ली के महिला नाटककार, दिल्ली के नुक्कड़ नाटक, दिल्ली के हिन्दी रंगमंच का विकास, शौक़िया रंगमंच, विश्वविद्यालयी रंगमंच, दिल्ली की रंगसंस्थाएँ, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय तथा श्री राम सेंटर, अक्षरा, लिटिल थियेटर ग्रुप जैसे संस्थानों, भारत का रंगमहोत्सव, दिल्ली रंगमंच की समस्याएँ जैसे विषयों पर काम हो ही रहा था और काम का अन्दाज़ भी सर का वही था, ठीक वैसा जैसा आधुनिक हिन्दी नाटकों के जनक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का हुआ करता था वो सम्पूर्ण समूह को लेकर साथ चलते थे। नाटक एक सामूहिक अनुष्ठान है और सर का काम करने का तरीक़ा भी सामूहिक था कोई छूटना नहीं चाहिए। जीवन को उसके विस्तार में देखना ही उनका लक्ष्य था। जिस प्रकार नाटक किन्हीं दीवारों को नहीं मानता उसी प्रकार प्रोफेसर गौतम का उदार मन भी किन्हीं दीवारों को नहीं मानता था। संस्कारों में खूब-खूब पगे होने पर भी उनकी यह समूह भावना और सर्व समावेशी परिपाटी मुझे आधुनिक काल के पुरोधा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का बार-बार स्मरण करवाती है। मुझे नहीं लगता कि जिस भाँति की शिष्य परंपरा प्रोफेसर गौतम ने बनायी वो कहीं और भी हो सकती है। भारतेन्दु की व्याख्या करते

हुए जहाँ और आलोचकों का ध्यान 'अंधेर नगरी' और 'भारत दुर्दशा' पर जाता वहीं इन दो नाटकों के अतिरिक्त सर की नज़र हमेशा 'नीलदेवी' पर जाकर अटकती। भारतेन्दु के नाटकों पर सर का पहले भी काम था और अभी कुछ ही समय पहले भारतेन्दु पर उन्होंने एक किताब भी सम्पादित की जिसमें उनकी शिष्य परंपरा से बाहर के विद्वान भी शामिल हैं। सर का आग्रह हमेशा यही होता कि काम कभी भी किसी राजनीतिक दृष्टिकोण या भाई-भतीजेवाद का गुलाम नहीं होना चाहिए काम को केवल काम होना चाहिए। सर की भारतेन्दु सरीखी पैनी दृष्टि उस आलोचक को खोज ही लेती थी जो किसी भी कृति या साहित्यकार का सही अन्वेषण कर सके।

इस सन्दर्भ में इस बात को उल्लिखित करना मुझे अनिवार्य प्रतीत होता है कि मेरा एमफ़िल प्रोफेसर कृष्णदत्त पालीवाल जी के साथ रहा। एमफ़िल का मेरा विषय अज्ञेय के अंतिम कविता संग्रह 'मरुथल' पर था। इसके अतिरिक्त मास्टर्स का मेरा विशेष पर्चा आधुनिक कविता पर था। जब पीएचडी के लिए विषय के चयन की बात सामने आयी तब तक अजेय और मुक्तिबोध की लंबी कविताओं में नाटकीय संभावनाओं पर काम करने का मन मेरा बन चुका था। 'असाध्य वीणा' और 'अंधेरे में' वो दो ऐसी कविताएँ थीं जिनमें निहित नाटकीय सम्भावनाओं पर मैं काम करना चाहती थी तब तक भानु सर के साथ नाटकों में काम करना मैं आरम्भ कर चुकी थी और नाटक पर दिल्ली विश्वविद्यालय में रमेश सर से बड़ा विद्वान कोई था ही नहीं। यह एक बहुत ही गम्भीर बात थी कि एमफ़िल में या एमए में नाटक ना होते हुए भी पीएचडी नाटक पर करना और वो भी तब जब एमफ़िल में मेरे गाइड सर नहीं थे। जब सर के पास मैं अपना विषय लेकर पहुँची कि मैं इन दो लंबी कविताओं में निहित नाटकीय सम्भावनाओं पर काम करना चाहती हूँ तब सर ने मुझे सुझाव दिया कि फिर इन दो कविताओं में ही क्यों तुम लम्बी कविताओं के नाटकीय पक्ष पर काम करो जिसमें 'राम की शक्ति पूजा', 'संशय की एक रात' जैसी कविताओं को भी शामिल करो। मेरा पहला सिनोपसिस सर ने इसी विषय पर बनवाया था और विषय लगभग फ़ाइनल हो गया था तब सर ने एक दिन कहा कि मैं चाहता हूँ कि तुम्हें एक विषय मैं दूँ और तुम उस पर काम करो और तब सर ने कहा तुम 'हिन्दी का नया नाट्यशास्त्र' पर काम करो और इस प्रकार मेरा नया विषय सामने आया और सर के आशीर्वाद से इस पर काम करना मैंने आरम्भ किया। कई बार सर अत्यंत स्नेह के साथ इस बात को कहते कि रमा और मेरे में एक बात समान है रमा के गुरु भी प्रोफेसर कृष्ण दत्त पालीवाल रह चुके हैं और मेरा पीएचडी का अनुसंधान भी प्रोफेसर पालीवाल से मार्गदर्शन में सम्पूर्ण हुआ है। इसी एक बात से सर के मन की गहराई और उदारता का अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि उनकी दृष्टि में राजनीति से कहीं-कहीं ऊपर उनके शिष्य थे और इस तरह से मेरे जीवन में ऐसे गुरु का प्रवेश हुआ जिनकी परिकल्पना मैंने 'असाध्य वीणा' और 'ब्रह्म राक्षस' का शिष्य पढ़ते हुए की थी।

आज मैं हैरान होती हूँ कि सर कैसे इतनी सहनशीलता से अपने इतने छात्रों को कैसे सम्भाल लेते थे। कैसे वो अथक काम करते थे, कहाँ से इतना-इतना धैर्य लाते थे। आज भी याद है कि जब हिन्दी एकांकियों की भाषा पर काम हो रहा था तो मेरे लेख भेजने में हमेशा की भाँति ही अत्यन्त विलम्ब हो चुका था। किताब छपकर आने को तैयार थी और मैं लगभग हाथ खड़े कर चुकी थी कि अब शायद ही अपना लेख दे पाऊँ। सर के शब्द आज भी मेरे कानों में तैर रहे हैं—''बेटा किताब तो तभी आएगी जब उसमें तुम्हारा लेख जाएगा। इसलिए लिखो'' और आज भी मेरे कानों में सर के वही शब्द गूँज रहे हैं और मेरा मन उनके चरणों में नतमस्तक है।

एसोसिएट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, मिरांडा हाउस
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

हिन्दी साहित्य परिषद

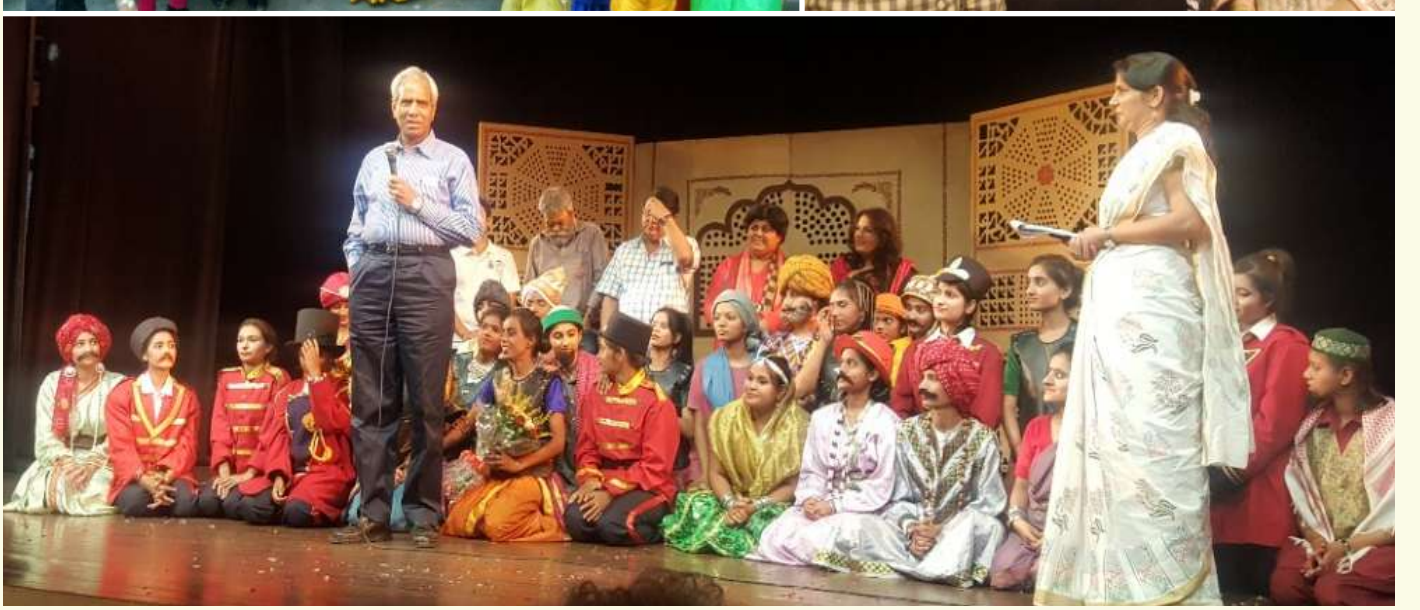

KEEP
CAL
AND
SPE
ON

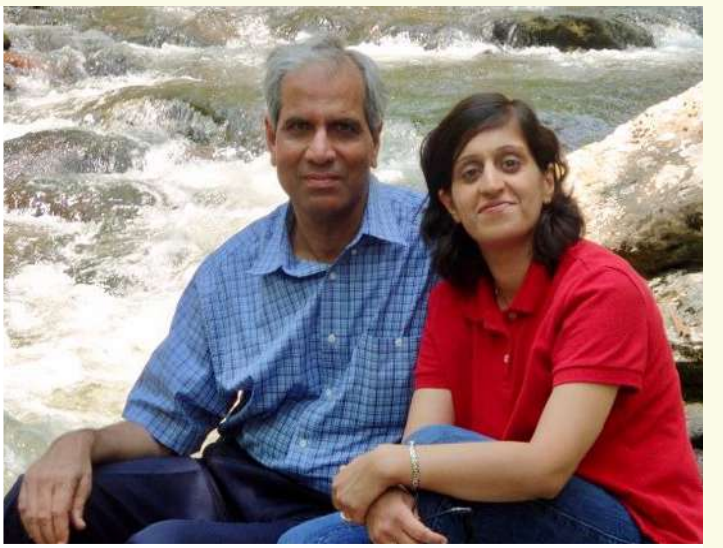

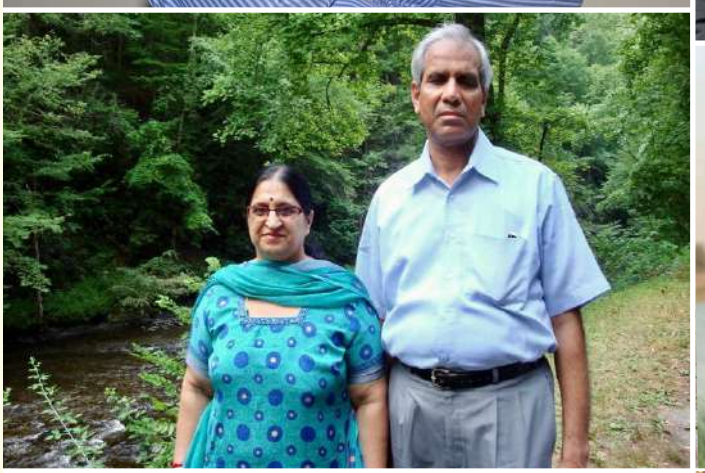

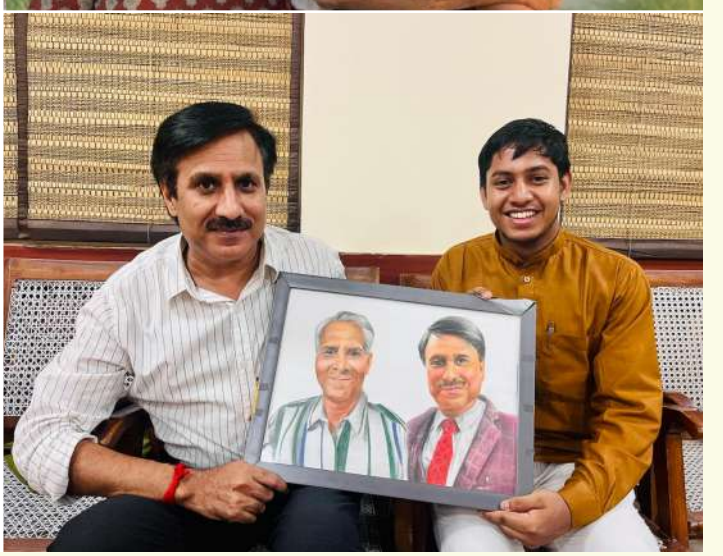

यादों की पाती : हँसते रोते शब्द

सरोज गुप्ता

सरोज गुप्ता, डॉक्टर सरोज, यही नाम है न तुम्हारा? कहाँ थी? क्या कर रही हो? मैं बहुत डरी, सहमी और घबरायी हुई थी। समझ नहीं आ रहा था कि अपना परिचय कैसे दूँ। रमेश गौतम जी, जो मेरे सामने बैठे थे, वे कभी मेरे सहपाठी थे पर अब हिन्दी विभागाध्यक्ष थे लेकिन रमेश गौतम जी की आत्मीयता का कोई सानी नहीं। चंद क्षणों में ही मैं और मेरी प्रिय मित्र डाक्टर ज्योति सर मुदगल, जेएनयू में हिन्दी प्रोफेसर, जो मुझे जबरदस्ती रमेश जी से मिलवाने ले गयी थी, वह दिन मेरा सौभाग्य बना, हम तीनों चाय की चुस्कियों के साथ अपने गुरुवर डॉ. नगेंद्र, डॉ. दशरथ ओझा, डॉ. सावित्री सिन्हा, डॉ. विजेंद्र स्नातक जी, डॉ. भोलानाथ तिवारी जी की कक्षाओं को याद कर खूब आनन्द लेने लगे। एक बात बता दूँ हम तीनों बहुत पढ़ाकू थे, नहीं, नहीं हमारा पूरा बैच ही बहुत पढ़ाकू था इसलिए गुरुओं का बहुत सम्मान करते थे। रमेश जी बताते थे कि हमारे बैच के 42 जन दिल्ली यूनिवर्सिटी में शिक्षक पद पर कार्यरत हैं। कबीर वाणी के अनुयायी हम गुरु को गोविंद से ऊँचा मानते थे। रमेश जी की विद्वता का प्रमाण तो यही था कि एमए के परिणाम के दूसरे दिन ही सबसे पहले उन्हें रामजस कालेज में नौकरी मिल गयी थी। मिलती भी कैसे न? रमेश जी लड़कों में प्रथम आये थे। उस दिन की मुलाक़ात ने मेरा जीवन बदल दिया। रमेश जी के स्नेहिल व्यवहार ने मुझे मेरी खूबियों से परिचय करा मुझमें इतना आत्मविश्वास भर दिया कि मुझ बातूनी ने अपने बारे में बहुत कुछ बता डाला। मुझे विश्वास ही नहीं हो रहा था जब उन्होंने 1970 -72 वर्ष के वो दिन याद दिलाये जब एम.ए की कक्षा में मैं, ज्योति, सरला, नीना अग्रवाल, लम्बी स्नेह, छोटी स्नेह, आभा, कृष्णा और शशि हमेशा आगे की पंक्ति में बैठते थे। रमेश जी ने कहा, मुझे तो यह भी याद है जब तुम, स्नेह, ज्योति रिसर्च फ्लोर पर चोरी-चोरी हीटर पर मसाले वाली चाय बनाया करते थे और कई बार मुझे भी चखने को मिली। तब तो आज आपने चाय पिलाकर अपना पुराना हिसाब बराबर कर दिया। रमेश जी अपनी तारीफ सुनना ज्यादा पसंद नहीं करते थे, उल्टा उन्होंने मेरी तारीफें कीं कि मैं हिन्दी कम्प्यूटिंग में कितना अच्छा काम कर रही हूँ।

कबीर बादल प्रेम का
हम परि बरष्या आई।
अन्तरि भीगी आत्मा
हरी भरी बनराई॥

रमेश जी के जीवन चित्रपट में एक जन बहुत महत्त्वपूर्ण था, अपनी तूलिका से उसमें रूप, रस, रंग भरते रहे, ताजिंदगी भरते रहे! यही कारण है कि मेरे शब्द जब भी रोते-बिलखते, लडखड़ाने लगते हैं, उन्हें रमेश जी के बैसाखी वाले दो शब्द 'हो जाएगा' की आवश्यकता होती है और मैं परमात्मा से गुहार करने लगती हूँ, प्रभु के साम्राज्य पर आक्षेप करने लगती हूँ, तभी त्रिकालदर्शी मुझे रमेश जी के उस जन की याद दिलाते है जिनमें वे बसे हैं, रमे हैं। दिल्ली यूनिवर्सिटी के अपने हर जन के मन में घर बनाये बैठे है। उन्हें याद कर सब गमगीन हो जाते हैं, रोते हैं, बस रमेश जी तो हम सबके आंसुओं में जिंदा हैं, अमर हैं। 21वीं सदी में ये जन जो रमेश जी के प्राण प्रिय थे, जिनके लिए उन्होंने अपना जीवन खपा दिया, क्या वे सब उनके चित्रपट को पूरा कर रहे है? बाखूबी। बस रमेश जी को उनके हर जन /छात्र/शिष्यों में देखो। सच, मुझे उद्गीत में रमेश जी का बृहद् विस्तार होते हुए दिखा। जब वीरेंद्र भारद्वाज प्रिंसिपल बने, उन्होंने रमेश जी को ही उपकृत किया, उनकी ही मनोकामना पूरी हुई। उद्गीत का हर जन अपनी उपलब्धि पर सारा श्रेय उनको ही देता है क्योंकि रमेश जी हम सबमें जिंदा हैं।

हम हिन्दी वाले हिन्दी की रोटी खाते हैं, तब हिन्दी को कैसे अधिक पौष्टिक बनाया जाए, इसकी चिन्ता रमेश जी को बहुत ज्यादा थी। उन्होंने हिन्दी विभाग मे हिन्दी जनसंचार और पत्रकारिता कोर्स को जिस तरह से पोषित, पल्लवित किया, वह उनकी दूरदर्शिता को दर्शाता है। हिन्दी को रोजगारपरक, अर्थोपार्जन का साधन बनाने के लिए अथक प्रयास किया। मुझे बताते हुए बहुत खुशी हो रही है कि मीडिया के बड़े-बड़े संस्थानों मे ऊंचे-ऊंचे पदों पर हमारे छात्र आसीन हैं, इसका सारा श्रेय रमेश जी को जाता है क्योंकि मुझे पता है जब मैंने रमेश जी के सामने अपने कालेज में हिन्दी पत्रकारिता एवं जनसंचार कोर्स को लाने की बात कही, तब रमेश जी ने हर तरह से हमारी सहायता की। बहुत समस्याएँ आयीं और मैं जैसे ही थोड़ा उदास हुई तभी रमेश जी ने कहा, 'सरोज गुप्ता जी, जो संघर्षों से घबराते हैं, वे बौने रह जाते हैं।' उनके एक ही वाक्य ने मेरे लड़खड़ाते पाँवों में जान डाल दी।

रमेश जी को जितना दाता ने दिया, उसे उन्होंने झोली भर-भर बांटा है, कलश भर-भर ज्ञान के शब्द बांटे हैं, आपने गुरु बनकर शिष्यों के मन में शब्द बाण से दावाग्नि सी फोडी है, आपने सब बडों को (गुरु जनों को) पुष्पांजलि अर्पित की है, स्नेह सम्बन्धों का उपवन बनाया है, हर जन का हुमक कर स्वागत किया है।

रमेश जी एक बेहतरीन कुशल प्रशासक थे, उनमें अपूर्व कर्मठता थी। अपने कर्तव्यों के प्रति प्रतिबद्ध और सजग थे। उनकी कुशल प्रशासनिक सेवा को देखने का अवसर तब मिला जब रमेश जी ILLL में डायरेक्टर पद पर थे, तब मुझे कई बार वहाँ जाने का अवसर मिला। पहली खुशी इस बात पर हुई कि उनके व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं था, वे पहले की ही तरह सबका हुमक कर स्वागत कर रहे थे

और दूसरी बहुत बडी खुशी इस बात को देखकर हुई, वहाँ रहते हुए 'ई पाठ' न केवल हिन्दी में वरन् कैमस्ट्री, जुओलॉजी, हिस्ट्री, इकोनॉमिक्स, इंग्लिश, फिजिक्स आदि सभी विषयों के छात्रों के लिए बनवाये, उनकी अध्ययन सामग्री और प्रणाली को सहज, सुगम बनाया और सुलभता से उपलब्ध कराया, वह अद्‌भुत, अद्वितीय और सराहनीय कार्य था। उनका कल्याणकारी दृष्टिकोण प्रत्येक विषय के छात्रों के लिए समान था। रमेश जी के कुशल निर्देशन मे ही यह सम्भव हो सका। असम्भव को भी सम्भव बनाने की अद्‌भुत कला में दक्ष रमेश जी की जितनी प्रशंसा की जाए कम होगी।

हिन्दी विभागाध्यक्ष रहते हुए हिन्दी विभाग और छात्रों के उत्थान, उनके हित के लिए कितना कुछ अच्छा किया जा सकता है, इसकी चिन्ता ही नहीं हमेशा चिन्तन किया करते थे। इसका एक उदाहरण आपको बताती हूँ। जब रमेश जी पहली बार हिन्दी विभागाध्यक्ष बने, हिन्दी का नये पाठ्यक्रम की पुस्तकों के प्रकाशन के लिए जो नीलामी हुई, वह रजिस्टरार आफिस के माध्यम से हुई, उसमें गौतम जी ने कोई हस्तक्षेप नहीं किया और पहली बार नियमानुसार किताबें छपवाने का कार्य किताब घर को दिया गया, रमेश जी प्रधान सम्पादक थे परन्तु रायल्टी के नाम पर स्वयं एक पैसा नहीं लिया परन्तु सहसम्पादकों को अवश्य यह रायल्टी मिली, ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था। गौतम जी ने अपने नाम की जितनी भी रायल्टी थी, वह रजिस्टरार आफिस में जमा करवाई जिससे हिन्दी विभाग को बहुत-बहुत लाभ मिला, अपने विषय में न सोचकर हिन्दी विभाग के विषय में सोचना यह अपने आप में नवीनतम और अद्भुत कार्य था जिसका विशाल और उदार व्यक्तित्व होगा वही ऐसा कार्य करेगा, जो मैंने डा. रमेश गौतम मे साकार देखा है।

रमेश जी आपने वे काम किये आशीष देती यह धरनी है।

रमेश जी के साथ बिताये उस क्षण ने मेरे अन्तःकरण को भिगो दिया। वह क्षण एक ऐसा वरदान था जिसे मैं जीवन भर सँजोकर रखूँगी। एक अच्छा गुरु अपने शिष्यों को अपने से ज्यादा ऊँचाई छूते देख गर्व अनुभव करता है परन्तु अधिकांशतः जन अपने सहपाठियों से ईर्ष्या रखते हैं लेकिन रमेश जी अपवाद थे। अपने शिष्यों को तो अपने सर-आँखों पर बिठाया ही उन्होंने कभी भी अपने सहपाठियों से भी ईर्ष्या नहीं रखी। अधिकांश लोग ऊपर से खुश दिखते हैं, पर भीतर-भीतर काटते हैं। विरले ही होते हैं जो सहपाठियों से सहृदयता और समानता का व्यवहार करते हैं, खासकर तब जब वे संस्थान के शीर्ष स्थान पर पहुँच जाते हैं।

रमेश जी बिल्कुल भिन्न माटी के बने थे। मेरे पास अनेक उदाहरण हैं, लेकिन एक किस्सा आपके साथ साझा करना चाहूँगी। रमेश जी हिन्दी को तकनीकी दृष्टि से सघन और धनवान बनाने के लिए अनवरत प्रयत्नशील रहते थे। एक बार, जब मैं पुनश्चर्या पाठ्यक्रम (यूजीसी द्वारा आयोजित) कर रही थी, रमेश जी ने दो दिन हिन्दी कम्प्यूटिंग के लिए रखे और पूरी जिम्मेदारी मुझे सौंपी। मैंने अक्षर सॉफ्टवेयर का उपयोग हिन्दी भाषा के लिए कैसे किया जा सकता है, यह समझाया और हिन्दी पाठकों और प्रशिक्षकों के लिए इसका महत्व बताया। यही नहीं, मैंने अक्षर सॉफ्टवेयर इंजीनियर को बुलाकर प्रेजेंटेशन भी दी। यह सब मेरी नौकरी के लिए कर्म था, और मन में डर भी था कि सब ठीक-ठाक हो जाए।

रमेश जी का ऐरावत जैसा विशाल व्यक्तित्व और उनकी पारखी दृष्टि ने हिन्दी कम्प्यूटिंग के प्रति मेरी तपस्या को मान्यता दी। वह पल आज भी मेरे रोंगटे खड़े कर देता है, जब उन्होंने 50-60 विश्वविद्यालय के शिक्षकों से भरे हुए हाल में कहा, ''सरोज गुप्ता जी, आप उधर क्या कर रही हैं, इधर आईये।'' मंच पर वरिष्ठ शिक्षकों के सम्मुख ऐसा कहने वाला न भूतो, न भविष्यति देखा होगा।

आज के युग में कम्प्यूटर का ज्ञान विद्यार्थियों के लिए कितना महत्वपूर्ण है, यह रमेश जी ने बखूबी पहचाना। मेरी मेहनत और तपस्या कम्प्यूटर के प्रति सफल हुई जब मुझे शब्दों का अमूल्य अवार्ड डॉक्टर रमेश गौतम जी से मिला। सबसे बड़ा अवार्ड, मेरी मेहनत की स्वीकृति, मेरे लिए एक अद्वितीय सम्मान था। रमेश जी के इस सहयोग और प्रेरणा के बिना मेरी यात्रा अधूरी रहती। उनकी यह महानता और उदारता मेरे दिल में हमेशा एक विशेष स्थान बनाये रखेगी।

रमेश जी का व्यक्तित्व पारखी था। उनका जजमेंट हमेशा नपातुला और एकदम सटीक होता था, कभी भी किन्तु-परन्तु नहीं। वे संत की तरह थे, भाग्य विधाता। कपड़ों के शौकीन थे, लेकिन दिखावे से परे। उन्होंने हमेशा नवीनतम कार्य को प्रोत्साहित किया। वे हमारे सहपाठी थे, लेकिन नेता गिरी भी करते थे। वक्ता के रूप में उनका नाटकीय अंदाज हर किसी को प्रभावित करता था।

वे एक हितैषी और विद्वान व्यक्ति थे, जिनका कर्मठ और हीरो जैसा व्यक्तित्व था। एक अच्छे टीचर होने के साथ-साथ आत्मीयता और भेदभाव न करने की आदत ने मुझे हमेशा प्रभावित किया। उनका जीवन लेखनी की सीमा से बाहर है।

सहपाठी से गुरु बनने की यह यात्रा कब आँख झपकते ही बीत गयी, पता ही नहीं चला।

महि क्षेत्रं पुरु श्चन्द्रं विविद्वानादित्सखिभ्यश्वरथं समैरत्।
इन्द्रो नृभिरजनद्दीद्यानः साकं सूर्यमुषसं गातुमग्निम्॥

ऋग्वेद 3-31-8॥

ओजस्वी विद्वान जो विद्युत की तरह अपने गुणों के कारण चमकते हैं।

वो सुख देने वाले होते हैं और दुख हरने वाले होते हैं। वो अपने मित्रों को सत्य धन, समृद्धि और ज्ञान प्रदान करते हैं। हमें ऐसे विद्वानों का सम्मान करना चाहिए।

(ऋग्वेद 3-31-15)

आप भी एक ऐसे विशिष्ट व्यक्तियों में से एक हैं।

आप हमारे सम्मान के पात्र हैं।

मेरी विनम्र पुष्पांजलि, अश्रुपूरित श्रद्धांजलि!

सेवानिवृत्त एसोसिएट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, रामलाल आनन्द कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

हिन्दी के सच्चे हितैषी : गौतम सर

अनिल शर्मा

मेरा सौभाग्य रहा कि मुझे एम.फिल. और पी. एच. डी. के शोध-निर्देशक के रूप में गुरुवर प्रो. गौतम का सानिध्य और निर्देशन मिला। सर के आशीर्वाद स्वरूप मिली स्थायी नौकरी के बाद परीक्षा सम्बन्धी कार्य, पाठ्यक्रम निर्माण, अकादमिक लेखन आदि विभिन्न कार्यों में भी मुझे सर का सानिध्य और मार्गदर्शन मिला। गौतम जी का व्यक्तित्व बहुआयामी था। अपने विषय के विद्वान होने के साथ ही वे एक कुशल प्रशासक थे। उनकी प्रशासनिक क्षमता का लोहा पूरा दिल्ली विश्वविद्यालय मानता था। गौतम सर पर केन्द्रित संस्मरण लिखते समय मुझे सर्वप्रथम उनके हिन्दी-हितैषी व्यक्तित्व का स्मरण हो रहा है।

गौतम सर सदैव हिन्दी के परिवर्द्धन और संवर्द्धन के लिए प्रयासरत रहे। वे हिन्दी के पाठ्यक्रम को लेकर हमेशा सचेत रहते थे। उनका मानना था कि समय की आवश्यकताओं के अनुरूप पाठ्यक्रम में एक निश्चित अवधि के बाद संशोधन एवं परिवर्द्धन होते रहना चाहिए। दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में पाठ्यक्रम-परिवर्तन का कार्य दुसाध्य और जोखिम-भरा माना जाता है। सन् 2000 से पूर्व 20-30 वर्षों तक दिल्ली विश्वविद्यालय के विभिन्न कॉलेजों में हिन्दी का एक ही सिलेबस लगातार पढ़ाया जाता रहा। प्रोफेसर रमेश गौतम जी जब 1999 में पहली बार विभागाध्यक्ष बने तो उन्होंने इस चुनौतीपूर्ण काम को हाथ में लिया और दशकों बाद हिन्दी के विद्यार्थियों को नया पाठ्यक्रम पढ़ने को मिला। इसके बाद 2006 में दोबारा हिन्दी के पाठ्यक्रम में परिवर्तन किया गया और पाठ्यक्रम को तत्कालीन समय की जरूरतों के अनुसार परिवर्द्धित किया गया। उस समय तक यह माना जाता था कि हिन्दी के विद्यार्थियों के लिए केवल भाषा और साहित्य का ज्ञान ही अपेक्षित है, लेकिन गौतम जी ने इस थ्योरी को नकारकर हिन्दी के पाठ्यक्रम में रोजगार और व्यवसाय की संभावनाओं का समावेश भी किया। इस सन्दर्भ में उनका मानना था कि आज के व्यावसायिक समय में यदि हिन्दी के पाठयक्रम को व्यावसायिकता और व्यावहारिकता से नहीं जोड़ा गया तो हिन्दी पिछड़ती चली जायेगी। पाठ्यक्रम निर्माण के समय हमें समय के साथ चलना होगा और समय की माँग के अनुरूप ही पाठ्यक्रम परिवर्तन करना होगा। यह विचार उनकी दूरदृष्टि का परिचायक था। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने भी जब सभी विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में परिवर्तन के लिए राष्ट्रीय स्तर पर पाठ्यक्रम के लिए एक समिति बनायी तो प्रो. गौतम के इस कौशल को देखते हुए हिन्दी का प्रभार गौतम जी को दिया गया।

2006 में पाठ्यक्रम-परिवर्तन के बाद स्तरीय पाठ्य-पुस्तकों की उपलब्धता भी गम्भीर समस्या थी। इससे पूर्व भी हिदी के विद्यार्थियों के लिए मानक पाठ्य-पुस्तकें उपलब्ध नहीं हो पाती थी। विभागाध्यक्ष के रूप में गौतम जी ने तय किया कि पाठ्यक्रम में संशोधन और परिवर्द्धन के बाद विद्यार्थियों के लिए विभाग की ओर से स्तरीय पाठ्य-पुस्तकों का प्रकाशन किया जाएगा। इस योजना के अन्तर्गत विभिन्न महाविद्यालयों के प्रवक्ताओं के सहयोग से लगभग पचास पाठ्य-पुस्तकों का प्रकाशन विभागाध्यक्ष के सम्पादन में किया गया। इस पूरी प्रक्रिया में गौतम सर का पूरा बल इस बात पर रहता था कि विद्यार्थियों को ध्यान में रखकर तैयार की जा रही इन पाठ्य-पुस्तकों में किसी भी साहित्यिक रचना का प्रामाणिक पाठ ही सम्मिलित होना चाहिए। इस कार्य के लिए गौतम सर अपने विद्यार्थियों को पुस्तकालय में पुस्तकें खोजने में लगा देते थे। पुस्तकों के प्रकाशन के बाद जब प्रकाशक की ओर से रॉयल्टी दने की बात आयी तो गौतम सर ने सभी सहयोगी संपादकों से आग्रह किया कि वे रॉयल्टी की धन-राशि को विभाग में ही दान-स्वरूप दे दें ताकि उच्च संसाधनों से युक्त एक संगोष्ठी कक्ष बनाया जा सके। वस्तुतः उस समय तक हिन्दी विभाग के पास कोई अपना सेमिनार रूम नहीं था। गौतम जी के आग्रह को सभी सहयोगी सम्पादकों और लेखकों ने सहर्ष सवीकार कर लिया। गौतम जी की दूरदर्शिता के कारण वह संगोष्ठी कक्ष आज विभिन्न कार्यों के लिए प्रयोग में लाया जाता है।

गौतम सर का सुदर्शन व्यक्तित्व अत्यंत अनुशासित, संयमित और मर्यादित रहा—यह बात उनके अकादमिक, प्रशासनिक और व्यक्तिगत जीवन पर लागू होती थी। संतुलित खान-पान, सभ्य और सुरुचिपूर्ण पहनावा, संक्षिप्त किन्तु सटीक बातचीत, प्रशासन के प्रत्येक कार्य की प्रक्रिया और औपचारिकताएँ व्यवस्थित तरीके से पूर्ण करना, अकादमिक क्षेत्र के कार्यों पर सुचिन्तित योजना बना और उन पर समयबद्ध ढंग से अमल करना, कोई भी लिखित कार्य—चाहे वह मीटिंग के मिनिट्स हों या किसी लेख का अंश—अत्यंत सजगता और सतर्कता से पढ़ना और पढ़वाना गौतम सर की कितनी ही ऐसी विशेषताएँ थीं जो हर किसी को प्रेरित और प्रभावित करती थीं। उनकी कार्य-शैली से हर किसी को हमेशा कुछ-न-कुछ सीखने को मिला।

गौतम सर सूक्ष्म और पारखी दृष्टि से सम्पन्न थे। वे अपने हर शिष्य की योग्यता और प्रतिभा को पहचानते थे और उसी के अनुरूप उन्हें निर्देशित किया करते थे। थोड़ी-बहुत चर्चा के उपरान्त ही उन्हें पता चल जाता था कि अमुक विद्यार्थी सैद्धांतिक विषय पर शोध कर पायेगा या व्यावहारिक विषय पर या फील्ड-वर्क केन्द्रित विषय पर। विद्यार्थी की क्षमता और स्थिति के अनुरूप ही वे शोध के विषय सुझाते थे। गौतम सर ने अपने विद्यार्थियों के शोध-विषयों के माध्यम से हिन्दी नाटक और रंगमंच के विविध पक्षों को अलग-अलग कोणों के माध्यम से देखने-समझने का प्रयास किया। इसके अलावा वे स्वयं भी पुस्तकों के लेखन और सम्पादन के माध्यम से इस दिशा में आजीवन अध्ययनरत

रहे। सेवा-निवृत्ति के बाद भी उनका अध्यसाय रुका नहीं। हिन्दी नाटक पर केन्द्रित उनकी आलोचनात्मक पुस्तकें आज देश-विदेश के विश्वविद्यालयों में पढ़ रहे विद्यार्थियों के काम आ रही हैं।

अपने शिष्यों के बीच गौतम सर एक ऐसे विशाल वटवृक्ष की भाँति रहे जिसकी गहन छाया तले में उनका हर शिष्य पल्लवित, पुष्पित और परिपक्व हुआ। आज गौतम सर भौतिक रूप से भले ही न हों, किन्तु आत्मिक रूप से वे अपने शिष्यों का मार्ग अब भी प्रशस्त कर रहे हैं।

प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
ज़ाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज (सांध्य)
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

“गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदऊँ सीता राम पद जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न॥”

(रामचरितमानस)

मेरे लिए छाया-से तरुवर, बहुत याद आते हैं गुरुवर

कुसुम लता

27 अगस्त की सुबह सर के शिष्यों के लिए अमावस्या की घनी अँधेरी रात की ख़ामोशी से भी अधिक भयावह थी। सर का जाना मानो किसी युग के समाप्त होने जैसा था। एक गुरु का इहलोक से परलोक गमन एक शिष्य के जीवन में किसी घने अन्धकार से कम नहीं है। ऐसे विपरीत समय में भी गुरु की स्मृति ही संबल प्रदान करती है। सर ने हमेशा हर परिस्थिति के लिए तैयार होकर उसका सामना करने का गुर सिखाया था। उनके आशीष से आज सर के शिष्य विभिन्न पदों पर अनेक दायित्वों का निर्वहन कर रहे हैं। मुझे आज भी स्मरण है जब 1999 में एम.ए. के वैकल्पिक प्रश्न पत्र 'नाटक' की पहली कक्षा सर के साथ आर्ट्स फैकल्टी की फर्स्ट फ्लोर पर थी। सर के अनुशासित जीवन के विषय में हम सभी छात्रों ने पहले से काफी-कुछ सुना हुआ था। सभी छात्र-छात्राएँ कक्षा के बाहर आराम से गुफ्तगू कर रहे थे। सामने से लम्बी कठ-कादी, चेहरे पर तेज, शांत एवं धीर प्रवत्ति से युक्त, सफ़ेद कमीज पर नीली लम्बी धारी वाली आधी बाँह की कमीज, बेल्ट से कसी सलेटी पेंट पहने प्रभावी व्यक्तित्व के धनी प्रो. रमेश गौतम सर के आते ही बिना कुछ कहे सभी विद्यार्थी बड़े अनुशासित तरीके से कमरे के भीतर अपनी-अपनी कुर्सी पर ख़ामोशी से विराजमान हो गये। सर का व्यक्तित्व ही ऐसा था कि उनके बिना बोले भी उनके चेहरे की भाव-भंगिमाएँ बहुत कुछ कहती थी। नाटक पढ़ाने से पहले उन्होंने सभी विद्यार्थियों से कहा कि किसी भी नाटक के पठन-पाठन से पहले उस नाटककार और उसके समय को जानना बहुत जरूरी है, साथ ही उसे आधुनिक एवं समकालीन दृष्टि के साथ पढ़ना और समझना भी जरूरी है। यह सर की क्लास का पहला पाठ था जिसे सीखकर आज किसी भी रचनाकार को इसी दृष्टि के साथ कक्षा में पढ़ाती हूँ। भारतेन्दु और प्रसाद उनके प्रिय नाटककार रहे। भारतेन्दु को वे समयबोध का नाटककार और प्रसाद को युग-चेता एवं भविष्य-दृष्टा कहते थे। नाटक पढ़ाते-पढ़ाते हर बार वे अपने हाथ की घड़ी उतारकर मेज पर रख देते थे, यह देख ऐसा लगता था मानो कक्षा के समय किसी प्रकार के समय का बंधन उन्हें कभी स्वीकार नहीं था। कभी ऐसा कोई क्षण मेरी स्मृति में नहीं है जब मैंने सर को कक्षा के दौरान घड़ी में समय देखते देखा हो। भारतेन्दु, प्रसाद के नाटक पढ़ाते हुए वे हमेशा उन मिथकीय पात्रों, घटनाओं, कथा-प्रसंगों की प्रासंगिकता को विस्तार से समझाते थे। प्रो. रमेश गौतम जी मानते थे कि मिथक और पुराण समृद्ध भारतीय सांस्कृतिक धारा का अभिन्न हिस्सा हैं। इनके माध्यम से वे व्यक्तित्व और समुदाय के लिए महत्वपूर्ण शिक्षाएँ और नीतियों का प्रतिपादन करते हैं। उनकी मिथक दृष्टि में मिथकों का धार्मिक और आध्यात्मिक महत्व अत्यन्त उच्च माना जाता है। ये न केवल धार्मिक शिक्षाएँ देते हैं, बल्कि जीवन में सही मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। गौतम जी के अनुसार, मिथक और पुराण सामाजिक और नैतिक संदेशों का प्रमुख स्रोत होते हैं। इनके माध्यम से समाज में साझा मूल्यों, नैतिकता और सहानुभूति की भावना को बढ़ावा मिलता है। उनकी मिथक दृष्टि में मिथकों का चित्रित और कल्पित विश्व भी महत्वपूर्ण होता है। इनके माध्यम से रचनाकार विभिन्न विचारधाराएं, पात्र और विषयों को समझाने में समर्थ होता है।

मिथक के विषय में इतना सब बताने का मेरा उद्देश्य यही है कि आज भी मुझे स्मरण है कि एम.फिल और पीएचडी के दौरान मैं नाटक पर काम करना चाहती थी लेकिन विषय चुनाव को लेकर मैं किसी भी निर्णय पर पहुँच नहीं पा रही थी। एक दिन आर्ट्स फैकल्टी में हिन्दी विभाग के कमरे की तरफ मैं जा रही थी कि अचानक सर वहाँ से बाहर की ओर आये। मैंने सर नमस्ते करते हुए सिर झुकाया ही था कि सर ने प्रश्न किया-सब ठीक है बेटा? ऐसा लगा मानो सर ने मेरे मन की दुविधा को जान लिया था। मैंने हिचकिचाते हुए कहा कि सर...सर....सर वो.... सर ने फिर कहा—क्या बात है?कुछ कहना चाहती हो? वैसे सर बहुत कम बात करते थे और आर्ट्स फैकल्टी में मेरा सर से संवाद बहुत कम ही हुआ। लेकिन उस दिन लगा मानो शायद मुझे राह दिखाने के लिए सर के रूप में ईश्वर साक्षात् मेरे सामने खड़े थे। मैंने फिर सकुचाते हुए कहा-सर मुझे एम.फिल. के लिए विषय समझ नहीं आ रहा है। उन्होंने क्षण भर की भी देरी किये बिना कहा-नये विषय पर, नई पुस्तक पर काम करना चाहती हो?जिस पर आलोचनात्मक पुस्तकें भी बहुत कम मिलेंगी। मैंने तुरन्त हामी भर दी और फिर उन्होंने कहा-कर लोगी ना? मैंने फिर से अपनी स्वीकृति दी। इस तरह से 'भारतगाथा में मिथकबोध' विषय पर मैंने एम.फिल और 'हिन्दी नाटकों के मिथकीय पात्रों की प्रासंगिकता' विषय पर सर के निर्देशन में पीएचडी की।

अपने छात्रों की हर एक छोटी-से-छोटी समस्या को वे पलभर में अपना बना लेते थे लेकिन काम में अनुशासन, तन्मयता, लगन, एकाग्रता, संयम ये सभी गुण वे अपने छात्रों में देखना चाहते थे। वक्त के पाबन्द इतने ज्यादा थे कि पीएचडी के लिए जब भी कोई चैप्टर चेक करवाना होता था तो सर पहले ही बता देते थे कि उस दिन, इतने बजे आकर अपने चैप्टर की प्रति जमा कर जाना और उस दिन, इतने बजे आकर चेक किया हुआ चौप्टर ले जाना। विभागाध्यक्ष होते हुए भी हमेशा उन्होंने निर्धारित समय पर ही चैप्टर लिए और समय पर ही चेक करके वापिस किये। इतने वर्षों में कभी ऐसा नहीं हुआ कि सर से किसी काम के सिलसिले में मिलने के लिए घंटों इंतज़ार करना पड़ा हो। छात्रों की समस्याओं को सुनने और उनके निराकरण के लिए वे हमेशा तैयार रहते थे, यही कारण था कि सर

दिल्ली विश्वविद्यालय में छात्रों के बीच बहुत लोकप्रिय थे। बहुत बार ऐसा हुआ कि विभागाध्यक्ष होते हुए सर अक्सर अनेक अकादमिक बैठकों में व्यस्त होते थे लेकिन उन्हें जब पता लगता था कि कोई छात्र उनसे मिलने आया है तो वे तुरन्त कमरे के बाहर आकर उस छात्र से जरूर पूछते थे- बेटा बताओ क्या बात है?छात्रों के लिए इस तरह की सोच विरले ही शिक्षकों में होती है। हर कार्य को व्यवस्थित तरीके से करना उनकी रोजमर्रा की आदत में शामिल था। मुझे याद है एक बार मुझे अपने शोध के लिए कुछ पुस्तकों की जरूरत थी, सर ने कहा कि उनके पास वे पुस्तकें है। आर्ट्स फैकल्टी में ऊपर सर का कमरा होता था, मैं वहाँ गयी और सर ने अलमारी खोलकर कहा बेटा जो पुस्तकें चाहिए वे निकाल लो और सर अपनी कुर्सी पर बैठकर कुछ लिखने में व्यस्त हो गये। मैंने दो पुस्तकें निकाली और सर को दिखायी, सर ने अपनी डायरी निकाल कर उसमें उस दिन की दिनाँक डालकर मेरे नाम के साथ पुस्तकों के नाम भी लिख दिए। इसके बाद उन्होंने कहा बेटा पुस्तकें ज्ञान का अनुपम भंडार हैं इनकी सार्थकता तभी है जब ज्यादा से ज्यादा लोग इन्हें पढ़ें। अब तुम जिस दिन इन्हें वापिस करोगी उस दिन मैं ये लिखा हुआ कट कर दूँगा। इतना ही नहीं उन्होंने बड़ी ही आत्मीयता से कहा बेटा तुम कभी भी किसी को कोई पुस्तक भविष्य में दो तो उसे लिखकर जरूर अपने पास रखना ताकि याद रहे कि पुस्तक किसे और कब दी है? ऐसे में पुस्तक के खोने की सम्भावना कम रहती है। आज भी कई बार पुस्तकें देकर लिखना भूल जाती हूँ जिससे कई बार याद नहीं रहता है कि पुस्तक किसे दी। ऐसे में सर की दी हुई सीख बहुत याद आती है। एक श्रेष्ठ शिक्षक के नाते उन्होंने सदैव अपने छात्रों को समझते हुए उनसे जुड़ाव स्थापित किया। सर छात्रों के लिए पूरी तरह से समर्पित रहे।

अकादमिक जगत में उनकी ख्याति उनके व्यक्तित्व, उनकी प्रभावी कार्यशैली के कारण थी। विश्वविद्यालय की अनेक बैठकें इस बात की गवाह हैं कि सर ने हमेशा हिन्दी के आत्मसम्मान की लड़ाई लड़ी है। उन्होंने विभिन्न पाठ्यक्रम समितियों में निर्णायक भूमिका निभाते हुए हिन्दी की विशिष्ट पहचान बनायी। एक श्रेष्ठ शिक्षक, कुशल प्रशासक, शोधार्थी के रूप में उनकी उपलब्धियाँ अनंत हैं। जीवन पर्यन्त शिक्षण संस्थान के निदेशक के रूप कई वर्षों तक कार्य किया। वे विभिन्न महाविद्यालयों की गवर्निंग बॉडी के सदस्य रहे। विभिन्न महाविद्यालयों में विशेषज्ञ सलाहकार के रूप में सक्रिय भागीदारी रही। अनेक बड़े पदों पर कार्य करते हुए भी मैंने कभी उनके व्यवहार में बदलाव नहीं देखा। सर का व्यक्तित्व ऐसा था कि उनसे बात करने में हिचकिचाहट होती थी लेकिन सर का मन एक स्वच्छ, निर्मल नदी की भांति सबको अपना बनाकर साथ ले चलने वाला था।

'अतिथि देवो भवः' मैंने सुना था लेकिन सर के आत्मीय व्यवहार से मैंने इन शब्दों का सही अर्थ जाना। एक बार सर के घर एक पुस्तक के सन्दर्भ में जाना हुआ, अभी मैं जाकर बैठी ही थी कि सर ने यामिनी मैम को आवाज लगायीं—'यामिनी कुछ खाने का लेकर आओ भाई' पर सर के साथ-साथ यामिनी मैम भी आवभगत में कम नहीं हैं। सर इतने दूसरी कुछ बात कहते उससे पहले ही मैम ट्रे में शरबत, मिठाई, मेवे रखकर ले आयीं और बड़ी आत्मीयता से कहा बेटा बात तो होती रहेंगी पहले तुम कुछ लो। दो गुरुओं के मध्य कुछ लेने में भी बहुत संकोच हो रहा था लेकिन इतना आत्मीय और प्रेमपूर्वक आग्रह था कि मैंने एक काजू ले लिया। घर पर सर की एक छोटी-सी लाइब्रेरी थी जिसमें उनकी सभी पुस्तकें रखी थी। सर ने मुझे पुस्तक लाकर मेरे हाथ में सौंप दी और कहा बेटा बहुत मेहनत से मन लगाकर पढ़ना। मैंने जी सर कहते हुए उनसे विदा लेते हुए नमस्ते सर कहा, सर ने तुरन्त प्रश्न किया-कैसे आयी हो बेटा?मैंने कहा सर गाड़ी से आयी हूँ, सर बाहर तक मुझे छोड़ने आये, ड्राईवर को सोसाइटी से बाहर निकलने का रास्ता बताया। इतना ही नहीं जब तक मेरी कार सर की सोसाइटी से बाहर नहीं निकल गयी तब तक वे वहीं खड़े रहे। पितृतुल्य ऐसा व्यवहार हमेशा मन के एक कोने में बहुत सुखद स्मृति के रूप में विद्यमान रहता है। घर पर आये एक छात्र के प्रति उनका ऐसा आदर- सत्कार का भाव था तो सभी अतिथियों के साथ उनका व्यवहार कितना आत्मिक होता होगा इसका अंदाजा स्वतः ही लगाया जा सकता है।

बात सन् 2006 की है, एक दोपहर मुझे हिन्दी विभाग से मेरे घर की लैंड लाइन पर फोन करके सूचित किया गया कि कल मेरा पीएचडी का वाइवा है। मैंने सुनते ही सर को फोन किया। सर ने बताया कि उनकी तबियत काफी खराब हो गयी है, उन्हें स्टमक इन्फेक्शन हो गया था। उन्होंने कहा बेटा आप चिन्ता मत करो मैंने विभाग में बात कर ली है, वहाँ से कोई न कोई प्रो. आप के वाइवा में एक्सपर्ट के साथ रहेंगे, तुम्हें घबराने की कोई बात नहीं है। मैंने बड़ी हिम्मत करके कहा कि सर आपके बिना मैं वाइवा देने नहीं जाऊँगी। सर ने कहा—'बेटा मैं ड्राइव करके आने की स्थिति में नहीं हूँ। 'मेरे मुँह से अचानक निकला कि सर मेरे हसबैंड के साथ मैं लेने आ जाऊं तो...सर ने मेरी चिन्ता मानों फोन पर ही समझ ली, वे बोले-ठीक है लेकिन छोड़ने भी आना पड़ेगा। अगली सुबह मैं सर के घर पंहुँची, मैम ने फिर से मुँह मीठा कराते हुए आशीर्वाद देकर घर से विदा किया। सर बहुत बातों में पूरी तरह से सामाजिक थे। मैंने आगे की सीट का दरवाजा सर के लिए खोला लेकिन उन्होंने तुरन्त कहा-बेटा यहाँ तुम्हारा अधिकार है मैं पीछे बैठूँगा, ये सुनकर मैं भाव-विभोर होकर सर की तरफ देखती रह गयी। बिलकुल ऐसा लगा मानो एक पिता के रूप में सर मुझे मेरा अधिकार सौंप रहे थे। सर की तबीयत सच में ठीक नहीं थी जिस कमरे में वाइवा होना था वहाँ वे जाकर एक तरफ बैठ गये, मेरा वाइवा हुआ उसके बाद हमने सर को ड्राप किया। मैंने सर को धन्यवाद कहा और सर ने हँसते हुए कहा -भई तुम इतना डर गयी थी मुझे लगा कि अब तो जाना ही पड़ेगा, सर ने हसबैंड को धन्यवाद कहा जबकि सर को ऐसी हालत में मेरे कारण ही यूनिवर्सिटी जाना पड़ा। सर का ऐसा व्यवहार सच में उनके बड़प्पन की निशानी है। ऐसी न जाने कितनी स्मृतियाँ हैं जो सर के व्यक्तित्व से जुड़ी हैं। उनके द्वारा किये गये ऐसे कितने असंख्य कार्य हैं जिनके माध्यम से जिंदगी की पाठशाला के अनेक सबक हमने सीखे हैं। उनके अनेक ऐसे शब्द हैं जो वे अक्सर अपने शिष्यों से संवाद करते हुए बोला करते थे-बेटा कर लोगी न, समय

पर काम होना चाहिए, मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है, मेहनत करो,
मैं तुम्हे साधुवाद देता हूँ...आदि आज भी मन-मस्तिष्क में कौंधते हैं।

मेरे लिए छाया-से तरुवर, बहुत याद आते हैं गुरुवर
सुबह सवेरे मिली खबर
गुरु गये किसी और डगर,
जहाँ न कोई संगी-साथी
कोई वहाँ पर नहीं विद्यार्थी,
मेरे लिए छाया–से तरुवर
बहुत याद आते हैं गुरुवर!
किन शब्दों से दें श्रद्धांजलि
शब्द भी आज तो मौन हुए,
धैर्य, संयम, अनुशासन के गुरुवर
पंच तत्व में विलीन हुए,
मेरे लिए छाया -से तरुवर
बहुत याद आते हो गुरुवर!
तुमसे सीखा हमने जीना
आगे बढ़ना मंजिल पाना,
सच्चाई की राह पर चलकर
हर लक्ष्य को बेंधकर आना,
मेरे लिए छाया–से तरुवर
बहुत याद आते हैं गुरुवर!
तुम कभी नहीं किसी से हारे
हाय! कोरोना से क्यों हारे,
खूब लड़ी जंग मृत्यु शैय्या पर
बिन कुछ बोले स्वर्ग सिधारे,
मेरे लिए छाया -से तरुवर
बहुत याद आते हैं गुरुवर!
जो कोई तुमसे मिलता था
देते थे उसको अपनापन,
एक विराट व्यक्तित्व का जाना
एक युग का मानो हुआ समापन,
मेरे लिए छाया -से तरुवर
बहुत याद आते हैं गुरुवर!
तुम मेरा अभिमान हो गुरुवर
मेरा स्वाभिमान हो गुरुवर,
ईश्वर भी इठलाया होगा
जब अपने लोक तुम्हे पाया होगा,
मेरे लिए छाया–से तरुवर
बहुत याद आते हैं गुरुवर!!

असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, दौलत राम महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

दोस्ती का पर्याय—प्रिय रमेश जी

स्नेह चड्ढा

सहपाठी-सहकर्मी प्रिय रमेश जी के साथ व्यतीत किया गया समय आज भी ताजा है। हृदयस्थ भावों को शब्दबद्ध-करना कभी-कभी बहुत कठिन हो जाता है फिर भी अपने कुछ अनुभव आप सबके साथ साझा करने का प्रयास करूँगी।

सन् 1976 में, जब रामजस में मेरी नियुक्ति हुई तब रमेश जी वहाँ हैं- जानकर आत्मीय संतोष हुआ। हिन्दी विभाग के अन्य वरिष्ठ सदस्यों का मिला-जुला परिचय, जो मुझे अवगत हुआ उससे मैं किन्चित् परेशान थी और महिला सदस्य के रूप में अकेली थी। असमंजस और अनजाना-सा भय लेकर मैंने विभागीय कक्ष में प्रवेश किया, लेकिन रमेश जी और आदरणीय जोशी जी ने मुझे विभागीय परिवार में इस प्रकार सम्मिलित किया कि वह सब अपना हो गया। सहपाठी होते हुए परस्पर परिचय कभी नहीं हुआ था, हाँ, अपरिचित भी नहीं थे। प्रत्यक्ष एवं परोक्ष से वे सदा मित्रवत स्तम्भ बने रहे। उनके समक्ष जब भी किसी समस्या को लेकर गयी, उसका समाधान सहजता से मिल जाता।

मुझे याद है—विभागीय समितियों के प्रभारी का चयन, जब मतभेद का विषय बन गया और परस्पर द्वेष का भाव मुखरित होने लगा, ऐसे समय में उनके सुझाव व्यवस्था बनकर आते और सब को स्वीकार्य भी होते। उनके द्वारा वरिष्ठता-क्रम जैसा समाधान प्रस्तुत करते ही प्रत्येक कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न हो जाते जो रमेश जी की सूझ-बूझ का परिचायक था। सहकर्मी एवं मित्र की ऐसी विशेषताओं को मैंने हमेशा महसूस किया।

विभाग की अन्तरंग परिस्थितियों में एक घटना ऐसी भी घटित हुई जिसका उल्लेख संकोची स्वभाव वाले रमेश जी कभी नहीं करते थे—डॉ. पद्माकर पाण्डेय की नियुक्ति को स्थायी करने के लिए स्वयं छुट्टी पर चले गये जिसमें आर्थिक दृष्टि से हुई हानि का उन्होंने कभी उल्लेख तक नहीं किया—यह थी मित्रता।

उनके लिए हिन्दी, गणित, कॉमर्स, संस्कृत के साथ रामजस के अन्य कई साथी-जैसे एक परिवार थे। कॉलेज के अन्य कर्मचारियों के प्रति आत्मीय व्यवहार उन्हें विशिष्ट बनाता था। समय बीतता गया। सन् 1991 में विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में उनकी नियुक्ति यद्यपि बहुत प्रसन्नता की बात थी लेकिन रामजस से रमेश जी का चले जाना भी चिन्ताजनक महसूस हुआ। वे कहते थे कि 'रामजस मेरा घर है और मैं हमेशा यहाँ हूँ- सबके साथ', विभाग में समय-समय पर उत्पन्न समस्याओं को हल करने में उन्होंने हमेशा अपनी व्यस्तताओं में भी समय निकाला। तीन बार उन्होंने विभागाध्यक्ष का पद सँभाला—यह हमारे लिए बहुत गौरव की बात है। अध्यक्षीय कक्ष को साफ-सुन्दर और व्यवस्थित रूप देने में उनकी अहम् भूमिका रही। प्रवेश करते ही सब सकारात्मकता से अभिभूत भी होते। प्रसन्नमुद्रा में कार्यरत रहते हुए रामजस के साथ-साथ विभागीय गतिविधियों में भी उन्होंने कई सुधार किये। मित्रता के वे पर्याय थे, वे कभी विरोध करने वालों के प्रति भी अनुचित व्यवहार नहीं करते थे, उन्हें भी साथ लेकर चलना- यह कोई सामान्य बात नहीं।

सब अनुभवों को लेखनीबद्ध करने ले लिए शब्द बहुत कम हैं। भावों को इन पंक्तियों में प्रस्तुत करने का प्रयास मैंने किया है-

सच है यह कि
जाने वाले लौटकर कभी आते नहीं—
झूठ यह भी नहीं कि
वे कभी जाते नहीं—
दिल से—
दिमाग से
और उन यादों से
जो सम्बन्धों की सच्चाई है
गहराई है—
गहरी यादें उन्हें
रखती हैं ज़िंदा
हमेशा-हमेशा।

अन्त में कहूँगी कि उनके विशाल 'उद्गीत' परिवार द्वारा किया गया यह प्रयास 'उद्गीत- पत्रिका' सराहनीय है। उनकी छत्र-छाया में पल्लवित सभी प्राध्यापक जो अपने-अपने क्षेत्र में ज्ञान के प्रचार-प्रसार में रत हैं—साधुवाद के पात्र हैं।

सेवानिवृत्त एसोसिएट प्रोफेसर
रामजस कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रो. रमेश गौतम : जीवन के बाद भी दिशा-दर्शन करने वाले गुरु

जितेंद्र वीर कालरा

नब्बे के दशक के उत्तरार्ध में जब स्नातक की उपाधि प्राप्त कर दिल्ली विश्वविद्यालय में एम. ए. (हिन्दी) में प्रवेश लिया तो दक्षिणी परिसर में अगस्त माह में कक्षाएँ प्रारम्भ हुईं। कुछ कक्षाएँ लेने के पश्चात् जब एक दिन अपने महाविद्यालय में गया, जहाँ से स्नातक की पढ़ाई की थी, तो वहाँ डॉ. आभा सक्सेना जी को स्नातकोत्तर में प्रवेश की सूचना दी, तो बहुत वे बहुत प्रसन्न हुईं और पूछने लगीं कि कौन-कौन पढ़ाता है। प्रो. पूरन चंद टंडन जी, डॉ. महेंद्र, डॉ. पूर्ण सिंह डबास, डॉ. नगेंद्र जी आदि का नाम बताने पर वे प्रसन्न हुईं और साथ ही उन्होंने पूछा, डॉ. रमेश गौतम भी पढ़ाते हैं क्या। यह वह क्षण था जब मैंने पहली बार गौतम सर का नाम सुना। डॉ. सक्सेना कहने लगीं कि गौतम जी अच्छे शिक्षक हैं। मैंने उत्तर दिया, ''नहीं, शायद द्वितीय वर्ष में पढ़ाएंगे। (उस समय सेमेस्टर व्यवस्था लागू नहीं थी)

इसके कुछ दिन बाद एम. ए. की कक्षा में भी चर्चा होने लगी रमेश गौतम सर अच्छा पढ़ाते हैं, किंतु वे उत्तरार्ध (द्वितीय वर्ष) में नाटक का पेपर ही पढ़ाते थे। कुछ दिनों में पहचान भी होने लगी कि रमेश गौतम सर हैं कौन। ऊँचा कद, स्वाभिमान से उन्नत भाल और आधी बाजू की कमीज़ में उनका बाह्य व्यक्तित्व किसी को भी अपनी ओर आकर्षित करने के लिए वैसे भी पर्याप्त था। टंडन सर उस समय पूर्वार्ध में रीति काल के पेपर में बिहारी और मतिराम को पढ़ाते थे। हम देखते कि गौतम सर उनकी कक्षा समाप्त होने तक प्रतीक्षा करते और दोनों एक ही साथ विश्वविद्यालय जाते थे। इतना जानने-सुनने के पश्चात् हम लोग उत्तरार्ध की प्रतीक्षा करने लगे और गौतम सर से पढ़ने को व्याकुल होने लगे।

अगले वर्ष उत्तरार्ध की कक्षाएँ भी प्रारम्भ हुईं। दक्षिण परिसर में हिन्दी विभाग में कार्यरत श्री प्रदीप जी ने समय-सारणी उपलब्ध कराई। गौतम सर की कक्षा का समय था सोमवार, पहली कक्षा, प्रातः दस बजकर दस मिनट पर। विषय—चन्द्रगुप्त नाटक। सर ठीक दस बजकर दस मिनट पर कक्षा में होते थे। गौतम सर से चंद्रगुप्त नाटक पढ़ना शुरू किया, तो पूर्व में सर के विषय में सुनी बातों पर विश्वास बढ़ता चला गया। उनके नाटक पढ़ाने की शैली में यह भी समझ में आया कि किस प्रकार नाटक को पढ़ाते हुए, उसके सम्भावित व्याख्यात्मक स्थलों की व्याख्या को समझाते हुए आलोचनात्मक प्रश्न को भी किस प्रकार एक ही साथ पढ़ाया जा सकता है। सर से चंद्रगुप्त पढ़ते-पढ़ते नाटक में रूचि बनने लगी। एक तो प्रसाद द्वारा रचित चन्द्रगुप्त नाटक जो कि भारतीय सांस्कृतिक दृष्टि से भी अपना विशिष्ट महत्व रखता है, और उसे गौतम सर से पढ़ना एक श्रेष्ठ अनुभव बन गया। नाटक मे आये शब्द 'भूमा' की जो व्याख्या सर ने जिस रूप मे समझाई, ऐसा ध्यान में आने लगा कि कोई मार्क्सवादी दृष्टिकोण वाला व्यक्ति या शिक्षक 'भूमा' को इस रूप में व्याख्यायित कर ही नहीं सकता और चंद्रगुप्त नाटक की सांस्कृतिक दृष्टि को भी इस शैली में नहीं समझा सकता, जैसा गौतम सर समझाते थे। विश्वविद्यालय में मित्रों के साथ होने वाली चर्चाओं में सर की दक्षिणपंथी विचारधारा के साथ जुड़ाव भी ध्यान में आने लगा था। सर के व्यक्तित्व से भी ऐसा ही प्रतीत होता था। उनके व्यक्तित्व के प्रति आकर्षण का यह एक अन्य विशिष्ट कारण था।

एम. फिल. में दक्षिण परिसर में प्रवेश हुआ। किंतु इस दौरान भी सर दक्षिण परिसर में एम. ए. की कक्षाएँ लेने आते रहे और उनसे मिलकर आशीर्वाद प्राप्त होता रहा। सर एक गम्भीर विद्यार्थी और संघ के स्वयंसेवक और कार्यकर्ता के रूप में मुझे पहचानने लगे थे। धीरे-धीरे सर के साथ निकटता बढ़ती चली गयी। इसके बाद कई बार गौतम सर के साथ विश्वविद्यालय में आत्मीय भेंट हुई और कई बार घर भी जाना हुआ, जहाँ सर के आशीष के साथ-साथ आदरणीय यामिनी मैडम का मातृस्नेह भी प्राप्त हुआ।

आज जब आदरणीय गौतम सर के विषय में संस्मरण लिखने बैठा हूँ तो कुछ एक ऐसे प्रसंग भी ध्यान में आ रहे हैं, जिन्होंने जीवन में मूल्यपरकता को और अधिक दृढ़ किया और जिन्हें जीवन भरत विस्मृत नहीं किया जा सकता। ऐसा ही एक प्रसंग था जब पत्नी सारिका की लेडी श्रीराम कॉलेज में नियुक्ति के बाद हम लोग सर का आशीर्वाद लेने गौतम सर के घर गये। प्रसन्न्ता का प्रसंग था, तो स्वाभाविक ही था कि कुछ मीठा भी लेकर गये। किंतु सर के घर पहुँचने पर हमें जो अनुभव हुआ, बाद में ध्यान में आया कि वह कई मित्रों का अनुभव रहा। मिठाई के प्रसंग पर सबसे पहले डाँट पड़ी और उन्होंने कहा कि इसे वापस लेकर जाना। फिर अपनी माताजी से कहने लगे कि इन बच्चों के जीवन में खुशी का प्रसंग आया है, इनका मुँह मीठा कराइये। और माताजी भीतर से एक प्लेट में मिठाई लेकर आयीं, जिससे गौतम सर और यामिनी मैडम ने स्नेहपूर्वक हम दोनों का मुँह मीठा कराते हुए स्नेहाशीष के साथ भविष्य के लिए ढेर सारी शुभकामनाएँ दीं।

आदरणीय गौतम सर का व्यक्तित्व बाहर से जितना कठोर प्रतीत होता था, अपने विद्यार्थियों के व्यक्तित्व के विकास के लिए वह उतना

ही कोमल व संवेदनशील था। अपने विद्यार्थियों की अकादमिक उपलब्धियों पर वे पितातुल्य हर्ष से प्रफुल्लित होते थे। 2020 में जब मैंने संघ के वरिष्ठ प्रचारक माननीय सुनील आंबेकर जी (वर्तमान में अखित भारतीय प्रचार प्रमुख) द्वारा लिखित पुस्तक "RSS : Roadmaps for the 21st Century" का अनुवाद 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ : स्वर्णिम भारत के दिशासूत्र' शीर्षक से करने के पश्चात् उसकी कवर की फोटो सर के फोन पर भेजी, तो उन्होंने बिना किसी देरी के न केवल उसे 'उद्गीत' समूह पर अग्रेषित किया अपितु मेरी अनुवाद कला की प्रशंसा करते हुए मुझे एक श्रेष्ठ अनुवादक भी घोषित किया और यह भी लिखा कि जितेंद्र की अनुवाद कला को मैं परख चुका हूँ। इसके पश्चात् मैंने सर से बात की और शीघ्र ही पुस्तक भेंट कर उनका आशीर्वाद लेने की बात कही। किंतु काल की गति क्रूर थी। उस बातचीत के बाद उनसे भेंट तो क्या बातचीत भी न हो सकी।

उसी दौरान जब वर्षों की प्रतीक्षा के बाद दिल्ली विश्वविद्यालय में पदोन्नति का सिलसिला शुरू हुआ और उनके विद्यार्थी भी पदोन्नत हो रहे थे, तो प्रत्येक की पदोन्नति पर सर ने हर्ष के शुभकामनाएँ व्यक्त कीं। इसी क्रम में सर ने एक दिन 'उद्गीत' समूह पर लिखा - 'मेरे विद्यार्थियों ने मुझे चक्रवर्ती गुरु होने का अहसास कराया है। चक्रवर्ती सम्राट क्या होते होंगे!' धर्मपत्नी सारिका ने भी जब पदोन्नति का संदेश सर के मोबाईल पर भेजा तो कुछ दिन बाद उनका बधाई और शुभकामना आशीष संदेश प्राप्त हुआ। यह संदेश शायद उन्होंने अस्पताल से ही किया होगा, ऐसा प्रतीत होता है।

दिल्ली विश्वविद्यालय के जीवन पर्यन्त शिक्षण संस्थान (ILLL) के निदेशक के रूप में भी आदरणीय गौतम सर की उपलब्धियों को सदैव स्मरण किया जाएगा। FYUP के दौरान एक कई पाठ्यपुस्तकों को सर ने तैयार करवाया, बहुत-सी पाठ्य सामग्री को व्यवस्थित रूप से तैयार करवाते हुए उन्हें वेबसाइट पर अपलोड करवाया व विद्यार्थियों के लिए अध्ययन को सुलभ बनाने का महत्वपूर्ण कार्य किया। मैंने भी उस दौरान सर के मार्गदर्शन में एक पाठ्यपुस्तक 'प्रायोगिक हिन्दी' का सहलेखन आदरणीय राज भारद्वाज मैडम के साथ किया। यह सब बहुत व्यापक व विराट कार्य था किंतु सर भी बड़े जीवट वाले व्यक्ति थे। चुनौतीपूर्ण कार्यों को वे एक रोमांच के साथ स्वीकर करते थे और फिर अध्यवसायपूर्वक किंतु पूरे धैर्य के साथ उसे सम्पन्न करते थे। ऐसा ही एक चुनौतीपूर्ण कार्य था 'विश्वविद्यालय कैलेंडर' का संशोधनों सहित हिन्दी अनुवाद करना। बात है वर्ष 2014 की। दिल्ली विश्वविद्यालय के कुलरपति थे प्रो. दिनेश सिंह। संसद के पटल पर विश्वविद्यालय के कैलेंडर को रखा जाना था और राजभाषा अधिनियम 1963 की धारा 3(3) के अनुसार संसद के पटल पर रखे जाने वाले सभी दस्तावेजों को द्विभाषी रूप में प्रस्तुत किया जाना अनिवार्य है। किंतु आज तक तो विश्वविद्यालय कैलेंडर केवल अंग्रेजी में ही था। कुलपति महोदय ने आदरणीय रमेश गौतम सर के सामर्थ्य एवं उनके व्यवस्था कौशल को देखते हुए यह कार्य उन्हें सौंपा और सर ने तो किसी कार्य को कभी असम्भव माना ही नहीं। समय सीमित था - काम असीम। सर ने 14-15 लोगों की एक टीम बनायी। मैं भी उसे टीम का सदस्य था। लगभग दो सप्ताह तक टीम ने दिन-रात काम किया। वास्तव में दिन-रात, केवल मुहावरे में नहीं। एक बार तो प्रातः दस बजे से अगले दिन चार बजे तक हम लोग निरन्तर काम कर रहे थे और सर भी हमारे साथ बिना विश्राम किये डटे हुए थे। रात में ग्यारह बजे के लगभग यामिनी मैडम का फोन भी आया, किन्तु सर ने पूरी विनम्रता किन्तु दृढ़ता के साथ बोल दिया अभी काम है जी, सुबह घर आऊँगा। ऐसी अनेकों ही घटनाएँ हैं, जो जीवन भर हम सब विद्यार्थियों को प्रेरित करती रहेंगी और प्रो. रमेश गौतम का व्यक्तित्व एक ऐसे लाईट हाउस की भाँति है, जो जीवन पर्यन्त हम सभी का मार्ग प्रशस्त करता रहेगा। मैं कह सकता हूँ—एक ऐसा गुरु व्यक्तित्व जो जीवन भर तो शिक्षा देता ही है, जीवन के पश्चात् भी एक सच्चे गुरु की भांति हम जैसे नादानों के व्यवहार को निर्देशित करता है और हमें सही मार्ग पर बनाये रखता है। आदरणीय रमेश गौतम सर की स्मृति को सादर नमन।

एसोसिएट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, श्री वेंकटेश्वर महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

स्मृतियों से साक्षात्कार

मीनू कुमारी

15 अक्टूबर,1996 का दिन, आर्ट्स फैकल्टी का टैगोर हॉल, एम. ए. के प्रथम वर्ष में यह मेरा पहला दिन था। हाल पूरी तरह से भरा हुआ था। निराला जी से सम्बन्धित कार्यक्रम चल रहा था। इस कार्यक्रम में आचार्य नगेंद्र जी आमन्त्रित थे। एक विराट, अद्भुत और धीर गम्भीर व्यक्तित्व ने मंच पर प्रवेश किया। उन्होंने जिस भाषा में मंच संचालन करना प्रारम्भ किया, मुझे वहीं से एहसास हो गया कि मैं वाकई मास्टर्स डिग्री में प्रवेश कर चुकी हूँ। उनकी भाषा उनके व्यक्तित्व से मेल खाती थी। इतनी ही विराट, इतनी ही अद्भुत, अभिभूत करने वाली। हॉल खचाखच भरा हुआ था। आचार्य नगेंद्र निराला जी के साथ बिताया गया समय और अपनी कुछ स्मृतियाँ हमारे साथ सांझा कर रहे थे। किंतु मेरी दृष्टि उस विराट व्यक्तित्व पर केंद्रित हो गयी थी। एम.ए. में हिन्दी विषय लेने पर मेरे साथियों की ओर से बहुत आपत्तियाँ हुई कि "इतना आसान विषय क्यों ले लिया" किंतु इस विराट व्यक्तित्व के मुख से जो शब्द निकल रहे थे मुझे लग रहा था कि हिन्दी साहित्य जगत में मेरा प्रवेश हो रहा है और मैंने बिल्कुल सही विषय लिया है। बाद में पता चला यह विराट शख्सियत थे परम आदरणीय डॉ. रमेश गौतम सर।

दरअसल दादाजी के असामयिक स्वर्गवास कारण मेरी एम.ए. की लगभग तीन महीने की कक्षाएँ छूट गयी थीं। मैं स्नातक स्तर पर ही कॉलेज में लेक्चरर बनने का संकल्प ले चुकी थी। कक्षाएँ न होने के कारण यह संकल्प मुझे दूर जाता नजर आया किंतु मेरी दृढ़ता काम नहीं हुई।

एम.ए. की पहली कक्षा भी रमेश गौतम सर के साथ थी। कक्षा शुरू हो चुकी थी। मैंने सकुचाते हुए दरवाजा खोला। वही विराट व्यक्तित्व एक शिक्षक के स्थान पर विद्यमान थे। मुझे आभास हुआ कि यह हमारे सर हैं। मैं गर्दन झुकाकर कक्षा में सबसे पीछे चली गयी और कुर्सी खींचकर दीवार से सटकर बैठ गयी। मेरे दृढ़ संकल्प की एक कड़ी यह भी थी कि मैंने सिर्फ अपने लक्ष्य को केंद्र में रखा। मेरी दृष्टि सर की ओर और पेन रजिस्टर पर अबाध गति से चल रहा था। कक्षा खत्म होने पर मैंने पाया कि मैं दस पन्ने भर चुकी हूँ। यह चन्द्रगुप्त नाटक की कक्षा थी। एक घंटे तक मैं एक ऐसे जगत में विचरण करती रही जिसमें चन्द्रगुप्त, सर और उनकी आलोचनात्मक दृष्टि के अलावा मुझे कुछ नजर नहीं आ रहा था। इसी पहली कक्षा से मुझे स्नातक स्तर और स्नातकोत्तर स्तर का अन्तर स्पष्ट हुआ और यहीं से दिल्ली विश्वविद्यालय में मेरी शिक्षा की नींव पड़ी।

देरी से कक्षाएँ मेरे दिलो दिमाग पर छाया हुआ था। जिसके कारण मैं रेगुलर कक्षाओं के साथ-साथ स्कूल ऑफ़ ओपन लर्निंग और नॉन कॉलेजिएट की कक्षाएँ भी लेती थी। मेरे मन से यह बात नहीं निकल पा रही थी कि तीन महीने की जो पढ़ाई में कमी आयी उसे मुझे पूरा करना है। मुझे बहुत अधिक मेहनत करनी होगी अन्यथा मैं उतने अंक नहीं प्राप्त कर पाऊँगी जितने नैट की परीक्षा के लिए आवश्यक थे। इसके चलते मैंने किसी के साथ मित्रता बढ़ाने का प्रयास नहीं किया। इंतहा तो यह हुई कि सब रिसर्च फ्लोर पर जाकर पढ़ते थे किंतु में इमारत की खुली छत पर जाकर पढ़ती थी जहाँ कोई नहीं होता था। मेरा रोजमर्रा का यह रूटीन बन गया कि कक्षा में कुर्सी को सबसे पीछे ले जाकर दीवार से सटा लेना और वहीं से ध्यान से सुना और लिखते रहना। सर भी इस बात को भाँप चुके थे कि कक्षा में एक लड़की बहुत एकाकी और पीछे बैठी रहती है। शायद सर मेरा मार्गदर्शन करना चाह रहे थे। किंतु मैं इतनी सीमित थी कि सर को यह अवसर ही नहीं मिल पाया कि वह मुझे कुछ बता पाते।

एक दिन मैं कक्षा की और तेजी से बढ़ रही थी। सर मुझे कक्षा से बाहर मिले। मैं सहम गयी। मैंने हाथ जोड़कर नमस्ते की और गर्दन झुका कर आगे बढ़ने लगी। उन्होंने पूछा "कहाँ से आती हो अकेले क्यों बैठी रहती हो, सबके साथ रहो" मुझसे कुछ उत्तर देते न बना और "जी सर" "हाँ जी सर" कह कर रह गयी।

आज मुझे यह महसूस हो रहा है कि सर मुझे कुछ बताना चाहते थे। मैं उनसे कुछ पूछती तो वे अवश्य कुछ ज्ञानवर्धक बातें मुझे बताते किंतु में "हाँ जी सर" से आगे नहीं बढ़ पायी। खैर, मनुष्य अपने मित्रवत व्यवहार से मजबूर होता है। सोचा तो यही था कि मैं सिर्फ पढ़ाई पर ध्यान दूँगी किन्तु इतनी सतर्कता के बावजूद भी मैं सबसे दूर न रह सकी, और मेरे कुछ अच्छे मित्र बने।

जैसे तैसे प्रथम वर्ष गुजरा। परीक्षा का परिणाम अच्छा रहा। मुझे कुछ राहत मिली और मैं द्वितीय वर्ष की तैयारी में जुट गयी। मेरे साथ मेरे परिवार का पूरा सहयोग था। पिताजी मेरी शिक्षा में पूरी रुचि लेते थे। हम देर तक कवियों और लेखकों की बातें किया करते थे। यह सत्य है कि स्नातक स्तर स्नातकोत्तर स्तर में बहुत अन्तर होता है। आर्टस फैकल्टी में पढ़ाई करते समय एक परिपक्वता का वातावरण चारों ओर फैला हुआ था और मैं उसका हिस्सा बनकर मन ही मन अपने आप को धन्य समझ रही थी। द्वितीय वर्ष पूरा होने भी नहीं पाया था कि मेरा विवाह तय हो गया। मैं अब भी अपने संकल्प पर दृढ़ थी। द्वितीय वर्ष में जिस दिन नाटक का पेपर था उसी दिन विवाह की तारीख थी। मैंने पूरे मन से पढ़ाई की। घर में शादी का माहौल था किंतु मैं अपनी किताबों से दूर नहीं हो पा रही थी। विवाह के दिन भी मैं नाटक का पेपर देने गयी। मेरे कुछ मित्र मुझे उस दिन परीक्षा भवन में देखकर आश्चर्य चकित हुए। पेपर बहुत अच्छा हुआ।

एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण हुई। मार्क्स अच्छे थे। एम फिल की, नेट की परीक्षा पास की, अब पीएचडी में एडमिशन लेना बहुत बड़ी चुनौती थी। सर हिन्दी विभाग के अध्यक्ष बन चुके थे। पीएचडी के लिए साक्षात्कार का दिन आया। मैं डरी हुई थी और मैंने विषय का चयन किया 'स्वातंत्र्योत्तर कवियों की भाव भूमि' साक्षात्कार में मुझसे अनेक प्रश्न पूछे गये। विषय के विस्तार और मेरी और देखकर सर ने कहा "इतना बड़ा विषय क्या तुम कर पाओगी कोई दूसरा विषय बताओ" मेरे पास कोई विकल्प नहीं था। मैं साक्षात्कार देकर बाहर निकली। सर ने मुझे दूसरे कक्ष में बैठने के लिए कहा। मुझे लगा मेरा साक्षात्कार अच्छा नहीं हुआ। मेरी आँखों से आँसू छलक पड़े। थोड़ी देर में सर मेरे पास आये और कहा कि "एक दूसरा विषय तुम्हारे लिए चुना गया है चयनित अभ्यर्थियों की सूची कल लगा दी जाएगी" मैं तय नहीं कर पा रही थी कि क्या यह मेरे लिए शुभ सूचना है।

उसे समय फोन का चलन नहीं था। अगले दिन चयनित अभ्यर्थियों की सूची देखने के लिए मैं घर से निकल पड़ी। मन में उथल-पुथल मची हुई थी। मैं गलत बस में जा बैठी जिसका पता मुझे बहुत देर बाद चला। बहुत देर इधर-उधर भटकने के बाद में आर्ट्स फैकल्टी पहुँची। लिस्ट अभी तक नहीं लगी थी। सर ने मुझे पचपन न. कमरे में बुलाया और मुझे एक विषय बताते हुए कहा "क्या यह कर लोगी" मैंने कहा "ठीक है सर"

लिस्ट हिन्दी विभाग के कक्ष के आगे लगा दी गयी उसमें मेरा नाम भी शामिल था। मेरी शोध निर्देशिका थी डॉक्टर यामिनी गौतम मैम। मैं सर और मैडम के सम्बन्ध से अनभिज्ञ थी। सकुचाई सी हिन्दी विभाग के ऑफिस में पहुँची। शोध कार्य के लिए—हमें सिनॉप्सिस तैयार करने थे। मैं नरेश सर से मैडम का नंबर माँगने लगी। सर वहीं पर खड़े थे। उन्होंने सख्त आवाज में मैडम का नंबर बताया। जब सर वहाँ से चले गये तब नरेश सर ने मुस्कुराते हुए बताया "यामिनी मैडम सर की मिसेज हैं। मैं हैरत में पड़ गयी। क्या मैं इतनी सौभाग्यशाली हूँ कि यामिनी मैडम के निर्देशन में पीएचडी कर सकूँ।

पीएचडी में एडमिशन के बाद मुझे मेरे पति (मनोज जी) ने सुझाव दिया कि हमें सर को मिठाई खिलानी चाहिए। उन्होंने इतना बड़ा सहयोग हमें दिया है। मैंने बहुत मना किया किंतु उनके बार-बार आग्रह करने पर मैं मिठाई लेकर उनके साथ सर के घर पहुँच गयी। यह मेरे जीवन की बहुत बड़ी भूल थी। मेरे कदम आगे नहीं पड़ रहे थे। मैं डर रही थी। घर के अन्दर मुझे अकेले ही जाना था। मैंने बैल बजाई और मिठाई लेकर अन्दर घुसी। सामने मैडम थी। उन्होंने कहा यह मिठाई क्यों ले आयी। अन्दर से सर आये और भड़क उठे। उन्होंने कहा "क्या तुम कमाती हो जो हमें मिठाई खिला रही हो "मुझसे कुछ जवाब देते न बना। आँखों में आँसू छलक पड़े।सर का गुस्सा ठंडा हो गया। उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा "यह तो तुमने स्त्री के सबसे बड़े शस्त्र का प्रयोग कर दिया"। मैं उनकी मुस्कुराहट नहीं देख पायी क्योंकि मैंने सिर नीचे किया हुआ था यह शब्द आज भी मेरे कानों में गूंज रहे हैं उन्होंने कहा "अब डिब्बा खोलो और हमें मिठाई खिलाओ"। मैंने आँसू पूछते हुए डिब्बा खोला और असमंजस में पड़ गयी कि पहले मिठाई सर को दूँ या मैडम को। मेरे असमंजस को भाँप कर मैडम ने सर की ओर इशारा किया। मैंने सर को मिठाई खिलायी। फिर मैडम को मिठाई खिलाई। सर ने कहा "इस मिठाई को घर ले जाओ और सबको खिलाओ।" मैडम ने सिनॉप्सिस तैयार करने के लिए स्नेह लता मैडम से सम्पर्क करने के लिए कहा।

शोध कार्य आगे बढ़ा। मेरे लिए दिल्ली विश्वविद्यालय से सर का घर पास पड़ता था। मैं अक्सर शोध कार्य के लिए उनके घर पहुँच जाती। सर ने बार-बार आग्रह किया कि मैं अपने पति के साथ आया करूँ। जगह सुनसान है। मैंने बताया कि वह बाहर गाड़ी में हैं। सर उन्हें बाहर लेने गये। सर को देख मनोज जी गाड़ी से उतरे, उन्होंने नमस्ते की, और घर के अन्दर आ गये। जब काम पूरा हुआ और वापस चले तो मुझे ऐसा महसूस हो रहा था जैसे कोई पिता अपनी लड़की और दामाद को बाहर छोड़ने के लिए आ रहा हो। हम सर और मैडम से नमस्ते करके वहाँ से चल पड़े।

सर दो बार विभागाध्यक्ष बने। इसके बाद ILLL में उन्होंने प्रमुख पद का कार्य भार सँभाला मेरा शोध कार्य समाप्त हो चुका था। पीएचडी के दौरान लंबे समय तक तन्मयता के साथ पढ़ाई करने के बाद मैंने यह तय किया अब इसके बाद किताबों को हाथ भी नहीं लगाऊँगी। साल भर मैं किताबों से दूर रही किंतु शैक्षिक जगत में विचरण करने वाला व्यक्ति पुस्तकों से दूर रहे यह कैसे सम्भव हो सकता है। एक साल में एक पुस्तक की योजना तैयार हो चुकी थी। मैं ILLL में सर के पास मार्गदर्शन के लिए पहुँची। उनके कक्ष के सामने बैठकर प्रतीक्षा करती रहती। लोग आते रहते थे और सर के कक्ष में जाते रहते, पर मेरी हिम्मत ही नहीं होती थी कि मैं सर के पास जाकर कुछ कहूँ। एक दिन मैंने हिम्मत जुटाकर अपनी मंशा उनके सामने रखी। उन्होंने पुस्तक से सम्बन्धित रूपरेखा तैयार करवाई। इस सिलसिले में मुझे कई बार वहाँ जाना पड़ा इस पुस्तक पर उसे समय कार्य नहीं हो सका पर इस पुस्तक को पूरा करना मैं अपना दायित्व समझती हूँ। पुस्तक तैयार होते ही आपके साथ अवश्य सांझा करूँगी।

सर की सेवानिवृत्ति का समय समीप आ गया था। मुझे पुस्तक के सम्बन्ध में उनसे कुछ पूछने जाना था। मैंने एक पुष्प गुच्छ तैयार करवाया और सर के पास पहुँच गयी। सर रोज की तरह अपने काम में तल्लीन थे। ऐसा बिल्कुल नहीं लग रहा था कि आज उनकी सेवानिवृत्ति का दिन है। काम के प्रति उनका समर्पण अद्भुत था। मैं पुष्पगुच्छ लेकर खड़ी रही। कुछ कहते न बना। सिर्फ इतना कह पाई "सर आपके लिए" उन्होंने कहा "इसकी क्या आवश्यकता थी" और पुष्पगुच्छ लेकर अपने पास रख लिया। पुस्तक के विषय में कुछ पूछने गयी थी पर कंठ अवरोध हो रहा था। मैं "ठीक है सर कहकर कक्ष से बाहर आ गयी।

सर के विषय में लिखने के लिए इतना कुछ है कि शब्द कम पड़ जाएँगे। ऐसा व्यक्तित्व न कभी हुआ न होगा। मुझे आज भी ऐसा नहीं लगता कि सर हमारे बीच नहीं हैं। ऐसा लगता है मानो सर हमारे साथ हैं। वह यहीं कहीं हमारे बीच अदृश्य रूप में विद्यमान हैं। इतना अफसोस अवश्य है कि काश मैं उनके प्रति कभी आभार व्यक्त कर पाती। उनके लिए दो शब्द कह पाती जो संकोचवश नहीं कह पायी।

असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, मैत्रेयी महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

यादें! यादें! और यादें!

हेमवती शर्मा

उद्‌गीत परिवार एक अदृश्य सूत्र से बँधा, हिन्दी-विभाग के सदस्यों के साथ-साथ कुछ अन्य विभागों के प्राध्यापकों का समूह है। इसके गठन और संचालन, क्रियाकलापों के पीछे एक उद्‌देश्य यह था कि हम सभी अपने भावोद्‌गारों को इसके माध्यम से प्रकट कर सकें, इस 'शीर्षक' से एक पत्रिका प्रकाशित की जाए। हम सभी के श्रद्धेय डॉ. गौतम और मैडम यामिनी जी के साथ 'उद्‌गीत' नाम स्वीकृत किया गया। पत्रिका प्रकाशित होगी यह तो तय था किन्तु उसका प्रवेशांक सर की स्मृति को समर्पित होगा ऐसा सोचा भी नहीं जा सकता था। काश! यह पत्रिका सर के जीवन काल में उन पर विशेषांक के रूप में निकलती तो सभी का उत्साह देखते ही बनता। आज सर की अनुपस्थिति में उन पर संस्मरण लिखना हृदय को मर्मांतक पीड़ा पहुँचाने वाला है। खैर!

मैं डॉ. गौतम की कक्षा में बैठकर कभी उनसे पढ़ी तो नहीं, आयु में भी मैं उनसे बहुत छोटी नहीं रही किन्तु जब भी मैं उनसे मिली उन्होंने मुझे हमेशा एक विद्यार्थी, एक छात्रा, एक शिष्या के रूप में ही देखा और 'उनका' बेटा ऐसा करो या ऐसा न करो' जैसे शब्द उनकी मेरे प्रति आत्मीयता, सहृदयता, एक गुरु की शिष्या के लिए चिन्ता का अहसास कराते। बात उन दिनों की है जब मेरी नियुक्ति 'भगिनी निवेदिता कॉलेज' में हुई थी। उस समय हमारे पास अनचाहे नम्बरों से कॉल आये। मैंने अपनी चिन्ता शेयर की। (कॉलेज आने जाने का न कोई उचित साधन, साथ ही डेढ़ दो किलोमीटर का सुनसान खेतों वाला रास्ता ऐसे में डर लगना स्वाभाविक था) तब सर ने हमें समूह में आने-जाने का मार्ग सुझाया। इस सीख पर चलकर हम सभी साथी निश्चिंत होकर कॉलेज आने-जाने लगे। सर को मेरी चिन्ता सदैव रहती थी क्योंकि मेरे आवास और कार्यस्थल की दूरी लगभग साठ किलोमीटर थी पहली बार जब मैं कॉलेज में साक्षात्कार देने के लिए गयी थी तब साक्षात्कार का समय दोपहर दो बजे का था और आवेदकों की संख्या बहुत अधिक। उस समय सर ने महिला, आवेदकों को देखते हुए दूर से साक्षात्कार हेतु आने वालों के लिए पहले साक्षात्कार की व्यवस्था करवायी जिससे किसी को किसी तरह की परेशानी न हो। उनकी और मैडम की यह चिन्ता मुझे आज तक देखने को मिलती है। 'बेटा, तुम्हें दूर जाना है' तुम समय से चली जाओ' इन बातों को सोचकर आज भी मुझे एक गार्जियन की बच्चों के प्रति होने वाली 'चिन्ता', 'भय', 'स्नेह' नजर आता है।

हमने हमेशा साधिकार सर के समक्ष अपनी समस्या रखने में संकोच नहीं किया और हमारी समस्याओं का हल भी हो जाता था और सर ने कभी यह एहसास भी नहीं होने दिया कि वे हमारे लिए कुछ कर रहे हैं। न तो सामने से ऐसा कहा कि हो जाएगा तुम जाओ तथा परेशानी के निकलने के बाद आभार तक जताने नहीं दिया। आज जहाँ सभी लोग भौतिकतावाद की दौड़ में भागे जा रहे हैं। एक दिन में कई-कई व्याख्यान देकर पैसा कमाने में लगे हैं। 'भगिनी निवेदिता कॉलेज़' जैसे दूर-दराज के कॉलेज में लोग यह सोचकर जाना नहीं चाहते कि पूरा दिन खराब होगा और मिलेगा क्या? हमने सर को जब भी किसी प्रकार की संगोष्ठी, व्याख्यान आदि के लिए बुलाया सर ने कभी टाल-मटोल नहीं की। अपना पूरा समय और ज्ञान वर्षा हमारी छात्राओं पर लगाने में कभी कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी और बदले में कोई राशि किसी प्रकार का बिल आदि भर कर कॉलेज से नहीं ली। ऐसा लगता था धन्यवाद-ज्ञापन से भी सर को परहेज़ है। बड़ी सहजता, सहृदयता, संवेदनशीलता के साथ सभी के साथ रूबरू होना सहज दीखता था।

एक घटना जो उनकी संवेदनशीलता की पराकाष्ठा है मैं यहाँ जरूर बताना चाहूँगी। हमारी सहकर्मी ...डॉ. कृष्णा गुप्ता की असामयिक अचानक मृत्यु हो गयी थी वह सर की पी-एच.डी. की शोधार्थी भी रही थी। उसके अंतिम संस्कार के लिए हमारे विभागीय साथी, कॉलेज के अन्य साथियों के साथ निगमबोध घाट पर उपस्थित थे, सर वहाँ आये अपनी छात्रा के इस अकाल, मृत्यु से वे इतने आहत थे कि हम सभी से बार-बार पूछ रहे थे कि अचानक ऐसा क्या हो गया, क्या बीमारी थी कृष्णा को, और शून्य में ताकते हुए ऐसे बेबस लग रहे थे कि काश! हम लोगों को कारण पता होता, काश उसकी बीमारी पता होती तो ऐसी अनहोनी न होती।

काफी लम्बा दुःख और सुख से भरा समय हमने डॉ. गौतम के साथ बिताया है। हमारी हर बात को ध्यान से सुनना, ऐसा लगता था जैसे सुनते-सुनते ही वे समाधान खोज लेते हैं। वे कभी-भी अपने विचार किसी पर थोपते नहीं थे। ज्यादा सुनना, कम से कम चर्चा करना (किसी की बात को कभी दूसरे के समक्ष कहते समय मैंने उन्हें नहीं सुना।) चाहे मेरे से पहला व्यक्ति उनसे मेरे विषय में कुछ गलत बोल कर गया हो वे अपनी क्रिया या प्रतिक्रिया हमारे समक्ष नहीं रखते थे, जिससे अप्रत्यक्ष रूप से वे हमारे बीच में होने वाले मनमुटाव को, बढ़ने से रोक देते थे।

अपने जीवन में मैं सर का सबसे बड़ा योगदान मानती हूँ—डॉ. राज भारद्वाज (वर्तमान में कॉलेज प्राचार्या) से मेरी मुलाकात होना। उन्हीं के कारण हमारा परिचय परस्पर हुआ। आज अट्ठाईस वर्षों के लम्बे समय से जो हमारा साथ बना हुआ है। वह मेरे जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है और पूँजी है। सामान्य परिचय-दोस्ती में—दोस्ती पारिवारिक सदस्यों के रूप में, कब-कैसे बदलती चली गयी पता ही नहीं चला। (डॉ. राज और डॉ. वीरेन्द्र की आत्मीयता, सम्मान, स्नेह

की पात्र बनकर मुझे बहुत गर्वानुभूति होती है।

सर और मैडम को लेकर इतनी स्मृतियों मन-मस्तिष्क में हिलोरें ले रही कि लग रहा है क्या-क्या कह डालूँ, लेकिन इन सबसे ऊपर सर की छत्रछाया से वंचित होना हावी हो रहा है। सर का स्नेह, उनकी आत्मीयता, घर आये विद्यार्थियों को भी पूरा मान-सम्मान देना आतिथ्य करना यह भुलाये नहीं भूल सकता। ऐसा लगता है ये सब गुण उन्हें विरासत में मिले थे। मुझे इस समय माताजी की स्मृति भी आ रही है। लम्बे अन्तराल के बाद भी जब कभी उनके घर जाते तो एक-एक का नाम लेकर हालचाल पूछना बहुत दिनों बाद आयी हो, अपने पास बैठाना, और कभी-कभी सेविका की अनुपस्थिति में स्वयं पानी लाकर पिलाना, चाहे हम कितना भी मना करते रहें, स्वयं लेने चल दें फिर भी वृद्धावस्था में वे रोकने से नहीं रुकती थीं। अब तो केवल स्मृतियाँ ही शेष हैं, हमारी समस्याओं को ध्यान से सुनने वाले, सभी विद्यार्थियों को समता और ममता की दृष्टि से देखने वाले सर हमारे बीच नहीं है। आज ऐसे गुरु मिलना बहुत मुश्किल है। खैर भगवान से प्रार्थना है कि यामिनी मैडम के आशीर्वाद का हाथ हम पर सदैव बना रहे उनके ज्ञान की गंगा में हम गोते खाते रहें। सर की आत्मा जहाँ भी हो हम सब पर उनका भी अदृश्य साया बना रहे।

सेवानिवृत्त प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, भगिनी निवेदिता कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

"अर्थातुराणां न गुरुर्न बन्धुः
कामा तुराणां न भयं न लज्जा
विद्या तुराणां न सुखं न निद्रा
क्षुधा तुराणां न रुचिर्न वेलाः"

(ऋग्वेद)

कर्तव्यपरायण विराट व्यक्तित्व

संजय कुमार शर्मा

भारतीय साहित्य और संस्कृति में गुरु का विशिष्ट स्थान रहा है। कहा भी गया है कि "गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णु, गुरु देवो महेश्वरा। गुरु साक्षात् पर ब्रह्मा, तस्मै श्री गुरुवे नमः।"

एम. ए. हिन्दी की परीक्षा के बाद पी. एच. डी. के दौरान मेरा शोध कार्य भी "भारतेंदु हरिश्चंद्र" के साहित्य पर केंद्रित था। उसी क्रम में महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय रोहतक के पुस्तकालय में "भारतेन्दु युगीन नाटक संदर्भ सापेक्षता" पुस्तक के माध्यम से मैं उनके साहित्यिक कृतित्व से प्रभावित हुआ। इसी शोध क्रम में मैंने उनके द्वारा रचित, सम्पादित पुस्तकों का अवगाहन किया। नाटकों पर उनका विशेष कार्य रहा है, जिसने पाठकों को प्रभावित किया है।

यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से मैं उनका विद्यार्थी नहीं रहा क्योंकि मेरी पढ़ाई वैश्य महाविद्यालय भिवानी, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय रोहतक से हुई है। लेकिन राम लाल आनन्द महाविद्यालय दिल्ली विश्वविद्यालय में 2002 से मेरी नियुक्ति हुई। उसी समय हमारे विभाग की मेरी वरिष्ठ सहयोगी और माँ स्वरूपा डॉ. सरोज गुप्ता। हमारे ही विभाग में थी। उनके प्रोफेसर रमेश गौतम जी से पारिवारिक सम्बन्ध रहे हैं। मैं हमेशा उनसे गौतम सर के बारे में उनकी प्रशंसा सुनता रहता था। धीरे धीरे मेरे मन में उनसे मिलने की जिज्ञासा जागृत हुई। दिसंबर 2002 में दिल्ली विश्वविद्यालय के शैक्षणिक परिषद के चुनाव में मेरा परिचय मेरे अग्रज अभिन्न मित्र प्रोफेसर अनिल शर्मा से हुआ अनिल जी मुझे विश्वविद्यालयी विषयों के चलते फिरते इनसाइक्लोपीडिया लगे। उन्होंने ही फिर मेरा परिचय प्रोफेसर वीरेन्द्र भारद्वाज जी से करवाया। इस तरह (डॉ. सरोज गुप्ता, प्रोफेसर वीरेन्द्र भारद्वाज और प्रोफेसर अनिल शर्मा) इस त्रिवेणी ने मेरा संगम प्रोफेसर रमेश गौतम जी से कृतित्व में करवाया। मैं उनके साहित्यिक कृतित्व से तो पहले ही प्रभावित था लेकिन उनके साथ मुलाकात हुई तो मैं उनके आत्मीय और अविस्मरणीय व्यक्तित्व से अन्तःकरण तक प्रभावित हुआ। इसी क्रम में मैं धीरे-धीरे माँ स्वरूपा प्रोफेसर यामिनी मैडम से मिला। गौतम सर की स्मृतियों के ख़ज़ाने की संस्मरण रूपी कही अमूल्य विधियाँ मेरे पास और उनके चाहने वालों के पास हैं। आज उनके बारे में लिखते हुए मुझे तुलसीदास जी की पंक्तियाँ याद आती है की—"लघुमति मोर, चरित्र अवगाहा"।

मैं उन जैसे विभूति के बारे में क्या लिखूं? कैसे लिखूँ?

प्रोफेसर गौतम सर के साथ ये आत्मीय सम्बन्ध लगभग दो दशकों से भी पुराने हैं। वे सही मायने में एक आदर्श शिक्षक, कुशल प्रशासक और कर्मठ कर्मयोगी थे। क्योंकि विश्वविद्यालय के एस.ओ. एल. की परीक्षा के दौरान उनके साथ दक्षिण परिसर दिल्ली विश्वविद्यालय में फ्लाइंग नक़ल विरोधी उड़नदस्ता के रूप में कार्य करने का मौक़ा मिला। सर उस समय निदेशक, जीवन पर्यन्त शिक्षण संस्थान दिल्ली विश्वविद्यालय के रूप में कार्य कर रहे थे।

प्रोफेसर गौतम सर के निर्देश पर मुझे वहाँ साउथ कैंपस के संयोजक के रूप में कार्य करने का मौक़ा मिला। उन्होंने मुझे निर्देश दिया कि परीक्षा शुरू होने से लगभग आधा एक घंटा पहले वहाँ पहुँचना होगा और वहाँ परीक्षा शाखा की लैंडलाइन से मुझे मोबाइल पर नियमित रूप से सूचित करना होगा। मुझे शुरू में बड़ा अजीब लगा क्योंकि मैं उन्हें अपने मोबाइल से भी सूचित कर सकता था और ऐसा भी नहीं कि वे किसी भी तरह से मेरी कार्य दक्षता पर संदेह करते हो लेकिन वे हमेशा अतिरिक्त सावधानी रखने वाले थे। ताकि लैंडलाइन का नंबर उनके मोबाइल में डिस्प्ले हो सके और परीक्षा जैसा महत्वपूर्ण कार्य सही और सटीक रूप से सम्पन्न हो सके। उस वर्ष एस.ओ. एल. की परीक्षा में व्यापक स्तर पर महत्वपूर्ण सुधार भी हुए।

प्रोफेसर गौतम सर सही मायने में एक अच्छे शिक्षक के साथ-साथ एक कर्तव्य परायण पुत्र, पति और पिता भी रहे हैं। मैंने उनको और यामिनी मैडम को उनकी माता जी की विशेष सेवा सुश्रुषा करते हुए भी देखा है।

चयन समितियों से हमेशा कोशिश करते थे कि चाहे देर रात्रि ही सही लेकिन हमेशा घर पहुँचे क्योंकि उनको माता जी से विशेष लगाव था। उन्होंने और मैडम ने माता जी की जितनी सेवा की उसे शब्दों में वर्णित नहीं किया जा सकता।

उनकी अनेक यादें मेरे मानस में है हम सबके उनके साथ ढेरो संस्मरण है। कभी मन मानता ही नहीं कि वे हमारे बीच में नहीं है। आत्मा तो अजर अमर है। उनका वरदहस्त हम सब पर हमेशा बना रहेगा।

आज भी माँ स्वरूप यामिनी मैडम उसी दिव्यपुंज के रूप में हमारे जीवन को आलोकित कर रही है। उनका यश रूपी संसार हमेशा आगे बढ़े।

प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, रामलाल आनंद कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

मेरे सहपाठी : रमेश गौतम

सरला चौधरी

दिल्ली विश्वविद्यालय का आदर्श वाक्य- निष्ठा, धृति, सत्य का संगम है जिनमें, जिन्हें याद कर अनायास कवि प्रसाद की ये पंक्तियाँ स्मरण हो उठती हैं-

उसी तपस्वी से लम्बे थे,
देवदारु दो चार खड़े।

कुशल प्रशासक, कर्तव्यनिष्ठ, ईमानदार, गौर वर्ण, स्वर्णिम कांति बिखेरता चेहरा, विलक्षण व्यक्तित्व। मेरा रमेश गौतम के साथ साक्षात्कार 1970 में सहपाठी के रूप में हुआ। 1972 तक उनके साथ मेरा परिचय केवल औपचारिक ही रहा, लेकिन जब मेरी अन्तरंग सखी ज्ञान भण्डार यामिनी के वे विवाह बंधन में बँधे तब मेरी घनिष्ठता उनके साथ बढ़ती चली गयी जो अब तक प्रवाहमान है।

अतीत के झरोखों में अनेक स्मृति मेरे मानस-पटल पर चलचित्र की तरह छा जाती हैं। एक प्रसंग जो मेरे मन-मस्तिष्क पर आज भी तरोताजा है वह है जब मैं अपने विभाग की इंचार्ज थी तो एक छात्रा ने दसवीं कक्षा के आधार पर 'हिन्दी आनर्स' में प्रवेश लेने के लिए आवेदन भरा था। मुझे इस बारे में किसी नियम की जानकारी नहीं थी कि उसे हिन्दी आनर्स में प्रवेश देना चाहिए या नहीं, प्रधानाचार्य ने तो स्पष्ट मना कर दिया किन्तु जब मैंने रमेश जी से जानकारी ली तो उन्होंने बताया कि दाखिला दे सकते हैं - ऐसे थे मेरे सहपाठी, जीते-जागते नियमों के पुलिंदा। इस संदर्भ में हमारी प्रधानाचार्य ने व्यंग्य भी किया कि सारे दाखिले उन्हीं से करवा लो। रमेश के दिल में कभी किसी के प्रति मलाल नहीं रहा, उन्होंने जीवन को पूर्ण अनुशासित और व्यवस्थित तरह से जिया। उनका कृतित्व, व्यवहार आचरण सब कुछ कह देता था। अपने कार्य को पूर्ण निष्ठा और निष्पक्षता के साथ करना उनका स्वभाव रहा।

लिखते-लिखते एक और प्रसंग का उल्लेख अवश्य करना चाहूँगी मुझे हमेशा यामिनी ही फोन करती है लेकिन 7 अगस्त 2020 की घटना है—मेरे पास रमेश गौतम के नाम से फोन आया, मैं चौंक उठी कि आज रमेश ने कैसे फोन कर दिया, कहीं गलती से तो नहीं मिल गया। मैंने फोन उठाया तो रमेश ने मेरा हालचाल पूछा मैंने बिना सोचे समझे कह दिया कि आज तुमने कैसे गलती से फोन कर दिया रमेश ने सहजता से उत्तर दिया कि आज मैं 70 वर्ष का हो गया हूँ मैंने सोचा मैं अपने सभी एम. ए. के सहपाठियों से बात कर लूँ।

विधि का विधान देखिये जाते-जाते सभी से बात की। सच में तुम्हारे लिए कहने के लिए शब्द नहीं मेरे पास। हिन्दी विभाग का वटवृक्ष हैं आप जिसकी शाखाएँ, उपशाखाएँ आज भी आप के रूप में जीवन्त और विकसित हैं।

सेवानिवृत्त ऐसोसिएट प्रोफेसर
मैत्रेयी कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

"न स सखा यो न ददाति सख्ये" (ऋग्वेद)
(वह मित्र ही क्या जो अपने मित्र को सहायता नहीं देता।)

फिर कभी किसी से नहीं कहा...

अर्चना गौड़

बुद्धिजीवी जगत में वैचारिक विश्लेषण और तार्किकता का महत्त्व है। ज्ञानी निरन्तर खोज में रहता है सच्चे खोजी में ज्ञान पिपासा जीवन के अंतिम क्षण तक बनी रहती है किंतु उस से विपरीत भाव जगत में विश्वास रखने वाला श्रद्धा और आस्था की सबूरी में जीता है। गुरु मेरे लिए वैचारिक तार्किकता के साथ-साथ भावनात्मक जगत का सगुन रूप रहे शोध की बारीकियों और अनुसंधान के महत्त्व की समझ सर से पाई। नाट्य संरचना के संजाल के रेशे-रेशे की समझ पैदा करना नाट्य मर्मज्ञ प्रोफेसर रमेश गौतम बखूबी जानते थे। अक्सर कहा करते थे ''नाटक की सार्थकता रंगमंच है।" एक बार बी.ए. में 'चंद्रगुप्त' नाटक की क्लास जब मैं पहली बार ले रही थी तब सर से कुछ टिप्स लेना चाहती थी सर से फ़ोन पर लम्बी बात हुई और सर ने कहा "नाटक पुस्तक का नहीं मंच का विषय है, प्रदर्शन द्वारा नाटक पढ़ाया जाना चाहिए।" मंचीय परिकल्पना का अद्भुत गुण सर के रोम रोम में था। प्रसाद के नाटकों पर लगने वाले आक्षेपों को वह सदा नकारते थे। प्रसाद के नाटकों के प्रति सर का विशिष्ट लगाव था राष्ट्रीय बोध से ओतप्रोत यह नाटक अपनी विलक्षण प्रतिभा के धनी हैं। सर का बौद्धिक चैतन्य स्वरूप एक राष्ट्र की संकल्पना से ओतप्रोत था, सम्भवत : इसीलिए सर प्रसाद के नाटकों के प्रशंसक थे।

मेरा सौभाग्य रहा कि मैंने सर के निर्देशन में ''प्रसाद के नाट्य-गीतों" पर शोध किया। एक एक गीत का नाट्य संरचना से सम्बन्ध और उसकी सृजनात्मकता के नये विकल्पों को सर ने परत दर परत खोलने की ऐसी दृष्टि प्रदान की जिससे मेरी बुद्धि चमत्कृत हो उठी। शोध करते करते कभी कभी शोधार्थी का मस्तिष्क थकान महसूस करता है और वह समझ नहीं पाता कि अब किस दृष्टि और दिशा पर विचार किया जाए? सर के पास पहुँचते ही इन सभी समस्याओं का समाधान चुटकियों में होता था जब मेरे रास्ते चारो तरफ से बोझिल हो जाते थे तब सर शोध की दृष्टि से एक ऐसा स्पार्क देते थे जिससे शोध के ढेरों मार्ग खुल जाते थे और यह दृष्टि एक चुनौती स्वरूप होती थी और वे कहते थे अब इसको इस तरह से देखो और ऐसे करके लाओ, उस चुनौती में दृष्टि और सृष्टि का उत्साह भी होता था। शोध के प्रति चैतन्य बोध की सौंदर्य दृष्टि सर से मिली। मज़े की बात है, आपको जानकर हैरानी होगी अपने शोध के समय पर होने वाले साक्षात्कार में जब मैं बैठी तो मैं गर्भवती थी ऐसी स्थिति में 'प्रोफेसर महेंद्र कुमार जी' ने मुझसे प्रश्न किया था कि दिल्ली विश्वविद्यालय में सीमित सीटों पर आप की ऐसी अवस्था में आप को क्यों चुना जाए? ऐसे में दिल्ली विश्वविद्यालय की एक सीट व्यर्थ भी तो जा सकती है, सम्भवतः बोर्ड मेरे उत्तर से संतुष्ट रहा होगा और मुझे शोधार्थी के रूप में चुना गया होगा। पर मेरे उत्तर का आत्मविश्वास सर के विश्वास से ही उपजा था। उनके विश्वास के बल पर मैं अपनी शोध कार्य को पूर्ण कर सकी। एन. एस. डी. की राह सर के मार्गदर्शन में देखी। नित्य नयी पुस्तकों के विषय में बतलाना, शोध पत्रों को पढ़ना, उस दृष्टि से नाटक को देखना परखना समझना और शोध के नये आयामों को खोलना सर ने बखूबी समझाया। नाटक को जानने समझने व्याख्यायित करने, संवादों की मनोभूमि को समझने, पात्र हृदय की संवेदना तक उतरने, दृश्य विधान के सामर्थ्य और सार्थकता, मंच सज्जा के सौंदर्य को परखने, गीत और संगीत के महत्त्व को नाटक की दृष्टि से जानने का सुअवसर सर के सांनिध्य में मिला।

हाँ, शोध करते समय एक ऐसा घटनाक्रम हुआ जिसने मेरी जीवन को दिशा बदली। हुआ यूँ कि मैं अपने शोधकर्म को तेजरफ्तार दे रही थी उस समय सर विभागाध्यक्ष थे, मुझे सर ने चैप्टर लेकर सुबह 10:00 बजे विभाग में बुलाया था और मैं नियत समय पहुँच भी गयी थी। वहाँ पहुँचकर मैंने देखा सर एक महत्वपूर्ण मीटिंग की तैयारी कर रहे थे, मुझे देखकर बोले ''बेटा 2:00 बजे आना अभी लाइब्रेरी में बैठो मैं तब तुम्हारा चैप्टर देखूंगा।" मैं 2:00 बजे जब पहुँची तब भी सर की मीटिंग चल रही थी और मेरी सर से मुलाकात 5:00 बजे के आसपास हुई। इतनी देर का अन्तराल और इंतज़ार मेरी अपरिपक्व बुद्धि को विचलित कर गया। जैसे ही सर के सामने बैठी एक ही साँस में न जाने कितनी बातें अपनी व्यक्तिगत कठिनाई की कहती चली गयी। सर ने निःशब्द उदारमना से शांतिपूर्वक सब सुना और चुपचाप मुस्कुराते रहे। मेरे चुप होने पर उन्होंने पानी मँगवाया और मुझे पानी पिलाया और एक बात कही "अर्चना अपनी व्यक्तिगत परेशानियों को अपने तक सीमित रखना सीखो।"

यद्यपि यह बात नई नहीं थी रहीम के दोहे को पढ़ते पढ़ाते आ रहे थे–

"रहिमन निज मन की बिथा, मन ही राखो गोय।
सुनि अठिलैहै लोग सब, बाँटि न लैहैं कोय।।"

पर सर ने इस शिक्षा को अपने नपे तुले शब्दों से मेरे जीवन में ऐसा पिरोया कि मेरा जीवन जीने का दृष्टिकोण ही बदल गया। यह बात सन् 2006 की है कॉलेज में ''हिन्दी पत्रकारिता और जनसंचार पाठ्यक्रम" का उद्घाटन समारोह था, जिसका मंच संचालन का कार्यभार मुझ पर था और कार्यक्रम के पहले की तैयारियों में भी मेरी सहभागिता रही थी। कार्यक्रम खत्म होने पर मैंने पब्बी सर (तत्कालीन प्राचार्य राम लाल आनन्द कॉलेज) को बतलाया कि कल से मैं मेडिकल लीव पर हूँ जिसकी सहमति मैं आप से पहले ही ले चुकी हूँ क्योंकि कल मेरी मेजर सर्जरी है और आज रात को ही मुझे हॉस्पिटल में एडमिट होना है। प्राचार्य महोदय को मेरी बात पर विश्वास नहीं हुआ उन्होंने

हैरान होकर कहा आपको तो आज आराम करना चाहिए था तब मैंनें सर की ये दी हुई सीख उनके सामने दोहराई पब्बी सर ने प्रसन्न मुद्रा में कहा था, ''टीचर की पहचान स्टूडेंट से होती है ऑल द बेस्ट फॉर योर सर्जरी'' आज भी बहुत से लोग अक्सर पूछते हैं "अर्चना तुम हमेशा हँसती कैसे रहती हो?" तो मैं सर की यह कही हुई बात उनके साथ पूरे आत्मविश्वास के साथ बाँटती हूँ।

किसी भी बात को कब, कहाँ, कैसे और किससे कहना है यह चाणक्य भाव सर के व्यक्तित्व को और भी उत्कृष्ट बनाता था। सर दो बार विभागाध्यक्ष रहे, कई कॉलेजों के चेयरमैन रहे, रिसर्च कमेटी के प्रमुख सलाहकार रहे, कितनी अकादमियों के प्रमुख रहे आई. ट्रिपल एल. में सर्वोच्च पद पर रहे, लेकिन इन सबके बावजूद उनका हृदय सदैव हिन्दी को समर्पित था। उनकी सोच में हिन्दी की लोकप्रियता के साथ-साथ छात्रों को हिन्दी के माध्यम से रोजगार के नये अवसर मुहिया कैसे हों? ये प्रश्न विचलित करते थे। हिन्दी विश्वविद्यालय में अधिक से अधिक हिन्दी की सुदृढ़ स्थिति एवं नये रूप में हिन्दी की लोकप्रियता को विद्यार्थियों तक लाना सर की प्रगतिमय सोच और विचार का प्रतिफल 'हिन्दी पत्रकारिता एवं जनसंचार पाठ्यक्रम' रहा। सर ने इस पाठ्यक्रम की शुरुआत कई कॉलेजों में की, विद्यार्थियों में इसका आकर्षण और लोकप्रियता आज भी सहज ही देखते बनती है। नाट्य-जगत में नाट्य कला की प्रयोगधर्मिताऔर रचनाधर्मिता के नये आयामों को पृथक पहचान दिलाने में सर का महत्वपूर्ण हाथ रहा। सर की लिखी पुस्तकें आज भी हिन्दी नाट्य जगत में मील का पत्थर है।

सर की नई सोच के कारण कई दिग्गजों से लोहा मोल लेना सर के स्वभाव में नहीं था, इसीलिए सभी को साथ लेकर एक ही मंच पर अपनी बात की स्वीकृति विभाग अध्यक्ष के रूप में सहज ही मनवा लेने की अद्वितीय कला वे बखूबी जानते थे। अपने जीवन में विद्यार्थियों के साथ साथ सहकर्मियों के हृदय में भी अपना विशिष्ट स्थान बनाया था। एक बार सर ने यह मंत्र भी दिया था "बेटा अपने जीवन में सम्बन्धों में कभी भी ऐसी स्थिति ना लाना कि बातचीत बंद हो जाए।" इस सूक्त वाक्य में सांसारिकता के मर्म की पहचान स्वाभाविक होती है। शोध पूरा हुआ और मैं जिस जगह नौकरी कर रही थी वहाँ से मैंने त्यागपत्र दे दिया। त्याग पत्र देने पर मुझसे अधिक चिन्तित मैं नहीं, पितृतुल्य सर को देखा। चिन्तित रहते थे कि दिल्ली यूनिवर्सिटी में नौकरी की सम्भावनाएँ गिनी चुनी है। अक्सर कहते थे तुमने अपनी लगी लगायी नौकरी छोड़ दी और यहाँ बहुत संघर्ष है तो मैं हँस कर कह देती थी सर मेरी चिन्ता मुझ से ज्यादा आपको है, तो मुझे किसी की चिन्ता नहीं है। सौभाग्य से कई कॉलेजों से होते हुए मैंने रामलाल आनन्द कॉलेज में स्थायी नियुक्ति पाई। सर ने उस दिन भी मुझे एक सीख दी कि "कभी भी अपनी क्लास मत छोड़ना, क्लास जरूर लेना, कॉलेज के बाकी सभी काम बाद में"। मेरे अध्यापन जीवन की शुरुआत सर की इस सीख से हुई जिसके फलस्वरूप मेरा और मेरे विद्यार्थियों का सम्बन्ध हमेशा बहुत खूबसूरत रहा।

सर घर के खाने के शौकीन थे हमेशा अपना लंच साथ लेकर चलते थे मैं भी सौभाग्यशाली रही बरसात के मौसम में सर को पकौड़ी और दिवाली पर अन्नकूट का भोग परोसने का सुअवसर मुझे मिला था। अब जब से सर गये हैं मेरे अन्नकूट का प्रसाद भी रुष्ट हो गया है मेरी बेटे के जीवन को भी सर ने आलोकित किया, शिवम की शैक्षणिक चुनौतियों के समय भी सर मार्गदर्शक बने।

सर से वो अंतिम मुलाकात आज भी आँखों के सामने रहती है वह और मैडम दुबई जा रहे थे। करोना का पहला चरण निकल चुका था, शिवम के विवाह का समय था। आज घर में बच्चों का जनेऊ-संस्कार हुआ और सर के पावन कदम मेरे घर में पड़े। उन्होंने बच्चों को आशीर्वाद दिया और बताया कि हम आज ही दुबई जा रहे हैं। मैडम सामान की पैकिंग में बिज़ी हैं। उस दिन भी सर एक बात सिखा गये थे "बेटा अब तुम सास बनने जा रही हो, अपेक्षा कभी मत करना और जितना कर सको जरूर करना बहू को बेटी तुल्य रखना तुम्हें सुखी गृहस्थ जीवन का राज़ बता रहा हूँ।" ये सर की आखिरी सीख थी पर मैं आज भी मौन की गूँज में सर से मार्गदर्शन लेती रहती हूँ। मेरे शैक्षणिक जीवन से अकादमिक जीवन और सुखी गृहस्थ जीवन में, प्रथ-प्रदर्शक गुरु तत्व का प्रभाव स्पष्ट दिखाई और सुनाई पड़ता है।

"ख़ुदाए ख़लक सारी मेरी तस्वी के दाने है।
नज़र में फिरते रहते हैं इबादत होती रहती है।।"

दिल्ली विश्वविद्यालय का कला संकाय, कॉलेज के क्लासरूम, घर की दहलीज सभी मेरे गुरु के दिए हुए मोती के दाने है। इन्हीं में मेरा सर्वस्व है और यही मेरी इबादत है सर के गुरु तत्व ने मेरे जीवन शक्ति को संजीवनी प्रदान की उनके विवेक से बौद्धिक तार्किकता की आज भी मैं धनी हूँ। यामिनी मैडम से जब भी बात होती है वे अक्सर कहती है" अर्चना सर ने तुम्हें जो दिया अब उनके दिये से "अप्प दीपो भवः" का मार्ग चुनो। अपने सर के लिए कहने को, तो सारा जीवन काम है, मात्र कृतज्ञता का भाव शेष है, इस अशेष पर मेरा पूर्ण अधिकार है। सर के व्यक्तिव और कृतित्व को मैं ऐसे परिभाषित करती हूँ—

हिमालय से तटस्थ
कर्मयोगियों से तपस्थ
अनुशासन, संयम से पूर्ण
सूक्तवाक्य संग मितभाषी
ऐसे करती सर को परिभाषित

ज्ञानगंग की निर्मल यात्रा
गुरु शिष्य परम्परित अविरल धारा
वट वृक्ष रूपी सम्बल
कुशल प्रशासन के अनुरागी
ऐसे करती सर को परिभाषित

आकर्षक व्यक्तित्व के स्वामी
रहे जनक सम सांसारिक
अन्तर्मन करुण रस से द्रवित
प्रतिपल बूँद बूँद में संन्यासी
ऐसे करती सर को परिभाषित

प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, राम लाल आनन्द कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

प्रो. रमेश गौतम : जिनकी स्मृतियाँ जीवन का पाथेय हैं और उन जैसा होना मुकम्मल मनुष्यता का होना है

मुन्ना कुमार पांडेय

कोविड महामारी ने वैश्विक स्तर पर मनुष्यता की परीक्षा ली। संसार अपने ही बुने दुनियावी प्रयोगों की बलि चढ़ा था। हम में से कईयों ने अपनों को खोया और एक स्थायी खालीपन हमारे आसपास फैल गया। जिसकी पूर्ति नहीं हो सकती हाँ! यह जरूर हुआ कि व्यक्त के मरहम ने उस ज़ख्म की तासीर काम तो कि पर कुछ ऐसे भी ज़ख्म होते हैं जो नासूर बनकर ता-उम्र टीस देते रहते हैं। प्रोफेसर रमेश गौतम का जाना उनके छात्रों और चाहने वालों के लिए इसी तरह का नासूर है जिसकी टीस जीवन के पाथेय की तरह है। यह संसार का नियम है जो आया है वह जायेगा पर सच यह भी है किसी को भी उसके समय से पहले नहीं जाना चाहिए। पर विधि से कौन जीत पाया है। असल मलाल उनके जाने को लेकर ही तो है। कैफ़ी आजमी ने लिखा है 'रहने को सदा दहर में आता नहीं कोई /तुम जैसे गये ऐसे भी जाता नहीं कोई'।

प्रोफेसर रमेश गौतम सर अब नहीं हैं, उनकी खूबसूरत यादें उनके छात्रों के हिय में हैं, स्मृतियों में हैं और हमेशा रहेंगी। गौतम सर को हिन्दी के आम दिखने वाले शिक्षक के रूप में नहीं याद किया जा सकता। कुछ शिक्षक और कुछ छात्र भी हिन्दी ओढ़ के चलते हैं और जब मैं कह रहा हूँ तो इसको अन्यथा न लिया जाए क्योंकि हिन्दी के शिक्षकों और छात्रों को जिस तरह से माध्यमों में दर्शाया जाता है वह एक किस्म की हीनता का परिचायक होता रहा है पर रमेश गौतम सर एकदम सम्भ्रात, व्यवस्थित ढंग से तैयार होकर विश्वविद्यालय आते थे और नियमित समय पर अपनी कक्षा लेते। अगर यह कहा जाये कि न केवल दिल्ली विश्वविद्यालय बल्कि भारतीय अकादमिक जगत उनके लिए एक बातचीत में आगरा विश्वविद्यालय के एक शिक्षक ने कहा था कि प्रोफेसर गौतम हिन्दी के उन्नति और हिन्दी के सम्मान के लिए जिस तरह से तत्पर रहते हैं वह आश्चर्य में डालता है क्योंकि वह विश्वविद्यालयों में हिन्दी के पक्ष में जिस तरह से तार्किक और व्यस्थित ढंग से खड़े होते वह उनको हिन्दी का गौरव ही सिद्ध करता है। मैं उनके लिए दिल्ली से दो सैकड़ा मील दूर के एक वरिष्ठ प्रोफेसर से यह सुनकर गौरव का अनुभव करने लगा था कि प्रोफेसर रमेश गौतम मेरे शिक्षक हैं। प्रोफेसर रमेश गौतम ने कई तरह के प्रशासनिक कार्यों को सँभाल पर उनकी विशेषता थी कि वह अपने छात्रों और उनकी कक्षा को छोड़कर कोई अन्य काम तब तक नहीं करते थे, जब तक कि कोई ऊपरी आधिकारिक आदेश, सेहत सम्बन्धी दिक्कत अथवा विश्वविद्यालयी, मन्त्रालय का कोई कार्य न हो। विश्वविद्यालय में नाटक पढ़ने-पढ़ाने सम्बन्धी एक संस्कृति के निर्माता के तौर पर उनका योगदान उनके विरोधी भी मानते हैं। हालांकि उनकी एक बड़ी खासियत यह भी थी कि उन्होंने विरोध के स्वरों को भी आज के स्तर तक गिर कर कभी नहीं जताया। आज के तथाकथित 'बड़े प्रोफेसरों' के उलट उन्होंने अपने अकादमिक विरोधियों के बारे में अपने शिक्षक मित्रों और शोध-छात्रों तक से कभी जिक्र तक नहीं करते थे और कभी कोई प्रकरण आया तो बेहद संजीदा तरीके से उससे निकल जाते क्योंकि उनका मानना था कि एक शिक्षक को अपने पद की गरिमा रखनी चाहिए। यह बात उन्होंने ता-उम्र निभाई। वैसे भी किसी सभा में उनका बैठना अथवा किसी संगोष्ठी आदि में बैठकर फिर चले जाना ऐसा होता था गोया अल्ताफुर्रहमान फ़िक्र यज़दानी का शे'र हो जाता था याने 'वो आये बज़्म में इतना तो 'फ़िक्र' ने देखा/ फिर इसके बा'द चरागों में रौशनी न रही'- ये था प्रोफेसर रमेश गौतम के व्यक्तित्व और उनकी उपस्थिति का प्रभाव।

दिल्ली विश्वविद्यालय में उनके पढ़ाए छात्रों की संख्या भी बहुत है जो आज अलग-अलग जगहों पर सफल और सक्रिय प्रोफेसर, प्रशासनिक अधिकारी, राजभाषा अधिकारी, राजनेता, समाज सेवक आदि हैं। यह अकादमिक जगत में उनके कई वरिष्ठों, समकालीनों और कनिष्ठों के लिए ईर्ष्या का विषय भी रहा है पर वह उन शिक्षकों में थे जो अपने छात्रों के सत्य के लिए उनके पक्ष में डटकर खड़े हो जाते थे। जहाँ कई शिक्षक अपने छात्रों से अपने गृहकार्य से लेकर ड्राइवरी और अपने लेख/पुस्तक लिखवाने तक की भूमिका में रहते थे/हैं उनके उलट वह अपने स्टूडेंट को अपने पीछे-पीछे घुमाने से परहेज ही नहीं करते बल्कि अपने आसपास ऐसी किसी भी कोशिश को डाँट-डपटकर खत्म कर देते कि विद्यार्थी हो, जो सेंट्रल लाइब्रेरी और कुछ पढ़ो लिखो। वैसे आम प्रोफेसरों में दशानन-ग्रन्थि आमतौर पर दिख ही जाती है पर गौतम सर में न ऐसी मानसिकता दिखी न वह इस तरह के कोशिशों को बढ़ावा देते थे। अलबत्ता, वह तो अपने समकक्षों को इस लिए झिड़क भी देते थे। यह बात भी उनको दूसरों से अलग बनाती है।

मैंने सर को पहली बार 2002 में रामजस कॉलेज की एक संगोष्ठी में देखा था, जिसे वह मजाक-मजाक में कहते जैसे स्त्रियों का मायका होता है वैसे ही यह रामजस कॉलेज मेरा मायका है। जहाँ तक मुझे याद है वहाँ उन्होंने नाट्यशास्त्र या शायद प्रसाद के नाटक और भारतीय नाट्य परम्परा पर व्याख्यान दिया था। मेरा परिचय एम.ए. में आने

पर हुआ। तब वह विभागाध्यक्ष थे। उनका धीर-गम्भीर व्यक्तित्व उनसे बात करने में हम छात्रों को हिचक होती थी, ऐसा रोबीला व्यक्तित्व, कम और संतुलित बोलने वाले। वह कभी बेवजह चाय के ठियों पर समय खपाने और छात्रों में डींगें मारने वाले शिक्षकों में से न थे। न ही वे दशानन ग्रंथि से ग्रसित थे कि हमेशा आगे पीछे दस छात्र लहराते दिखें। इसे हिन्दी के प्रोफेसरों की अगर उपलब्धि मानी जाती हो तो इस मामले में वह फिट नहीं बैठते थे, न ही इसे पसंद करते थे। मुझे याद है उस साल एम. ए. पहले वर्ष में सर्वोच्च अंक होने की वजह से ऑप्शन के रुप में एक खास विषय चुनने के लिए एक प्रोफेसर ने दबाव डाला तो मैं घबराकर उनके पास पहुँचा। जैसा मैंने कहा उन दिनों प्रोफेसर गौतम विभागाध्यक्ष थे। एक रोज हिचकते हुए मैंने उनसे सब बात कह दी। उन्होंने कहा श्रीमान, आपको जो विकल्प चुनना है वही चुनिये। कोई भी किसी भी छात्र को किसी तरह का दबाव नहीं दे सकता। तब जाकर मैं सहज हुआ और फिर मैंने नाटक विकल्प का चयन किया। फिर एम. फिल में जब सर मेरे शोध निर्देशक हुए तब उनके व्यक्तित्व का एक और पहलू जानने को मिला। वह गम्भीर किंतु छात्रों के लिए सहज, सरल शिक्षक थे, अपने छात्रों को हरदम उपलब्ध और हर सहायता को तत्पर रहने वाले शिक्षक। दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में उनके अत्यधिक सक्रियता के दोनों कार्यकालों में सिलेबस सम्बन्धी सुधारों, सफल प्रशासकीय दक्षता, यूजीसी की वृहद परियोजना इतिहास पुनर्लेखन के सफल संयोजन के लिए भी जाना जाएगा। हिन्दी इतिहास हिन्दी पुनर्लेखन के लिए दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग को प्रोजेक्ट मिला, यह प्रोफेसर रमेश गौतम की योग्यता और नेतृत्व का परिणाम था। मैं उनकी ईमानदार प्रतिबद्धता को याद करूँ तो मुझे याद है, उन्होंने इतिहास पुनर्लेखन पर सबसे पहला नाम प्रो. नामवर सिंह का लिखवाया था, जब किसी ने कहा कि आपने पहला ही नाम नामवर जी का लिखवाया है पर ये तो वैचारिक रूप से आपके नहीं हैं, फिर क्यों? तब उन्होंने हँसकर कहा था—"श्रीमान जी यह परियोजना हिन्दी साहित्येतिहास का पुनर्लेखन है, मेरे व्यक्तिगत विचारों का प्रचार नहीं। प्रो. नामवर सिंह आलोचना की दुनिया के अमिताभ बच्चन है, उनके मुहर और उपस्थिति के बिना आप कैसे सही हो पाएँगे। उनकी साहित्यिक योग्यता और प्रतिबद्धता पर बात कीजिए। मेरा उनका छोड़कर हिन्दी साहित्येतिहास के इस पुनर्लेखन परियोजना को देखना है।"- आज इस तरह का उदार और ईमानदार स्वीकार असम्भव है।

गौतम सर की एक और खासियत थी वह हाथ से ही लिखते थे जबकि तकनीक ने तेजी से उनके समय में दखल दे दी थी फिर भी वह टाइपिंग के बजाय लिखना पसंद करते थे। तकनीकों की बहुत जानकारी नहीं होने के बावजूद उनमें अपने कनिष्ठों, छात्रों तक से आगे बढ़कर समझने की ललक चौंकाती थी। शायद यही वजह थी कि दिल्ली विश्वविद्यालय के लगभग मरणासन्न संस्थान इंस्टिट्यूट ऑफ लाइफ लांग लर्निंग में बतौर निदेशक उन्होंने हिन्दी ही नहीं बल्कि राजनीति विज्ञान, इतिहास, अर्थशास्त्र, अंग्रेजी, भूगोल, गणित, वाणिज्य, विज्ञान इत्यादि बड़े विषयों में विषयगत आवश्यकतानुसार अंग्रेजी और हिन्दी में उत्कृष्ट ई-पाठ बेहद कम समय में न केवल तैयार करवाए बल्कि उनका विषय के विद्वान प्रोफेसर्स से पॉडकास्ट तैयार करवाकर उस संस्थान को छात्रोपयोगी बनवाया। उनमें प्राथमिक तौर पर एक अद्भुत शिक्षक तो था ही साथ ही, एक कुशल और दूरदर्शी प्रशासकीय क्षमता भी रही। उनमें नेतृत्व करने की चमत्कारी क्षमता थी, उनका आसपासस होना हमारे जैसे उनके कई छात्रों के हौसलों का होना था। वह जिस पद पर रहे, जहाँ से जो जिम्मेदारियाँ उनको दी गयीं, उन्होंने उसको समयबद्ध और सुनियोजित ढंग से पूर्ण भी किया। मुझे याद आता है दिल्ली विश्वविद्यालय ने ओपन स्कूल के सेंटर्स के ऑब्जर्वर्स की जिम्मेदारी उन्हें सौंपी और उन तीन सालों में गौतम सर की ईमानदार कार्यशैली ने सेंटर्स में चल रही दलाली के नैक्सस को अच्छा-खासा धक्का लगाया था। वह अपने ऑब्जर्वर्स की शिकायत पर व्यक्तिगत तौर पर त्वरित स्टैंड लेते थे। वह जहाँ रहें उनकी कार्यक्षमता नोटिस की गयी। यह बात तो उनके अन्य विश्वविद्यालयों के भी शिक्षक सहयोगी कहते है जो उनके साथ नेट से लेकर विविध समितियों में रहे हैं। वैचारिक असहमतियाँ अकादमिक जगत की खूबसूरती हैं पर आज की परिपाटी से उलट यह तब मनभेद के रूप में न थी। उनसे असहमति रखने वाले भी उनकी शिक्षकीय दक्षता और प्रशासकीय कौशल की सराहना करते थे। एक बात जो मुझे लगता है वह सबको सीखने की है वह उनका अनुशासन, समय की पाबंदी और सबसे खूबसूरत अपने बच्चों, परिवार को समय देना और संयोजन संकलन का अपने तक के नर्सरी के लेकर अब तक के तमाम प्रमाण-पत्र सुरक्षित और व्यवस्थित ढंग से रखने की सामान्य सी आदत भी विशिष्ट थी। उनके यहाँ बिखराव नहीं था। गौतम सर हमेशा कहते थे कि मन का हो तो ठीक है, न हो तो और भी ठीक। हमेशा मन का ही हो यह शर्त क्यों रखना। जो होता है सब भले के लिए होता है। नाटक, संस्कृतिमूलक अध्ययन और मिथक उनके प्रिय क्षेत्र थे। उनका व्यक्तित्व भी मिथकीय उदात्तता और ऊँचाई लिए हुए था। सच कहा जाए तो प्रो. रमेश गौतम दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के एक करिश्माई व्यक्तित्व का नाम है, जिनसे ईर्ष्या करने वाले बहुत थे लेकिन एक दौर था जब हर कोई उन जैसा बनना चाहता था। उनके जानने वाले हर शख्स ने उनमें एक बेहतर शिक्षक, कुशल प्रशासक, आदर्श मित्र, आदर्श भाई, आदर्श पति और आदर्श पिता पाया। जितना संतुलित जीवन वह जीते थे, वह बहुतों में दुर्लभ है। मैं खुशकिस्मत हूँ कि उनके सेवानिवृति के अंतिम तीन सालों में उनके साथ सबसे अधिक यात्राएँ की और कई अनुभवों का साझी बना। निःसंदेह वह सब उनके अकामदिक जीवन के उतार-चढ़ाव के किस्से रहे। सम्भव है यह बहुत से मेरे वरिष्ठ शिक्षकों और शोधार्थियों तक के पास शायद न हो। इन किस्सों को फिर कभी विस्तार से समेट सकूँगा, कहना मुश्किल है। पर यह भी सच है कि प्रो. रमेश गौतम दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के इतिहास का वह स्वर्णिम पन्ना रहे हैं, जो समय देवता की लाख कोशिशों के बाद भी उसकी चमक कभी फीकी नहीं हो सकती। प्रो. गौतम जैसी शख्सियतें शरीर से प्रयाण कर सकती हैं, विचारों और अपनी अकादमिक उपलब्धियों और योगदान से हरदम

जरूरी और शाश्वत रहेंगी। कुछ शिक्षक अपने विभाग और विश्वविद्यालय का मानी बन जाते हैं, प्रो. गौतम ऐसी ही शख्सियत रहे हैं। एक ऐसी शख्सियत जिनसे द्वेष रखने वाले भी उन-सा होना चाहते थे और सामने आने पर उनसे मुस्कुराकर मिलने के सिवा उन्हें कुछ और सूझता भी न था। रमेश गौतम जैसा भाषा और व्यवहार का संयम, उसकी गरिमा उन्हें दूसरों से अलग बनती थी। वैसे विश्वविद्यालय में यह दृश्य दिनों दिन दुर्लभ हो रहा है कि लोग अपने नापसंद किये जाने वालों से भी बात कर लें। आज वैचारिक मतभेद, मनभेदों में बदल रहे हैं, ऐसे में प्रोफेसर गौतम जैसे शिक्षकों का जाना सदव्यवहार का, एक समृद्ध परंपरा और विरासतों का जाना है, जिसकी क्षतिपूर्ति असम्भव है। कई बार लिखने को मन उद्धत होता है पर लगता है अपने गुरु पर कहाँ से लिखूँ कहाँ से शुरू करूँ, उनके व्यक्तित्व पर लिखने को बहुत है, कलम को और शक्ति चाहिए, पर यह भी करना है यह जिम्मेदारी लगती है ताकि आने वाली पीढ़ियों तक उनकी कथा सुना सकूँ कि शिक्षक, गुरु हो तो ऐसा, बन सकूँ तो ऐसा, वरना क्या खाक शिक्षकीय जीवन है। खासकर, उन तीन वर्षों को मैं सर के सक्रिय अकादमिक जीवन के सार के रूप में देखता हूँ, उस पर फिर कभी पर एक बात दिल्ली विश्वविद्यालय के तथाकथित सक्रिय लोगों के जानने की है कि जिन दिनों दिल्ली विश्वविद्यालय पर तत्कालीन मानव संसाधन मंत्रालय मंत्री ने एक तयशुदा समय में विश्वविद्यालय के ऐक्ट एण्ड ऑर्डिनेंस को हिन्दी में माँग लिया था उसका हिन्दी अनुवाद रात-दिन उसी जीवन पर्यन्त शिक्षण संस्थान में हुआ जहाँ के यशस्वी निदेशक प्रोफेसर रमेश गौतम थे। ऐसा है कोई प्रोफेसर जो विश्वविद्यालय के कार्य के लिए स्वयं जीवन से साठवें दशक से चार पायदान ऊपर की उम्र में उस संस्थान के ऑफिस में ही बैठकर, रात भर जागकर अपनी देख-रेख में समय पर पूर्ण करवाया था। कड़वा सच यह भी है कि जिस मरणासन्न संस्थान का निदेशक उनको बनाया गया था, उस संस्थान को जिस हिमालयी ऊँचाई तक प्रोफेसर गौतम ले गये, उनके जाने के बाद वह उसी मरणासन्न अवस्था को प्राप्त हुआ। सच कहूँ तो वह सैकड़ों ई -पाठ, वीडियो, पॉडकास्ट, एन एम ई प्रोजेक्ट्स सब कहाँ गये, क्यों गये पता नहीं। सम्भवतः बाद के निदेशकों में उस निष्ठा, समर्पण और दूरदर्शिता का अभाव रहा, जो प्रोफेसर गौतम में थी। सेवानिवृति के कुछ वर्षों बाद कोविड की महामारी आयी, सर विदेश में थे, वह कोविड के उतरते असर में इस महामारी के शिकार हुए। ऐसे विराट महामना को ऐसे नहीं जाना था, पर नियति के आगे कौन जीता है! मैंने प्रण लिया था कि उनकी स्मृतियों और आशीर्वाद का पुंज बहुत है, उसे लेकर शोक नहीं मनाउँगा...पर मानव मन ही तो है, एक शून्य भीतर तो बन ही गया है, जिसकी क्षतिपूर्ति किसी और अंक से नहीं हो सकती। प्रोफेसर रमेश गौतम जैसे विराट शख्स अपना कुछ-कुछ हिस्सा अपने लोगों में छोड़ जाते हैं। उनके शिष्यों में उनकी स्मृतियों का सुखद संसार विस्तृत है, वही पाथेय भी। प्रो. गौतम का जाना डॉ. नगेंद्र की परंपरा का जाना है, दिल्ली विश्वविद्यालय के इतिहास के एक गौरवशाली और स्वर्णिम अकादमिक अध्याय का खत्म होना है। उनकी स्मृतियों का सँजोया पल इतना है कि जो बात साहिर ने नेहरू के लिए लिखी थी वह मेरे हिमालय जैसी उन्नत ऊँचाई और धवल चित्त वाले गुरु पर भी एकदम सटीक बैठती है कि “जिस्म की मौत कोई मौत नहीं होती है/ जिस्म मिट जाने से इंसान नहीं मर जाते”- सच है, प्रोफेसर गौतम जैसे गुरु कहीं नहीं जाते वह अपने छात्रों में एक स्थायी सार्थक उपस्थिति की तरह हमेशा के लिए दर्ज़ हो जाते हैं। काश! उन जैसा व्यवस्थित, अनुशासनबद्ध, अध्ययनशील, कर्तव्यनिष्ठ जीवन ओढ़ सके तो इस जीवन की सार्थकता हो। गुरुश्रेष्ठ की स्मृतियों को सादर नमन। तमाम तर्कों और बातों के बावजूद सच तो यही है कि “जब कोई अपना विदा होता है संसार से हमारा कुछ अंश भी उसके साथ विदा हो जाता है” (जसवीर त्यागी)।

एसोसिएट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, सत्यवती कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

यादों के आईने से

मधु कौशिक

09 जून, 2021 की सुबह 11:31 पर मेरे लिए सर के लिखे हुए शब्द बरबस ही आँखों के सामने आते हैं—"मधु को पदोन्नति की बधाई, बच्चों का उन्नयन देख कर हार्दिक प्रसन्नता होती है। मेरी शुभकामनाएँ हैं मधु के लिए और उन्नति के दरवाज़ें खुलें, अध्यापन के साथ अध्ययन भी जारी रखो, बधाई।" न जाने कितनी बार इसे पढ़ती हूँ, फिर पढ़ती हूँ, फिर... फिर न जाने कितनी बार फिर...और वो 09 जून की सुबह भी याद आती है जब सर से मेरी बात हुई। अपनी पदोन्नति की खबर जब सर (प्रो॰ रमेश गौतम) को सुनाई तो उनकी आवाज़ में जहाँ खुशी सुनाई पड़ती थी वहीं उनकी बातों में संतुष्टि का भाव भी दीख पड़ता था। ऐसा इसलिए कह रही हूँ कि सर ने अपने विद्यार्थियों को कभी भी केवल विद्यार्थी नहीं माना बल्कि अपना बच्चा ही माना। प्यार, दुलार, सम्मान देना उनके व्यक्तित्व का अभिन्न हिस्सा रहा। जब कभी सर के यहाँ जाना हुआ तो मुझे हमेशा लगा ये मेरा अपना घर है। मेरे जीवनसाथी शेखर कौशिक जी को इतना सम्मान मिलता कि मैं स्वयं भी देख हैरान रह जाती। सर इन्हें 'कौशिक जी' कहकर सम्बोधित करते। फिर न जाने कितनी बातें होती रहती। वक्त का पता ही नहीं चलता। आज वो जगह खाली है। उसे भरने की क्षमता शायद किसी में नहीं। मैम (प्रो॰ यामिनी गौतम) शायद उस जगह को हमारे लिए भर सकती हैं परन्तु उनके लिए कौन है जो इस जगह को भरेगा। ये वो है जो रीता तो हुआ लेकिन इसे भरने की ताकत किसी में नहीं।

सर के बारे में कुछ कहने या बताने के लिए मुझे अपनी स्मृतियों में झाँकना नहीं पड़ता बल्कि वे साकार रूप लिए मेरे सामने ही रहती हैं। पहली बार सर से मेरी मुलाक़ात सन 1989 में मैम (प्रो॰ यामिनी गौतम) ने ही करवाई। मैम मैत्रेयी कॉलेज में पढ़ाती थीं और मैं उनकी विद्यार्थी। मैम को सर कॉलेज छोड़ने आये थे। किस्मत से मैं भी पार्किंग एरिया में ही खड़ी थी। जब मैम कार से उतरी। मुझे देखते ही मैम ने कहा बेटा, ये तुम्हारे सर हैं और मेरा परिचय भी करवाया। सर को नमस्ते की। इस सदी का महानायक बेशक दुनिया अमिताभ बच्चन को कहे परन्तु मुझे पहली बार में ही सर की छवि एक महानायक की ही दिखाई दी। बहुत बार सर से पार्किंग एरिया में अभिवादन हुआ लेकिन असली मुलाक़ात तब हुई जब हमने 'चन्द्रगुप्त' नाटक के कुछ अंशों का अभिनय कॉलेज में किया और सर को जज के रूप में मैत्रेयी कॉलेज बुलाया। सर ने हमारी प्रस्तुति के पश्चात नाटक और रंगमंच के कुछ किस्से सुनाये और जयशंकर प्रसाद के नाम में 'प्रसाद' नाम कब और कैसे जुड़ा? यह भी बताया। साथ ही 'चन्द्रगुप्त' नाटक को कई बार पढ़ने की सलाह भी दी। सर का वक्तव्य इतना रोमांचक था कि नाटक और रंगमंच में मन रमने लगा। अभी तक एक्टिंग केवल बाल सुलभ चेष्टाओं के तहत किसी की नकल उतारने तक ही सीमित थी, उसकी गम्भीरता को समझाने का श्रेय सर को ही जाता है।

वैसे तो हम पाँच बहनें हैं। मैं और मेरी दो छोटी बहनें भी सर और मैम से ही पढ़ें हैं। एम॰ ए॰, बी॰एड॰ करने के बाद विवाह और फिर बेटी के जन्म लेने पर भी मेरी इच्छा पढ़ने की होती। कुछ साल बाद जब मैं अपनी छोटी बहन का एड्मिशन मैत्रेयी कॉलेज में करवाने के लिए गयी तो मैम से मुलाक़ात हुई। वही प्यार, ममत्व देख मैं हैरान थी। उसी रोज़ मैम से पढ़ाई और भविष्य को लेकर लम्बी बात हुई। फिर क्या था? मैम ने मुझे आगे बढ़ने की दिशा दिखायी और सर ने उस दिशा में मेरे बिना कुछ कहे ही मार्ग बना दिया। अपने बच्चों के मन को पढ़ना सर भली-भांति जानते थे। सर के विषय में विश्वविद्यालय में प्रसिद्ध था कि वे यारों के यार हैं। बच्चों के बीच में वो इसलिए अधिक पॉपुलर थे कि किसी भी इंटरव्यू में यदि सर होते, तो सभी का मनोबल बढ़ाते। किसी को भी नीचा दिखाना उनका स्वभाव नहीं था। एक प्रश्न नहीं आता तो दूसरा पूछ लेते लेकिन मनोबल न गिरने देते। यही बात उन्हें औरों से अलग करती थी।

लगभग 36 साल हो गये सर और मैम से मिले। जहाँ मैम ने मेरा हाथ थामें रखा वहीं सर की छत्र-छाया भी मुझे मिली। आज भी जीवन की कुछ घटनाएँ ऐसी हैं जिन्हें हम जब तब अपने बच्चों को सुना कर बताते हैं कि एक गुरु कैसा होना चाहिए। गुरु, कुम्हार की भांति होना चाहिए जो भीतर से सहारा दे और बाहर से चोट मारे। एक ऐसा ही किस्सा मुझे याद आता है जब मैं एम॰ फिल॰ कर रही थी, तब अपना शोध कार्य सर को दिखाने गयी। लघु शोध को जमा करवाने में 3-4 दिन ही शेष थे। सर ने जब शोध कार्य देखा तो अंतिम अध्याय को सुधारने और परिवर्तित करने को कहा। इतने कम समय में पूरा अध्याय लिखना, उसे टाइप करवाना, प्रूफ करना, सब कुछ आँखों के सामने घूमने लगा। चुनौती बड़ी थी। आँखें भी नम हो गयी थीं। कैसे होगा? समझ नहीं आ रहा था। लेकिन सर शायद जानते थे कि सब हो जायेगा। अपने बच्चों की क्षमता का मूल्यांकन सर इसी तरह करते थे। चुनौती और संघर्षों में आगे कैसे बढ़ना है? इसका पाठ सर ने ही पढ़ाया, जिसे आज तक सर का हर विद्यार्थी अपने जीवन में अपनाये हुए हैं।

जब दिल्ली विश्वविद्यालय में पीएच॰डी॰ में प्रवेश लिया तो सर ने ही अनिल भैया से परिचय करवाया। परिवार में रिश्तों के क्या मायने होते हैं? भैया इस बात को बखूबी जानते हैं और रिश्ते निभाते भी हैं। भैया हर समय मदद के लिए तैयार रहते। पीएच॰ डी॰ में प्रवेश के बाद एक निश्चिंतता-सी आ गयी थी। इसलिए छह माह तक ज्यादा

कोई काम नहीं किया। तभी अचानक से विभाग से एक पत्र प्राप्त हुआ और अब तक के कार्य के विषय में पूछा गया था। सर विभागाध्यक्ष थे उनके सामने पेशी हुई और अच्छा ख़ासा लेक्चर भी सर ने दिया और चेतावनी भी दी कि समय पर काम नहीं होगा तो प्रवेश रद्द भी हो सकता है। इसी से मन में भय पैदा हुआ कि इतनी मुश्किलों से यहाँ तक का सफ़र तय किया है कहीं पढ़ाई में फिर से अन्तराल न आ जाये। सर के शब्द कानों में गूँज रहे थे—"समय पर काम. ....नहीं तो प्रवेश रद्द ....." फिर क्या था, मन में दृढ़ निश्चय कर लिया कि पीएच॰ डी॰ तो समय में ही पूरा करूँगी। काम समय पर हुआ। मन में संतोष था और सर का पुनः ख़्याल आया कि सर उस समय चुनौती और चेतावनी न देते तो शायद मेरा काम समय पर नहीं हो सकता था। अपने विद्यार्थियों को गढ़ने का और खोट को पूरी तरह से निकाल देने की क्षमता सर में ही थी। बाहर से यदि चोट भी की तो भीतर से हमेशा सहारा देते रहे। मेरी पहली नौकरी से लेकर मैं आज जहाँ भी हूँ वह सम्भव न होता यदि सर न होते। न जाने कितने लोगों के ठंडे और रूठे हुए जीवन में ऊष्मा और खुशी दी होगी सर ने, इसकी गिनती मैं नहीं कर सकती। केवल दिया और वो भी निस्वार्थ। कभी कुछ नहीं चाहा।

अपने बच्चों की उन्नति में खुशी तलाशने वाले मेरे सर जिनमें कभी पिता दिखाई दिये तो कभी गुरु। सूर्य की पहली किरण भी वही दिखाई दिये जो अपनी रोशनी से सबको सराबोर कर देती है। वैसे तो ज़िंदगी सभी की चलती है परन्तु यदि कुछ चमत्कारिक होने लगे तो समझो ईश कृपा तुम पर है। ऐसी ईश कृपा मुझ पर औरों से अधिक रही है। ऐसा इसलिए कह रही हूँ कि एक तो मेरी मैम (प्रो. यामिनी गौतम), जिन्होंने मेरा हाथ हमेशा थामा, दूसरा सर से मिलाने में भी मैम का ही योगदान रहा। मैं सर के सभी विद्यार्थियों में से स्वयं को सबसे अधिक सौभाग्यशाली मानती हूँ कि मुझे मैम और सर दोनों से ही न केवल पढ़ने का मौका मिला बल्कि दोनों का ही भरपूर स्नेह, प्यार और आशीर्वाद मिला। साथ ही ज्ञान की जिस गंगा में गोते लगाने के लिए लोग न जाने कितना भटकते फिरते हैं वो भटकाव मुझे कभी नहीं हुआ। अमृत की खान मेरे सर और मैम मुझे इसी जन्म में मिले, कैसे? फिर सोचती हूँ मेरे किसी जन्म की तपस्या का प्रतिफल तो नहीं है, ये सब। यादों के इस आईने में देख फिर स्वयं पर इठलाती हूँ।

प्रोफ़ेसर
हिन्दी विभाग, रामानुजन महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

जो लक्ष्य बेध से चूक गया,
सन्धान सफल सन्धान नहीं।
पहचान न पाये निज को ही,
पहचान सफल पहचान नहीं॥

(जगदीश चन्द्र 'सम्राट')

स्मृति के झरोखे से...

नीलम राठी

आज प्रातः से ही मन बेचैन है। यूँ देखा जाए तो प्रत्यक्ष तो कोई कारण समझ नहीं आता। लेकिन मन व्यथित है। रह-रह कर पूज्य गुरुवर प्रो रमेश गौतम जी स्मृति पटल पर बार बार उभर रहे हैं। उनका अक्स बड़ा होता जा रहा है। उनके विषय में सोचती हूँ तो विषमय होता है। केवल मैं ही तो उनकी विद्यार्थी नहीं थी। उनके विद्यार्थियों की संख्या बहुत अधिक थी, कुछ जिन्होंने स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर तक उनके साथ पढ़ाई की, कुछ हम जैसे जिन्होंने एमफिल, पीएचडी का शोधकार्य उनके साथ किया। कुछ ऐसे भी थे जिन्होंने न अध्ययन और न शोध उनके अधीन किया बल्कि जो सिर्फ उनके पास मार्गदर्शन के लिए आते थे। लेकिन मुझ सहित सभी उनके लिए एक से प्रिय रहे। हिन्दी नाट्यालोचना के क्षेत्र में कई दशक तक उनका बोलबाला था। वे नाट्यालोचना के कालजयी हस्ताक्षर थे। मुझ जैसे छात्रों की एक पूरी की पूरी पीढ़ी है, जिसके लिए वे जीवन्त संस्था थे। न जाने कितने लोगों ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष उनसे मार्गदर्शन लिया है।

सर पर कुछ भी लिखना मेरे लिए बेहद कठिन काम है। क्योंकि अतिशय भावुकता केन्द्र में आ जाती है। कलम साथ छोड़ देती है। उनसे जुड़ी घटनाएँ एक के बाद एक मानस पटल पर उभरती रहती हैं। आसान नहीं है उन स्मृतियों से जूझना। मन कहता है उनकी खूब प्रशंसा करूँ पर उन्हीं ने सिखाया है ध्यान रखो अतिशय प्रशंसा स्तुतिगान में न बदल जाये। उनके साथ सैकड़ों छात्रों ने शोध किया है। उनके पढ़ाये छात्र दिल्ली विश्वविद्यालय के लगभग सभी कॉलेजों में और देश-विदेश के अनेक विश्वविद्यालयों में अध्यापन कर रहें हैं। आभार, स्नेह और कृतज्ञता के सारे उपमान उनके व्यक्तित्व के समक्ष फीके हैं। कौन सी घटना का जिक्र यहाँ करूँ, मेरे जीवन में तो गुरु जी कबीर के दोहों के रूप में ही आये हैं। "गुरु गोविंद दोऊ खड़े काके लागू पाये बलिहारी गुरु आपने जिन गोविंद दियो मिलाये। गोविंद मिलाने से मेरा तात्पर्य मार्गदर्शन से है। पाय लागू से मुझे याद आया गुरुजी ने हमे कभी पैर नहीं छूने दिए। उनका स्पष्ट मत था बेटियाँ कभी पैर नहीं छूती। इस पैर न छूने की ऐसी आदत पड़ी और हम स्वाभिमानी ऐसे हुए की एकेडमिक जगत में फिर हमने कभी किसी के पैर नहीं छूए। ऐसी ही एक घटना घटी दीपावली पर। हम दोनों बहनें मिठाई लेकर सर के घर पहुँच गये। सर ने मिठाई लेने से इनकार कर दिया। हमें तो बेहद अपमान लगा और हमारा तो रोना ही छूट गया लेकिन सर ने हमें समझाया और कहा तुम बच्चों की तरह खाली हाथ आओ और यहाँ यामिनी जी तुम बच्चों को मिठाई खिलाएँगी। तब से आजतक मैं कभी किसी के घर दीपावली पर मिष्ठान वितरण के लिए नहीं जाती सिर्फ अपनी ननदों को छोड़कर। दीपावली से कई दिन पहले ही ट्रेफिक में भीड़ से बचने के लिए घर से ही नहीं निकलती।

गुरुजी हम सब छात्रों के लिए प्रकाश स्तम्भ हैं। हैं इसलिए क्योंकि अपने जीवन काल में तो उन्होंने मार्गदर्शन प्रदान किया ही अपितु जाने के बाद आज भी सर के विचार हमें दिशा बोध कराते हैं। भारतीय ज्ञान परम्परा को समकालीन हिन्दी नाट्य आलोचना के वैचारिक परिप्रेक्ष्य के रूप में उन्होंने स्थान दिया और सामान्य और उच्च अध्ययन कोटि के पाठकों को भी परिचित कराया। यह काम उन्होंने अपने लेखन, वक्तव्य द्वारा भी किया और अध्यापन द्वारा एक शिक्षक के रूप में भी किया। प्रशासकीय व्यासताओं के बाद भी सर ने कभी क्लास नहीं छोड़ी। मै बीए फाइनल से काव्यशास्त्र को वैकल्पिक विषय के रूप में एम ए में पढ़ना चाहती थी और काव्य शास्त्र विषय लेकर ही शोध करना चाहती थी लेकिन सर की अध्यापन कला का ही प्रभाव था कि मैंने एम ए में नाटक और रंगमंच को वैकल्पिक विषय के रूप में पढ़ा और एम फिल और पी एच डी दोनो में ही नाटक को अपने अध्ययन और शोध का विषय बनाया। सर में सम्भावनाओं को पहचानने की अद्भुत क्षमता थी। उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय के स्नातक स्तर से एम.फिल तक के हिन्दी के सभी पाठ्यक्रमों के साथ साथ यूजीसी नेट जैसी प्रतियोगिता का पाठ्यक्रम भी तैयार किया था। उनके प्रयासों का ही नतीजा था कि हिन्दी से इतर क्षेत्र के छात्रों को उन्होंने एल एल सी लेंगवेज लिटरेचर और कल्चर (भाषा, साहित्य और संस्कृति) के पेपर में सम्पूर्ण भारतीय भाषाओं के साहित्य की प्रतिनिधि रचनाओं से परिचित कराया, उनके अनूदित अंश पाठ्यक्रम में लगवाकर। जिससे छात्र समस्त भारतीय साहित्य से न केवल परिचित हो सकें अपितु जुड़ाव भी अनुभव कर सकें। अपने अध्यक्षीय कार्यकाल में हिन्दी के पाठ्यक्रम को रोजगारपरक बनाना भी उनका उद्देश्य रहा था। वे समय के साथ चलते और अपने छात्रों को भी चलने की प्रेरणा प्रदान करते थे। यही कारण था कि हिन्दी के क्षेत्र का विस्तार करते हुए उन्होंने उसे समस्त भारतीय भाषाओं से जोड़ दिया था। उनके कारण पंजाबी, तमिल, कन्नड़, मराठी, गुजराती, मलयालम के रचनाकार हिन्दी पाठकों के समीप आये और उन्होंने उनकी रचनाएँ पढ़ी।

गुरुजी को मैंने सदैव काम करते हुए देखा। वे कृष्ण की भांति कर्मयोग में विश्वास रखते थे। और यही सीख भी उन्होंने अपने छात्रों को दी थी। मुझे आज भी स्मृति में गुरुजी की वो बाते कौंधती हैं। बात उस समय की है जब अगले दिन सुबह मुझे अदिति महाविद्यालय में ज्वाइन करना था। तब सर ने मुझे गुरुमंत्र देते हुए कहा था- परिश्रम का कोई विकल्प नहीं है यदि सही दिशा में किया जाये। कोई भी व्यक्ति आपको किसी भी स्थान के दरवाजे तक ही पहुँचा सकता है।

अन्दर जाकर अपने कार्य से आपको अपनी जगह स्वयं बनानी पड़ती है। इसलिए संस्थान और छात्रों के प्रति ईमानदार रहना और प्रसन्न रहना। यही ईमानदारी सर ने अपने छात्रों के प्रति बनायी और निबाही। छात्रों के लिए सर की उपस्थिति 'प्रेरक तत्व' का कार्य करती थी। किसी गोष्ठी या सेमिनार में उनकी उपस्थिति मात्र से एक वैचारिक माहौल बन जाता था। उनकी सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अवधारणा पर बात करनी हो अथवा नाटकों में पुरा प्रतीकों पर चिन्तन करना हो। इसी तरह नाटकों में मिथकीय प्रयोगों का सांस्कृतिक सुदृढीकरण के लिए किस प्रकार उपयोग हुआ हैं, उनके चिन्तन के केन्द्र में था। अपनी पुस्तकों में इन बहसों को उन्होंने विस्तार दिया है।

जब मैं विश्वविद्यालय जाती थी वे चेहरा देखकर ही समझ जाते थे नीलम परेशान है। मेरे वैवाहिक जीवन में तनाव उत्पन्न होने पर उन्होंने यामिनी मैडम की सखी के पति को बोलकर मेरी सहायता की थी। मैं आज भी सोचती हूँ कि सर अपने छात्रों के जीवन को सँवारने के लिए व्यक्तिगत रूप से भी कितना प्रयास करते थे। उनका अपने छात्रों से गुरु शिष्य वाला रिश्ता था शिक्षक और छात्र वाला नहीं। सर का ओरा राजनीति और शिक्षक के समन्वित रूप से बनता है। जो उनकी अजेय शक्ति का प्रमाण है। वाइस चांसलर हो या विभाग के अध्यक्ष सभी उनके परामर्श को मानते थे।

छात्र मण्डल अभी भी उनसे संवाद चाहता है। कोरोना लोकडाउन में जिस तरह वे इस इहलोक से चले गये वह पूर्णतः अविश्वसनीय है। आज भी इस बात का पछतावा है कि मैं सर के अंतिम दर्शन भी नहीं कर पायी। सर इस तरह भी कोई जाता है क्या? आपके जाने से हम छात्रों की दुनिया गुरु विहीन हो गयी है।

प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, अदिति महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

कूलस्थ पुरुष निश्चन्त सतत्,
सरिता चाहे जिस ढंग बहे।
दीपक अजस्र इक रस जलता,
मण्डप में कुछ रस रंग रहे।

(जगदीश चन्द्र 'सम्राट')

गुरु की महिमा अनन्त है : प्रो. रमेश गौतम

ज्योति शर्मा

ये वर्ष 2002 की बात है जब मैंने पहली बार प्रोफेसर रमेश गौतम जी को दिल्ली विश्वविद्यालय के कला संकाय में देखा। हंसराज महाविद्यालय से बी.ए. हिन्दी विशेष का अन्तिम वर्ष था तो साथियों के कहने पर कला संकाय स्थित हिन्दी-विभाग देखने चले आए। कला संकाय की पुरानी इमारत, नीरसता और जैसे एक बेगाने से माहौल में मेरा मन उचाट हो उठा। मैंने कहा मुझे यहाँ से एम.ए. नहीं करना है। कोई अन्य कोर्स कर लेंगे पर यहाँ तो बहुत नीरस सा वातावरण है यहाँ नहीं आना। इतने में मेरी एक सीनियर साथी जो हमें यहाँ लायी थीं उसने कहा चलो तुम्हें यहाँ की क्लास दिखाती हूँ। हम क्लास में घुस गये। कमरा नं.- 66 था शायद! पूरी भरी हुई क्लास में हम पीछे बैठ गये। सर आये और लेक्चर शुरू हो गया। कक्षा में पीछे बैठी मैं सर को देख रही थी नाम नहीं पता था, लेकिन डील डौल बिल्कुल अमिताभ बच्चन जैसा। आँखों में चमक और उत्साह, बातों में ओज और तेज तथा पाठ्य सामग्री को सहज ही अपने समाज से जोड़ने की उनकी कला ने मुझे बहुत प्रभावित किया। बी.ए. समाप्त हो गयी और तमाम दूसरी जगहों पर प्रवेश परीक्षाएँ दीं जो क्लियर भी हो गयीं लेकिन मेरे पिताजी के विचार से उच्च शिक्षा की ओर बढ़ना चाहिए ऐसा सोचकर एम.ए. में प्रवेश प्राप्त हुआ। अब सर की कक्षाओं में औपचारिक विद्यार्थी बन गयी। सर के पढ़ाने के तरीके ने इतना प्रभावित किया कि कला संकाय में उनकी कक्षाएँ लेने के साथ-साथ नॉन कॉलेजिएट का लेक्चर लेने दौलत राम कॉलेज भी अक्सर जाया करती थी और वहाँ डॉ. यामिनी गौतम मैम और प्रो. रमेश गौतम सर दोनों की कक्षाएँ लेती। कक्षा के बाद दोनों को साथ गाड़ी की ओर जाते हुए देखती। मैम और सर दोनों उच्च शिक्षा में मेरी दिलचस्पी के आधार बन चुके थे। दोनों की वाणी, ज्ञान और उपस्थिति से उत्पन्न संयुक्त सकारात्मक ऊर्जा मेरे व मेरे जैसे अनेक विद्यार्थियों के भीतर एक अलग आनन्द व ऊर्जा का संचार कर रहे थे।

एम.फिल. परीक्षा के उपरांत जब सर शोध निर्देशक के रूप में मिले तब उन्हें और निकट से जानने का सुअवसर मिला। कार्य के प्रति पूरी ईमानदारी, निष्ठा और समय की प्रतिबद्धता मैंने सर से सीखी। अपने आसपास की हर छोटी इकाई और व्यक्ति के प्रति भी पूरे आदर और सम्मान का भाव सर रखते थे। मुझे आज भी याद है कि एम. फिल. के दौरान विभाग के कार्यालय में वरिष्ठ बग्गा जी जब सभी विद्यार्थियों को डाँट रहे थे तो सर अपने अध्यक्षीय कमरे से निकले और बग्गा जी से कहा कि इन विद्यार्थियों के कारण ही यह कार्यालय है और कार्यालय में आपकी आवश्यकता है। अतः इसका सम्मान करना सीखें। तब शायद बग्गा जी को भी सर की डाँट कठोर लगी हो पर आज तक वे स्वयं को सर के ऋणी समझते हैं और कहते हैं कि हिन्दी विभाग में अपने कार्यकाल के दौरान प्रोफेसर गौतम जी से मैंने जितना सीखा उतना शायद किसी से नहीं सीखा।

किसी भी काम को करीने से करना, निर्धारित समय सीमा के भीतर करना पूरी प्रतिबद्धता और निष्ठा के साथ करना। ये सर के व्यक्तित्व की अभिन्न और सहज विशेषताएँ रहीं। प्रोफेसर रमेश गौतम जी जैसे धीर-गम्भीर, महान चरित्र वाले, अपने विषय के विशेषज्ञ, ममत्व से युक्त, सकारात्मक दृष्टि सम्पन्न गुरुवर को अपने शोध निर्देशक और मेंटर के रूप में पाकर स्वयं को सौभाग्यशाली और गौरवान्वित महसूस करती हूँ। गुरुवर रूप में प्रोफेसर गौतम का मिलना, उनका स्नेहाशीष और ज्ञान की जो अनमोल धरोहर उन्होने दी यही कहूँगी कि—

गुरु समान दाता नहीं, याचक शिष्य समान।
तीन लोक की सम्पदा, सो गुरु दीन्हीं दान।।

(कबीर)

मेरे जीवन में जो भी शुभ है, सुन्दर है सबका श्रेय मेरे श्रद्धेय गुरुवर प्रोफेसर रमेश गौतम जी को है। आज भी देश और दुनियाभर में सर के विद्यार्थी विविध विश्वविद्यालयों में पढ़ा रहे हैं। कहीं भी खड़ी होकर जब कहती हूँ कि मैं प्रोफेसर रमेश गौतम जी की विद्यार्थी हूँ तो लोगों की आँखें मेरे प्रति गर्व, विश्वास और सम्मान से चमक उठती हैं। ये चमक सर द्वारा कमाये सुकर्मों की है, जिनका भागी उन्होंने अपने से जोड़कर अपने सभी विद्यार्थियों को बनाया—

"मेरे सतगुरु दीन्हीं नाम जड़ी
काटे से कटत नाहीं, जारे से जरत नाहीं,
निसदिन रहत हरी।" (कबीर)

पीएच. डी. शोध के समय का एक और प्रसंग याद आता है। सर के शोध निर्देशन में जिस वर्ष शोधरत थी उसी कालखण्ड में दक्षिण कोरिया से एक छात्रा जो विशेष छात्रवृति अर्जित कर भारत आयी थी वह भी प्रोफेसर गौतम के शोध निर्देशन में शोधार्थी थी। नाम है—किम योङ् जङ्। वर्तमान समय में प्रोफेसर किम योङ् जङ् सिओल स्थित हांकुक विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य कर रही हैं। मुझे याद है कि पीएच. डी. प्रवेश से पहले एम. फिल. में दो वर्ष बिता चुकी किम पीएच. डी. प्रवेश के समय बहुत सतर्क भी थी, थकी भी थी और अपनी छात्रवृत्ति जारी रखने के लिए उच्च शिक्षा की ओर बढ़ना उसके ऊपर जैसे एक दबाव भी था। दूर देश और भिन्न संस्कृति से भारत आयी किम के लिए कई चुनौतियाँ जिनमें- मौसम, भाषा, व्यवहार सामने खड़े थे। बहरहाल उसे पीएच.डी. शोध निर्देशक के रूप में प्रोफेसर गौतम मिले। असल में तो उसका सर से बहुत संवाद नहीं था, किन्तु जैसे-जैसे शोध का समय बढ़ता गया आदरणीय गौतम

सर से मिले सकारात्मक व्यवहार, प्रोत्साहन, सहज वातावरण ने उसकी तमाम निराशाओं को आशा में बदल दिया। किम ने अपने पीएच. डी. शोध ग्रन्थ की भूमिका में भी लिखा है कि यदि प्रोफेसर गौतम मुझे शोधनिर्देशक के रूप में न मिले होते तो कड़ी मेहनत से कमाई हुई छत्रवृति के बावजूद मैं भारत में विद्यावाचस्पति की उपाधि पाने का जो स्वर्णिम स्वप्न लेकर आयी थी, वह कभी पूरा नहीं होता। एक अभिभावक की भाँति सर ने किम की समस्याओं को भाँपकर उनके समाधान दिये। एक विदेशी शोध छात्रा के शोध को गति देने के लिए सदैव उसे प्रोत्साहित किया। प्रोफेसर रमेश गौतम जी के स्नेह, समर्थन, व्यक्तित्व की गरिमा, मानवीयता, विषय की विशेषज्ञता से प्रभावित हुई प्रो. किम की कृतज्ञता आज भी सर को समर्पित है। आज भी अक्सर सर को याद करते हुए कई बार घंटों फोन पर बातें करती है और मानती है कि प्रोफेसर गौतम जी से पाए ज्ञान और मूल्यों के कारण ही आज वह दक्षिण कोरिया स्थित अपने विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के पद को प्राप्त कर पायी है।

आदरणीय प्रोफेसर रमेश गौतम सर स्मृति विशेषांक में यह लेख लिखते हुए यादों के दरीचे से कितने ही दृश्य एक साथ आँखों के सामने खुल गये हैं। भावनाओं के कितने ही सोते एक साथ बह उठे हैं। सबको एक लेख में समेट पाना कठिन है। प्रोफेसर रमेश गौतम सर जैसे महान व्यक्तित्व और अद्भुत अध्यापक की छात्रा होना कम बड़ी बात नहीं है। उनसे मिले अद्भुत अनुभवों और ज्ञान भंडार को दो-तीन पृष्ठों में भला कैसे समेटूँ। कबीर की पंक्तियाँ याद आती हैं—

"सब धरती कागद करूँ, लेखनी सब बनराय।
सात समुद्र की मसि करूँ, गुरु गुण लिखा न जाय।"

प्रोफेसर रमेश गौतम सर का गरिमामयी व्यक्तित्व जैसे एक जीती-जागती, चलती-फिरती पाठशाला था।

अपनी अनमोल ज्ञानमणि से वे छात्रों को केवल कक्षाओं के भीतर ही लाभान्वित नहीं करते थे अपितु उन्हें अपने समाज, राष्ट्र, मूल्यों और विश्व कल्याण से जोड़ने की प्रेरणा देते थे। पाठ्यक्रम के पाठ से राष्ट्र बोध, राष्ट्र जागरण, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, जीवन मूल्य, मूल्य बोध तक विद्यार्थी को जोड़कर जैसे सर अपनी क्लास का कैनवास बढ़ाते-बढ़ाते पूरे भारत और विश्व को ही अपनी कक्षा का क्षेत्र बना लेते और जीवन्त उदाहरणों के साथ जोड़कर भारतेंदु और प्रसाद के पाठों को भी समसामयिक बना विद्यार्थी की बुद्धि में राष्ट्र प्रेम के भाव के बीज रोपित कर देते थे। सर के बोए राष्ट्रप्रेम के वो बीज उनके विद्यार्थी आज बड़े वृक्षों में तब्दील हो सहज रूप से राष्ट्र समर्पण, प्रेम, एकता, अखंडता के पाठ नई पीढ़ी को सौंप रहे हैं। इस सबका श्रेय सर को जाता है। प्रोफेसर रमेश गौतम सर सच्चे अर्थों में 'राष्ट्र निर्माता' हैं।

अपनी बात कहूँ तो मेरे जीवन के तमाम सूत्रों को सुलझाने वाले सूत्रधार बने मेरे परम आदरणीय गौतम सर। मुझ जैसी एक साधारण सी छात्रा को सर के विश्वास, स्नेह, ज्ञान व मार्गदर्शन से ही आत्मविश्वास और जीवन को जीने का सुमार्ग मिला। मेरे लिए परम सौभाग्य का विषय रहा कि गुरुवर के स्नेहाशीष से शिवाजी कॉलेज में नियुक्ति मिली जहाँ उन्हीं की छवि स्वरूप आदरणीय प्रोफेसर वीरेन्द्र भारद्वाज सर का स्नेहाशीष और मार्गदर्शन लगातार मिल रहा है। आज भी जब-जब प्राचार्य की कुर्सी पर बैठे प्रोफेसर वीरेन्द्र भारद्वाज सर को देखती हूँ तो आदरणीय गौतम सर की छवि आँखों के आगे साक्षात प्रकट हो जाती है।

प्रोफेसर रमेश गौतम जी ने एक बार सोशल मीडिया पर अपने छात्रों को अपना 'ज्ञान अंश' कहा था। शायद तब 'ज्ञान अंश' क्या होता है पूर्णतः नहीं समझ पायी थी। आज प्राचार्य पद पर काम करते उसी कुशल प्रशासकीय दृष्टि, मानवीय संवेदनाओं और विवेक तथा त्वरित निर्णय सम्पन्न प्रोफेसर भारद्वाज सर को देखती हूँ तो ज्ञान अंश का सही-सही अर्थ समझ आता है।

प्रोफेसर रमेश गौतम सर ज्ञान की अनमोल ज्योति के रूप में सदैव इस ज्ञान जगत में जगमगाते रहेंगे। साक्षात् रूप में उनकी कमी बहुत महसूस होती है लेकिन लगता है जैसे वो हमारे ज्ञान पुँज बनकर निरन्तर हमारे प्रत्येक पथ को आलोकित करते हैं। हमारे हर निर्णय में, हमारे हर कर्म में, हमारे हर विचार में आदरणीय सर ही तो हैं। उनके बिना हम कुछ भी तो नहीं। उनके न होने की कल्पना भी रूह को कंपा देती है। मुझे अपने पिताजी के देहावसान ने इतना नहीं रौंदा जितना सर के जाने के समाचार ने भीतर से खंडित कर दिया था। इसीलिए प्रतिपल आज भी इस विचार के साथ नहीं जी सकती कि सर हमारे बीच नहीं हैं, यही विचार जीवन की गति का संबल है कि सर हैं नित्य प्रति, कहीं आसपास, हर निर्णय, हर विचार के साथ। कबीर की वाणी फिर याद हो आती है—

गुरु की महिमा अनंत है, अनंत किया उपकार।
लोचन अनंत उघाड़ियाँ, अनंत दिखावनहार।।

एसोसिएट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, शिवाजी कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

सब धरती कागद करूँ

मंजु शर्मा

''सब धरती कागद करूँ, लेखनी सब बनराय।
सात समुद्र की मसि करूँ, गुरु गुण लिखा न जाय।''

अर्थात यदि सारी धरती को कागज़ मान लिया जाए, सारे जंगल-वनों की लकड़ी की कलम बना ली जाए तथा सातों समुद्र स्याही हो जाएँ तो भी हमारे द्वारा कभी हमारे गुरु के गुण नहीं लिखे जा सकते है। हमारे जीवन मे हमारे गुरु की महिमा सदैव अनन्त होती है, गुरु का ज्ञान हमारे लिए सदैव असीम और अनमोल होता है। ऐसे ही परम आदरणीय प्रो. रमेश कुमार गौतम गुरुवर के चरणों में सादर नमन करती हूँ। प्रो. रमेश गौतम सर के संस्मरणों को याद करने बैठी तो पाया कि छात्र जीवन से लेकर आज तक जीवन का अधिकांश समय उन्हीं की छत्र-छाया में बीता।

स्नातक स्तर पर सर से हुई पहली भेंट जीवन में आजीवन बनी रहेगी यह मेरे जीवन का परम सौभाग्य ही है। सर का पहला परिचय एवं आशीर्वाद स्नातक करते हुए पाया। यद्यपि उस समय सर से कोई परिचय नहीं था लेकिन भगिनी निवेदिता कॉलेज में उन्हें पहली बार (1993-94) देखा और उनके विशाल, गंभीर एवं सौम्य व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुई। मन में यही आशा थी कि सर का आशीर्वाद प्राप्त हो और ईश कृपा हुई कि अगले ही वर्ष परास्नातक के प्रथम वर्ष में ही प्रो. वीरेंद्र भारद्वाज सर ने गौतम सर से परिचय करवाया। सर ने केवल यही कहा कि ''बेटा अगले वर्ष आपकी कक्षा लेंगे।'' उस वर्ष से लेकर आज तक सर ने अपना आशीर्वाद एवं स्नेह बनाये रखा। सर बिना कुछ कहे ही सबके हृदय की इच्छा जान लिया करते थे। सर के विशाल एवं गंभीर व्यक्तित्व के पीछे स्नेह से भरा हुआ हृदय था जो अपने सभी छात्रों के हित एवं उतरोत्तर उन्नति की ही कामना करता था।

परास्नातक करने के उपरांत शोधकार्य के लिए विषय चुनाव के लिए सर से विचार विमर्श किया तो हिंदी नाटकों में भारतीय संस्कृति, मूल्य बोध एवं लोक-तत्व-तीनों का समन्वय करते हुए विषय का चुनाव किया और शोध निर्देशक के रूप में सर का आशीर्वाद मिला।

शिक्षा एवं शोध कार्य के साथ जीवन में सत्य, निष्ठा, कर्तव्य परायणता, समर्पण एवं ईमानदारी से कार्य करने की प्रेरणा सर से ही मिली।

एक बार की बात है मैं अपने शोधकार्य के सन्दर्भ में सर से मिलने विभाग गयी थी। सर विभाग के अपने कक्ष में दोपहर में पहुँचे। क्योंकि वह दोपहर के भोजन का समय था तो भोजन के समय सर ने अपने लंच में से लंच करने को कहा। मेरे मना करने पर भी एक सैंडवीच जबरदस्ती सर ने मुझे भी दिया। पिता की तरह अपने छात्रों का वे विशेष ध्यान रखते थे।

अध्यापन क्षेत्र में आने पर सर ने जीवन का मूलमंत्र दिया कि ''बेटा हमेशा ईमानदारी से अपना कार्य करना एवं छात्र हित में काम करना।'' सर के दिखाये मार्ग पर चलने के लिए सदैव ही प्रयासरत हूँ।

पदोन्नति के अवसर पर सर के कहे शब्द आज भी कानों में गूँजते है—''चक्रवर्ती सम्राट भी क्या प्रसन्न होते होंगे।'' यही वह शुभ दिन था जब मैं और मेरी गुरु दोनों की एक ही दिन 5 अप्रैल 2021 को पदोन्नति हुई थी। प्रो. राज भारद्वाज जी ने भगिनी निवेदिता का प्राचार्या पद ग्रहण किया था और मेरी सहायक आचार्या से सह आचार्य के पद पर पदोन्नत हुई थी। गौतम सर की शिष्य (प्रो. राज भारद्वाज) की शिष्य होने पर सदैव ही मुझे गर्व की अनुभूति होती है। यामिनी मैम का मातृतुल्य स्नेह सदैव से ही मिलता रहा है। मैम का अथाह ज्ञान हम सभी का मार्गदर्शन करने के साथ-साथ प्रेरित भी करता रहा है।

कोविड काल में भी सर सभी की चिंता एवं कुशल क्षेम पूछते रहते थे। सभी के परिवार के सुख-दुख में शामिल होना उनके प्रति सम्मान को और भी बढ़ा देता है।

सर का पिता तुल्य स्नेह एवं आशीर्वाद हमेशा से ही प्राप्त हुआ। पापा के जाने पर सर ने पिता की तरह सँभाला। सर में हमेशा अपने पिता की छवि देखी।

कभी भी जीवन में कोई समस्या, परेशानी होती या कोई राय लेनी होती तो सर हमेशा पिता की तरह तुरंत उसका उपाय या समाधान दिया करते थे। आज सर की कमी बहुत महसूस होती है। ईश्वर से यही प्रार्थना करती हूँ कि सर जहाँ भी है वहां से हमें देख रहें होंगे और सदैव अपना आशीर्वाद हम पर बनाये रखेंगे।

अपने गुरुवर के प्रति अपने भाव प्रकट करने का जो अवसर मुझे मिला उसके लिए बहुत बहुत आभार एवं धन्यवाद। पुनः सर के चरणों में शत शत नमन।

एसोसिएट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, कालिन्दी महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रोफेसर गौतम सर का सान्निध्य : एक अविस्मरणीय पाठ

जयकिशन पराशर

एक महान व्यक्तित्व की स्मृति में कुछ लिखना, मेरे जीवन में फिर से एकाकीपन को भर देने जैसा दुरूह कार्य है। हिन्दी विभाग में गौतम सर से पहली बार मिलना, मेरी स्मृति में आज भी तरोताजा है- एक शानदार व्यक्तित्व! उस समय प्रो. गौतम के निर्देशन में हिन्दी माध्यम निदेशालय के लिए एक अकादमिक डिपोजिटरी बनायी जा रही थी। इसी सिलसिले में, मैं प्रोफेसर सुधीश पौचरी के आग्रह पर सर से मिलने हिन्दी विभाग गया था। उस दिन प्रोफेसर गौतम की एक विदेशी छात्रा का एम.फिल. का वाइवा था। वह छात्रा सम्भवतः कोरिया से आयी थी, वह जलपान के लिए कुछ विदेशी फल लायी थी, जो सर ने मुझे भी दिये—वे स्वादिष्ट फल मेरे मन में, सर के साथ मेरी नयी शुरुआत और शाश्वत जुड़ाव के रूप में मेरी स्मृति में बस गये।

गौतम सर बहुत गर्मजोशी के साथ अपनी छात्रा और मेरे साथ पेश आये। जिससे वे पहली बार मिले थे, वो दिन अभी भी मेरे दिलो-दिमाग में अंकित है। उन्होंने मुझे कुछ समय बाद आकर मिलने और ILLL में चर्चा को अंतिम रूप देने के लिए कहा। सर वहाँ उस समय संयुक्त निदेशक के रूप में कार्य कर रहे थे। बाद में सर ILLL के निदेशक भी नियुक्त हुए। उसी बैठक में उन्होंने प्रस्ताव दिया कि मैं संस्थान में फेलो के रूप में शामिल हो जाऊँ, जहाँ मैं अकादमिक रूप से हिन्दी निदेशालय में भी योगदान दे सकता हूँ। मैं संस्थान में शामिल होने के लिए बहुत इच्छुक नहीं था, क्योंकि मैं जानी-पहचानी जगहों में ही अपने आप को सहज अनुभव करता हूँ। सर के आग्रह और उनके आकर्षक व्यक्तित्व के कारण ही मैं संस्थान में जॉइन करने के लिए सहमत हुआ। मैं इस बात को स्वीकार करता हूँ कि इंस्टीट्यूट ऑफ लाइफलॉन्ग लर्निंग (ILLL) से जुड़ने के बाद मैंने प्रोफेसर गौतम के मार्गदर्शन में जो प्रेरणा पायी, वो निश्चित रूप से आजीवन मेरे साथ रहेगी।

जिस तरह से उन्होंने संस्थान के काम-काज की संस्कृति और जिस प्रकार से हम सभी को वहाँ फेलो के रूप में काम करते हुए प्रभावित किया, इसकी अमिट छाप मेरे जीवन पर पड़ी है। प्रोफेसर गौतम का प्रशासन और प्रबंधन न केवल नैतिक और पारदर्शी था, बल्कि अत्यधिक परिणाम देने वाला एवं कार्योन्मुखी था। हम सभी ने अपने निदेशक के मार्गदर्शन और सहयोग में एक इकाई के रूप में काम किया। सर के नैतिक और पारदर्शी व्यवहार के कारण ही संस्थान के पिछले कार्यकालों के कई निर्णयों और कार्यों की जाँच की गयी थी, जिनमें पारदर्शिता की कमी मिली थी।

प्रोफेसर गौतम सर, जो एक दृढ़ किंतु संवेदनशील प्रशासक थे, उनके 'प्रशासन का मॉडल' कई संस्थानों के प्रमुखों के लिए एक अच्छा आदर्श बन सकता है। सहकारयुक्त कार्य, पारदर्शिता और सहकर्मियों के प्रति सम्मानजनक व्यवहार आदि सर के कुशल प्रशासकीय व्यक्तित्व के प्रमुख अंग थे। तमाम बाधाओं के साथ भी संस्थान के इतिहास में डिजिटल सामग्रियों के सबसे बड़े भंडार का निर्माण, प्रोफेसर गौतम के प्रभावी शासन के मॉडल का प्रमाण है।

इंस्टीट्यूट ऑफ लाइफ लॉन्ग लर्निंग दिल्ली विश्वविद्यालय का एकमात्र संस्थान था जिसे 100 आईएसएसएन मार्क के काम आबंटित थे, जिसे सभी प्रतिभागियों के अकादमिक योगदान के रूप में मान्यता दी गयी थी, जो हमारे कई सहयोगियों की पदोन्नति के लिए काफी फायदेमंद साबित हुआ।

प्रोफेसर गौतम ने दिल्ली विश्वविद्यालय में एक और योगदान दिया, वह है दूरस्थ शिक्षा की परीक्षा के संयोजन का। एसओएल के परीक्षा केंद्रों का संचालन, जिन पर उस समय अधिकांश संदिग्ध निजी स्कूलों का कब्जा था, जो अनेक प्रकार की गड़बड़ियों में लिप्त था, प्रोफेसर गौतम और उनकी सक्षम टीम की मेहनत से इस जालसाजी का अन्त हुआ। कम से कम यह तो कहा ही जा सकता है कि प्रोफेसर गौतम के मजबूत और दीर्घकालिक निर्णयों से परीक्षा आयोजित करने वाले माफिया का नियंत्रण कमजोर हो गया। मैं प्रोफेसर गौतम के बहुत प्रिय प्रोफेसर अजय अरोड़ा का उल्लेख करना चाहूँगा, जिन्होंने बाद में ओएसडी परीक्षा का पद सम्भाला और परीक्षा शाखा के कामकाज में सराहनीय काम किया।

प्रोफेसर गौतम के असामयिक देहावसान से हम सभी दुखी हैं। मैं भी सर के अभाव को सह रहा हूँ। मेरे जीवन में उनका विशेष स्थान रहा है। सर से जुड़े अनुभवों को याद करना मेरे लिए दुःखद और भाव-प्रवण होना है। आपकी बेहद कमी महसूस हो रही है सर, भगवान आपकी आत्मा को शांति प्रदान करे। मैं गौतम सर के सभी विद्यार्थियों को धन्यवाद देता हूँ, जो इन मार्मिक क्षणों के वाहक बने हैं, जिन्हें हम सदैव सँजोकर रखेंगे।

प्रोफेसर
अर्थशास्त्र विभाग, ज़ाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज (सांध्य)
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

वृक्ष देते फल बिना किसी ऋण के : गौतम सर

अर्चना सक्सेना

त्रिभुवन तारिणी तरल तरंगें।
पतितोद्धारिणी जाह्नवी गंगे।।

गुरु जीवन में गंगा की तरह उस तरल तरंग के समान है जो अपने ज्ञान के प्रकाश से शिष्यों के जीवन को निरन्तर सींचते रहते हैं। जीवन की श्रेष्ठतम ऊँचाइयों को स्पर्श करने में गुरु एक माध्यम की भूमिका में सदैव विद्यमान रहते हैं। एक सुदृढ़ चरित्र का निर्माण करने तथा जीवन में सही राह का चुनाव करने में गुरु की भूमिका को अनदेखा नहीं किया जा सकता वस्तुतः सफल जीवन का आधार गुरु ही होते हैं। मेरा स्वयं का जीवन धन्य है कि मुझे पूजनीय गुरुवर प्रोफेसर रमेश गौतम जी के निर्देशन में दिल्ली विश्वविद्यालय से पीएच. डी. करने का सुअवसर प्राप्त हुआ संघर्षो से जूझकर ही लक्ष्य की प्राप्ति की जा सकती है, यह प्रेरणा मुझे गुरुवर से ही प्राप्त हुई। अपने शिष्यों की सफलता में ही अपनी सफलता को देखना गुरुवर के व्यक्तित्व की ऐसी विशेषता थी जिसे चन्द शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता विपरीत परिस्थितियों में भी जिन्होंने सतत आगे बढ़ना सिखाया ऐसे गुरु को मेरा शत-शत नमन और अन्त में बस यही कहना चाहूँगी–

वृक्ष देते फल बिना किसी ऋण के,
राही लेते फल लेकिन प्राप्ति से अधिक सौभाग्य से।

मैं अपने को गुरुवर प्रोफेसर रमेश गौतम जी के उन्हीं सौभाग्यशाली शिष्यों के परिवार में सम्मिलित करके धन्य हूँ।

विनम्र श्रद्धांजलि!

पूर्व शोधार्थी, हिन्दी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

स्मृतियों में गुरुवर...

राजेश कुमार

यह जानकर अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि परम श्रद्धेय गुरुवर प्रो. रमेश गौतम की स्मृति में उद्‌गीत पत्रिका का प्रवेशांक प्रकाशित होने जा रहा है। आदरणीय गुरुवर के विषय में लिखना मेरे लिए गर्व की बात है। प्रो. गौतम जी से मुझे एम. फिल. पाठ्यक्रम के दौरान पढ़ने का अवसर मिला। वे न केवल अपने नाटक व एकांकी विषय के विशेषज्ञ थे, अपितु साहित्य की सभी विधाओं में वे प्रवीण थे। उनका साहित्यिक व्यक्तित्व ही हम सभी विद्यार्थियों को अनुशासित करता था। अपने अध्यापन के साथ-साथ सर की प्रशासनिक दक्षता विश्वविद्यालय में हमेशा चर्चा का विषय बनती थी, जिसके कारण उन्हें विश्वविद्यालय में कई सारी प्रशासनिक जिम्मेदारियों का वहन सफलतापूर्वक किया। गुरु जी को मैंने अकादमिक और व्यक्तिगत जीवन में काफी व्यवस्थित देखा है। अपनी शिक्षण कला से वे विद्यार्थियों को सदैव प्रभावित और प्रेरित करते रहे। उच्च शिक्षा में श्रेष्ठतम उपाधियों का धारण उनके व्यक्तित्व में ही समा सकता था। सेवानिवृति के बाद भी उन्होंने अपने अध्ययन का समय निर्धारित किया हुआ था और उसमें परिवर्तन करना उन्हें स्वयं भी स्वीकार नहीं था। यह उन्होंने स्वयं बातचीत के दौरान बताया कि बहुत सारी साहित्यिक परियोजनाओं की परिकल्पना उन्होंने की हुई है जिन्हें वह अपने शिष्यों के सहयोग से आगे बढ़ाना चाहते थे, शायद समय को यह स्वीकार नहीं था।

गुरुवर का विशेष स्नेह और आशीर्वाद मुझ पर सदैव रहा। प्रेम के इन भावों को शब्दों में अंकित करना शायद संभव नहीं है, वे हमारे जीवन का प्रारब्ध रहे। अपने शिष्यों का विशाल समूह आपके जीवन की श्रेष्ठ पूँजी सदैव आपको स्मरण करेगी। विद्यार्थी ही नहीं, दिल्ली विश्वविद्यालय का प्रत्येक व्यक्ति आपके योगदान को आज भी याद करता है, चाहे वह हिन्दी विभाग के पाठ्यक्रम का प्रारूप तैयार करना हो, शोध विषयों का निर्धारण हो, या प्रशासनिक दायित्वों का निवर्हन हो, आपने हर जगह सीखने की प्रवृति को सशक्त और उत्कृष्ट बनाया है। आपकी कार्य क्षमता और कुशलता आपके आलोचकों को भी प्रसन्न करती थी। यही कारण ही आपके व्यक्तित्व का आकर्षण रही। उद्‌गीत का स्मृति विशेषांक निश्चित रूप हम सब ही नहीं, बल्कि साहित्य के क्षेत्र में उन विद्यार्थियों के लिए भी प्रेरणा पथ होगा जो अध्यापन और शोध को प्राथमिक महत्व देंगे। आपका असमय जाना हमारे संबल को तोड़ने वाला रहा, परन्तु आपकी शिष्य परंपरा में वह साहस और सामर्थ्य है जो हमें अपने कर्म पथ पर सदैव मार्ग प्रशस्त करेगा। उद्‌गीत के रूप में यह आदराजंलि आपके प्रति हमारे भावों की अभिव्यक्ति है।

असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, रामलाल आनन्द महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

कुशल अध्यापक और नाट्य-आलोचक: प्रो. रमेश गौतम

धर्मेन्द्र प्रताप सिंह

हिंदी नाटक एवं रंगमंच के गंभीर अध्येता प्रो. रमेश गौतम ने कई दशक एक शोधकर्त्ता के रूप में नाटक एवं रंगमंच के अध्ययन-अध्यापन के क्षेत्र में गम्भीर कार्य किया है। दिल्ली विश्वविद्यालय में नाटक के अध्ययन-अध्यापन का नया मुहावरा गढ़ने में गौतम सर का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। कोई भी नाटक रंगमंचीयता के बिना अधूरा ही है। इसीलिए नाटकों के संदर्भ में रंगमंचीयता के प्रश्न को गौतम सर ने अपने चिन्तन में गहनता से विचार किया। इन्होंने न केवल नाटक को कक्षा में पढ़ाया है, बल्कि नाट्य-कलाकारों को गढ़ा भी है। आपके बहुत से विद्यार्थी रंगकर्म के क्षेत्र में सक्रिय एवं लोकप्रिय हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और जयशंकर प्रसाद आपकी नाट्य-आलोचना के प्रमुख केन्द्र रहे हैं। प्रसाद के नाटकों की रंगमंचीयता पर आलोचकों द्वारा जो प्रश्न खड़े किये जाते रहें, उन पर गौतम सर ने गहनता से विचार करते हुए उनके मंचन के नये रास्ते तलाशे। उन्होंने अपनी आलोचना में नाटक और उसके मंचन, दोनों पक्षों को समग्रता में साथ रखकर विचार किया है।

एक नाट्यालोचक के रूप में गौतम सर अपने पाठकों के बीच लोकप्रिय रहे हैं। उनके पाठकों ने उन्हें उनकी आलोच्य पुस्तकों से उन्हें जाना है। दूसरे रूप में गौतम सर अपने विद्यार्थियों के बीच बेहद लोकप्रिय रहे। विद्यार्थी, जिन्होंने विश्वविद्यालय में उनसे शिक्षा ग्रहण की और जाना की कक्षाएँ भी नाटकों की तरह जीवन्त और रसग्राही हो सकती हैं।

प्रो. रमेश गौतम ने दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्रोफेसर एवं अध्यक्ष के पद पर रहते हुए अध्ययन-अध्यापन से अपनी नाट्य-आलोचना को पुस्तकाकार दिया। 'हिंदी नाट्यकर्म : दृष्टि और सृष्टि', 'प्रसाद के नाटक : देश और काल की बहुआयामिता', 'रंगानुभव के बहुरंग' आदि आपकी प्रमुख पुस्तकें हैं। साथ ही आपने नाट्य-पत्रिकाओं का भी कुशल संपादन किया। अपनी आलोचकीय दृष्टि से प्रो. गौतम ने नाट्य-आलोचना में नयी सम्भावनाओं को तलाशा और आलोचकीय परम्परा में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनकी उपस्थिति से निश्चित ही हिन्दी की नाट्य आलोचना सशक्त हुई।

नाटक-रंगमंच की दुनिया में वे एक शानदार शिक्षक और आलोचक के रूप में प्रसिद्ध हैं। शोधार्थियों के लिए उनकी पुस्तकें वह अनिवार्य रास्ता हैं, जिसमें से होकर उन्हें गुजरना ही होता है। मेरा सौभाग्य रहा है कि मैं उनका विद्यार्थी रहा हूँ। एमए की कक्षाओं से लेकर उनके साथ पीएचडी शोधकार्य करना मेरे लिए गर्व का विषय है। नाटकों के भीतर से विमर्श और विमर्शों के बीच की नाटकीयता को उभारने में उनका कोई सानी नहीं। अपने विद्यार्थियों-शोधार्थियों की चिंता करना, समय से शोध-ग्रन्थ जमा करने और लगातार लिखने की प्रेरणा उनसे मिलती रही। उनका न होना मेरी व्यक्तिगत क्षति है। उनकी पावन स्मृति को मेरा सादर प्रणाम!

असिटेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

"परहित सरिस धर्म नहिं भाई।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥"
(रामचरितमानस)

स्मृति शेष

नीतू शर्मा

आज मैं परम आदरणीय प्रो. रमेश गौतम से जुड़ी अविस्मरणीय यादें आप सभी विद्वतजनों के साथ साझा कर रही हूँ। वैसे तो अपने घर में सर के विराट व्यक्तित्व के विषय में कई बार भईया के माध्यम से सुना था। सौभाग्य से मिलने का अवसर मुझे पहली बार अपने बड़े भाई के विवाह में मिला। जब मैं स्कूल में दसवीं कक्षा में पढ़ती थी। भईया ने परिचय करवाते हुए कहा कि सर ये मेरी छोटी सिस्टर है नीतू। मैंने भी तुरन्त नमस्कार सर, नमस्कार मैम किया तभी सर ने बड़े, स्नेहपूर्ण भाव से कहा नमस्कार बेटा और फिर हम सभी अन्दर चले गये यामिनी मैम और गौतम सर का आर्शीवाद प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से हमेशा ही मुझे मिला है।

इसके बाद दूसरी बार मेरा साक्षात्कार उस समय हुआ जब मैं दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रतिष्ठित कॉलेज (मिरांडा हाउस) से एम. ए. हिन्दी कर रही थी। 'चन्द्रगुप्त' नाटक पर ओजस्वी शैली में जब सर अपना व्यक्तव्य देते थे तो ऐसा लगता मानों जयशंकर प्रसाद रचित 'चन्द्रगुप्त' नाटक में चाणक्य के ही प्रतीक पुरुष हों। एक सजग नाट्य सृजक, चिन्तक, विद्वान और समीक्षक के रूप में हिन्दी नाट्य जगत में आज भी प्रसिद्ध हैं। एक विद्यार्थी होने के नाते राष्ट्रीय सांस्कृतिक चिन्तन के गूढ़ रहस्यों और सिद्धांतों को सर से समझने की जिज्ञासा बराबर मेरे मन में बनी रहती थी। सौभाग्य से यह सुअवसर एम. फिल और पी.एच.डी. दोनों के दौरान मुझे मिला था क्योंकि प्रो. रमेश गौतम सर ही दोनों बार मेरे शोध निर्देशक रहे हैं। इसके बाद शोधकार्य के चलते जब सर से जिज्ञासाओं के साथ मिलने जाती तो बड़े सहज भाव से सर पूछते कि कैसे हो बेटा? पी.एच.डी. का काम कितना हुआ है? जल्दी करना? खूब किताबें पढ़ो और समय का ध्यान रखना आदि इसी प्रकार की महत्त्वपूर्ण बातें कहते थे। इसके बाद जब कभी घर जाना हुआ तो वहाँ भी मैम से कहते कि वीरेन्द्र जी के साथ नीतू आयी है। सर की भांति मैम भी सामान्य विषय से लेकर वेद, पुराण और उपनिषद् दर्शन की विदुषी हैं सदैव अपनी बेटी के समान वात्सल्य भाव रहा है उनका मेरे प्रति और आज भी ईश्वरीय कृपा से यह स्नेह दृष्टि बनी हुई है।

समय के साथ मेरे जीवन में भी कई पड़ाव आये। चाहे स्थायी नियुक्ति हुई हो, चाहे विवाह संस्कार, चाहे प्रमोशन्स हुई हों। सभी अवसरों पर सदैव सर और मैम का आशीर्वाद सौभाग्य से मुझे मिलता रहा है। वास्तव में सर की बुलंद आवाज, भविष्य के प्रति चिन्ता, भारतीय मूल्यों के प्रति आस्थावादी दृष्टिकोण और संरक्षण का भाव उनकी बहुआयामी दृष्टि को दर्शाता है। इसलिए सर न केवल हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय के ही अपितु समग्र भारतवर्ष में हिन्दी जगत के बेताज बादशाह के रूप में हमेशा अनुकरणीय रहेंगे।

आज भी मन की गहराईयों में बार-बार ये आवाज गूँज उठती है काश गौतम सर आज भी हमारे बीच इस संसार में होते क्योंकि 'मानव जीवन क्षण भंगुर है' मध्यकालीन निर्गुण संत कवि कबीर ने भी पानी के बुदबुदे की भाँति जीवन की क्षण भंगुरता को चरितार्थ किया है–

पानी केरा बुदबुदा, अस मानस की जात।
देखत ही छिप जाएगा, ज्यों तारा परभात।।

जीवन विषयक इस चिर सत्य को मैंने भी अगस्त 2021 में कोविड वैश्विक महामारी के चलते सर के असमय इस लौकिक संसार से चले जाने पर चरितार्थ होते देखा है। इसके साथ ही गला अवरुद्ध और वाणी निशब्द...

एसोसिएट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, हंसराज कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

"शुद्धाः पूता भवत या ज्ञियास" (ऋग्वेद)
(शुद्ध और पवित्र बनो तथा परोपकारमय जीवन वाले हों)

विराट व्यक्तित्व : मेरे गुरुवर

बलजीत कौर

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः॥

सर्वप्रथम परम पूजनीय गुरुवर प्रोफेसर रमेश गौतम सर के श्री चरणों में कोटि-कोटि नमन व वंदन करती हूँ।

गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूं पाय।
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय।।

गुरुवर का व्यक्तित्व इतना सशक्त और विराट है कि उनका गुणगान शब्दातीत है।

वर्ष 1991 में जब हमने—मैंने, बलजीत कौर और डॉ. अर्चना सक्सेना ने कला स्नातक के पश्चात स्नातकोत्तर हेतु कला संकाय में पदार्पण किया तब परम श्रद्धेय गुरुवर प्रोफेसर रमेश गौतम जी का सान्निध्य प्राप्त हुआ। गुरुवर प्रोफेसर रमेश गौतम जी का आभामंडल इतना अधिक ऊर्जावान व प्रेरणादायी था कि हर विद्यार्थी गुरुवर के निर्देशन में दर्शन निष्णात और विद्या वाचस्पति करने की सुदृढ़ इच्छा से लालायित रहता था। बिना कहे कि गुरुवर अपने शिष्यों की समस्याओं को जान लेते थे और उसके समाधान हेतु अहर्निश तत्पर रहते थे।

सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपकार।
लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावण हार।।

गुरुवर बहुआयामी व्यक्तित्व से सम्पन्न थे। गुरुवर एक महान शिक्षक, निर्देशन कला से निपुण, कुशल प्रशासक, कुशल नीति निर्धारक और कुशल नेतृत्व कला से सम्पन्न और सबसे अधिक दैवीय गुणों से सम्पन्न परोपकारी मनुष्य थे।

मुझे याद है मैं जब भी गुरुवर के पास अपनी कोई परेशानी या समस्या लेकर जाती तब गुरुवर हमेशा यह कहना .....

''बेटा! वो है ना ऊपर वाला...''

गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूं पाय।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविंद दियो बताये।।

जब भी यह सब याद करती हूँ, नेत्र अश्रुपूरित हो जाते हैं गुरुवर की स्मृति-उदधि कभी न सूखने वाली अश्रु राशि देकर गयी है। हम सभी शिष्य गर्व से सर उठाकर कहते थे कि हम गुरुवर प्रोफेसर रमेश गौतम सर के निर्देशन में दर्शन निष्णात अथवा विद्या वाचस्पति कर रहे हैं। अपने अध्ययन, शोध सम्बन्धी कभी भी किसी प्रकार की शंका अथवा प्रश्न होता तो गुरुवर अपने शोधार्थियों / शिष्यों के प्रश्नों का उत्तर और शंकाओं का समाधान करने के लिए उपस्थित रहते थे। गुरुवर हमेशा अपने शिष्यों को अपने बच्चों की तरह मानते थे उनका ''बेटा'' कहने का संबोधन पितृ तुल्य आत्मीयता से सराबोर कर देता था।

गुरुवर के विद्यादान व आशीर्वाद स्वरूप असंख्य शिष्य ऐसे हैं जो देश-विदेश के विविध प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय और संस्थानों में प्रतिष्ठित पदों पर शोभायमान हैं यह उन महान गुरुवार का ही प्रताप और आशीर्वाद है। गुरुवर को अपने सभी शिष्यों पर बहुत गर्व होता था।

गुरुवर की मधुर स्मित आज भी आँखों में बसी है। गुरुवर की मंद-मंद मुस्कान और कभी-कभी खुलकर हँसने वाली छवि आँखों के समक्ष रह-रहकर मूर्त हो उठती है।

गुरुवर ऐसे महान शिक्षक थे जो अपने शिष्यों का हाथ कभी नहीं छोड़ते थे उनका सिखाना, समझना और कभी-कभी डाँटना भी आज बहुत याद आता है।

गुरु कुम्हार शिष्य कुंभ है, गढ़ि-गढ़ि काढ़ै खोट।
अन्तर हाथ सहार दे, बाहर बाहे चोट।।

वर्ष 1995 में गुरुवर प्रोफेसर महेंद्र कुमार सर की षष्ठी पूर्ति समारोह के अवसर पर मेरा और अर्चना का पहली बार गुरुवर प्रोफेसर रमेश गौतम सर ने मातृ तुल्य परम श्रद्धेय प्रोफेसर यामिनी गौतम मैम से बड़े गर्व के साथ परिचय करवाया था। आज यह सभी यादें पुनः स्मृति दीर्घा में साकार हो रही हैं।

मुझे याद आ रहा है वर्ष 2002 जब मैं अपने शोध प्रबंध के संदर्भ में अपने भाई साहब के साथ गुरुवर के घर, रोहिणी गयी थी तब घर नया-नया बना था वही चरण वंदनीय परम पूजनीय माता जी के दर्शन और आशीर्वाद पाकर हम धन्य हुए। गुरुवर मुस्कुराते हुए बोले....

शोधार्थी होकर चाय नहीं पीतीं...?

और फिर खिलखिलाकर उनका हँसना .....अविस्मरणीय!... अगाध!.....है।

जब भी गुरुवर से भेंट हुई चाहे विभिन्न महाविद्यालय में साक्षात्कार के संदर्भ में या सीपीडीएचई में गुरुवर के निदेशक रहते हुए या रविंद्र भवन में हिन्दी के विद्वान, कवि, लेखक प्रोफेसर अशोक चक्रधर जी के द्वारा 'अंधेरे में' कविता के काव्य-वाचन के अवसर पर गुरुवर के व्यक्तित्व से अभिभूत हुए बिना नहीं रह सकी!

मुझे याद आ रहा है जुलाई अगस्त वर्ष 2019 का समय रहा होगा जब मैं एक बार फिर पितृ तुल्य गुरुवर और मातृ तुल्य प्रोफेसर

यामिनी गौतम मैम से मिलने गयी थी। गुरुवर व मैम से बहुत सारी बातें हुई शोध सम्बन्धी, भविष्यगत योजनाओं पर बल्कि व्यक्तिगत समस्याओं पर भी गुरुवर और यामिनी मैम के परामर्श और सलाह और उनका प्रेमपूर्वक समझाना भीतर तक ताकत व ऊर्जा का संचार करता है। गुरुवर अपने शिष्यों की बहुत चिन्ता और उनका ध्यान रखते थे कि उन्हें कहीं भी और किसी भी प्रकार की कोई परेशानी ना हो ....पूछतेः-

बेटा! कैसे जाओगी?

बेटा! घर पहुँच कर फोन अवश्य करना।

बहुत ही आत्मीयता के साथ अभिभावकों की तरह अपने शिष्यों का ध्यान रखते थे गुरुवर!

कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि गुरुवर से यह अंतिम भेंट होगी.... काश....! काश....! काश.....! कि वक्त वहीं थम जाता! यह सब जो हुआ वो ना हुआ होता .....! निःश्वास..! अश्रु पूरित दृग...!

कागा सब तन खाइयो, मोरा चुन चुन खाइयो माँस।
ये दो नैना मत खाइयो, इनमें मोरे गुरुवर के दर्शन की आस।।

गुरुवर अपने माता-पिता जी का ही प्रताप थे। माता जी के देहावसान के समय गुरुवर भीतर से बहुत टूट गये थे। माता जी का जाना संतान के लिए अत्यन्त हृदय विदारक होता है। ऐसे समय में भी गुरुवर हर शिष्य से यह पूछना - बेटा तुम ठीक हो...?

गुरुवर अपने चरण स्पर्श नहीं करने देते थे कहते थे—

''बेटियाँ पैर नहीं छूतीं। ''

गुरुवर का सिर पर हाथ रखना.... निःश्वास.....! अब वह वरद् हस्त कहाँ मिलेगा?..... गहरी टीस दे जाता है।

वैश्विक महामारी कोविड-19 का किसी को भी अंदेशा ही नहीं था माननीय गुरुवर को यामिनी मैम के साथ अपने सुपुत्र व पुत्रवधू के पास दुबई जाना था, पर किसी अति आवश्यक कार्यवश गुरुवर को भारत में रुकना पड़ा और उनका कुछ दिन बाद में जाना निश्चित था और अचानक कोविड-19 का प्रकोप और दंश आन पड़ा और गुरुवर रोहिणी वाले घर में अकेले रह गये। उन दिनों लगभग हर रोज गुरुवर से फोन पर बात होती थी उधर से गुरुवर की आवाज आती है—

''और बेटा ठीक हो...?''

कोविड-19 का प्रकोप लगभग समाप्त हो गया था, गुरुवर और मैम को दुबई अपने परिवार के पास जाना था ..... और गुरुवर कोविड-19 के प्रकोप में आ गये।

इधर भारत में सबको यह पूरा विश्वास था कि गुरुवर जैसे सशक्त व्यक्तित्व कोरोना को मात देकर सकुशल भारत लौट आएँगे। उधर चिकित्सीय प्रयासों व शुभचिन्तकों की प्रार्थनाओं का दौर जारी था पर विधाता को कुछ और ही मंजूर था और हम सभी अपने आप को असहाय और ठगा सा महसूस कर रहे थे और आह!

विधाता का खेल.... और वह महान गुरु, शिक्षक हम सबको अनाथ करके इस धरती से विदा हो गये!

गोरी सोवत सेज पर, मुख पर डारे केस।
चल खुसरो घर आपने रैन भई चहुँ देस।।

और उन महान शिक्षक हम सभी के प्रिय, परम आदरणीय गुरुवर को परमपिता परमेश्वर ने हमेशा-हमेशा के लिए अपनी गोद में बुला लिया।

गुरुवर की स्मृतियों के मोती इतने अधिक हैं कि शब्दों व समय का धागा कम पड़ जाता है.....।

परम श्रद्धेय परम वंदनीय गुरुवर प्रोफेसर रमेश गौतम सर के श्री चरणों में कोटिशः नमन और वंदन।

भावभीनी श्रद्धांजलि सादर नमन व वंदन!

असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
कालिन्दी महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

गौतम सर : मेरे गुरु मेरे रहनुमा

तरुण गुप्ता

मैंने सन् 2002 में रामजस कॉलेज में एडमिशन लिया था तब सर हिन्दी विभाग के अध्यक्ष थे। रामजस कॉलेज ने उन्हें जयशंकर प्रसाद पर बोलने के लिए आमन्त्रित किया था। रामजस कॉलेज में जहाँ आज स्टाफ रूम हैं वहाँ तब सेमिनार हॉल हुआ करता था। मुझे याद है सर ने जयशंकर प्रसाद की राष्ट्रीय चेतना और स्त्री स्वाधीनता पर बात करते हुए चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी से उद्धरण देते हुए अपनी बात रखी थी। मैं इतिहास में रूचि रखने वाला विद्यार्थी था और इतिहास में ऑनर्स करना चाहता था और एक्सिडेंटली हिन्दी ऑनर्स में आया था। साहित्य की समझ लगभग ज़ीरो थी। मुझे आज भी याद है मैंने उनसे ध्रुवस्वामिनी पर बहुत ही बचकाना सवाल किया था और सर मुस्कुरा दिये थे। ये मेरा गौतम सर से पहला तआरुफ़ था। क्या पर्सनैलिटी थी सर की। क्या अंदाज़ था बोलने का। वो छवि आज भी आँखों में बसी है। वो हमारे हीरो थे और हम उनके फैन। जैसे कोई फैन अपने पसंदीदा हीरो के स्टाइल को कॉपी करता है मैंने भी किया है। मैंने उनकी आवाज़ में बोलने की कोशिश की है। उनकी तरह पढ़ने पढ़ाने की कोशिश की है, अपने छात्रों के साथ कनेक्ट करने की कोशिश की है, उनकी तरह अपने चरित्र को मजबूत रखा है। माँ, पत्नी और परिवार के प्रति प्रेम, प्रतिबद्धता और ईमानदारी गौतम सर से सीखी है। आज भी उनके इन गुणों को अपनाने की कोशिश करता हूँ।

सर के व्यक्तित्व में कुछ ऐसी बात थी कि वह स्वतः आपको अपनी तरफ खींचती थी। जैसे चंद्रमा का गुरुत्वाकर्षण समुद्र में लहरें पैदा करता है। वैसे ही गौतम सर का व्यक्तित्व और चरित्र आपके ज़हन में बौद्धिक और सांस्कारिक लहरें पैदा करता है। अज्ञेय ने कहा था कि आधुनिक होना संस्कारवान होने की प्रक्रिया है। इन अर्थों में गौतम सर से अधिक आधुनिक और कौन होगा। नये से नये बदलाव को सर अपनाने को तैयार रहते। रूढ़ियों को वे सिर्फ दूर से ही नमस्कार नहीं करते अपितु उनका विरोध भी करते। मुझे याद है एक दिन सर के घर पर सर से भारतीयों में विटामिन डी कम होने पर बात हो रही थी तब सर ने विदेशों में सनबाथ का समर्थन किया था। और कहा था कि अच्छी बातें और अच्छे विचार जहाँ से मिलें ले लेने चाहिए।

मुझ पर और प्रतिमा पर गौतम सर और यामिनी मैम का अतिरिक्त स्नेह और आशीर्वाद रहा है। यही कारण है कि मेरे जैसे अदने से छात्र को सर ने अपने सबसे भरोसेमंद छात्र की छत्रछाया में शिवाजी कॉलेज में भेजा और प्रतिमा को आदरणीय यामिनी मैम के पास मैत्रेयी कॉलेज में। गौतम सर के आशीर्वाद और यामिनी मैम के स्नेह से वीरेन्द्र सर की छत्रछाया में मैंने बहुत सीखा है और सीखने की यह प्रक्रिया अब भी जारी है। आज भी जब वीरेंद्र सर मुझे कुछ समझा रहे होते हैं मुझे वीरेन्द्र सर की छवि में गौतम सर दिखाई देते हैं और मैं आज भी सिर्फ सुनना और समझना पसन्द करता हूँ। मेरे भीतर कई सारे सवाल होते हैं लेकिन यह एक छवि और इस छवि के प्रति मेरी कृतज्ञता उन सब सवालों का जवाब दे देती है और मैं बिलकुल खामोशी से इस छवि को निहारता रहता हूँ। यह एक छवि मेरे लिए कई सारे सवालों का जवाब और कई सारी परेशानियों से निकलने का आश्वासन है।

गौतम सर की स्मृति जब भी आती है मैं भावुक हुए बिना नहीं रहता और मैं ही क्यों उनके तमाम शिष्य, उनसे जुड़ा हर एक व्यक्ति उनके सम्बन्ध में अपने-अपने अनुभव और उन अनुभवों में से उनकी स्मृति को संजोते हुए उन पर बात करता है। आज भी ऐसा सम्भवतः नहीं होता कि आप हिन्दी विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय के कम्पाउण्ड में जाएँ और आपको गौतम सर की याद ना आये। ऐसा भी नहीं होता कि आप गौतम सर के घर जाएँ और घुसते ही गौतम सर का अहसास, उनकी स्मृतियाँ आपको भावुक न करें। आप वहाँ जाकर एकाएक बात नहीं कर पाते। कुछ देर तक उनकी स्मृतियाँ आपको खामोश रखती हैं। यह आपके ऊपर है कि आप अपनी अनुभूति को दिल में रखते हुए यामिनी मैम से बात कर पाते हैं या नहीं। गौतम सर की यादें उनकी मुस्कुराती तस्वीर आपकी आँखों के कोर भिगो देती हैं। आपकी आवाज़ भर्रा जाती है। आप काफी देर तक खामोश रहते हैं। ऐसा क्यों होता है, क्या थी ऐसी बात कि सिर्फ गौतम सर के छात्र ही नहीं बल्कि दिल्ली विश्वविद्यालय के तमाम शिक्षक और छात्र यहाँ तक की नॉन टीचिंग एम्पलाई भी गौतम सर की बातें करते हैं। जिन साथियों ने गौतम सर के साथ काम किया है या जिन्हें गौतम सर का सानिध्य प्राप्त हुआ है। वह गौतम सर को एक डैशिंग पर्सनैलिटी, एक विचारवान वक्ता, एक कुशल और लोकप्रिय शिक्षक के साथ-साथ एक बेस्ट एडमिनिस्ट्रेटिव के रूप में भी याद करते हैं। एक ऐसा एडमिनिस्ट्रेटिव व्यक्तित्व जिसके पास हिन्दी विभाग के ही नहीं बल्कि दिल्ली विश्वविद्यालय के तमाम सवालों के जवाब थे और जवाब भी ऐसे कि उनके ऊपर कोई काउंटर क्वेश्चन करने की हिमाकत नहीं कर सकता था। क़ाग़ज़ों में और दिल्ली विश्वविद्यालय से सम्बन्धित जानकारी में उनका कोई सानी नहीं था। उनके पास प्रश्न पत्र, सिलेबस, वर्कलोड, सर्विस कंडीशन और न जाने कितनी ही तरह की सटीक जानकारियाँ थीं। किसको किस परेशानी से कैसे निकाला जाना है। किसे कहाँ भेजना है। कौन व्यक्ति कहाँ बेहतर कर सकता है। किस व्यक्ति की प्रतिभा का इस्तेमाल कहाँ हो सकता है। किसी छात्र के भीतर प्रतिभा का विकास कैसे किया जा सकता है, किसी छात्र के अन्दर भविष्य में नेतृत्व करने की क्षमता का विकास कैसे किया जा

सकता है। इस तरह की तमाम योजनाएँ उनके ज़ेहन में हमेशा रहती थीं। आज गौतम सर की बहुत याद आती है। मुझे उनकी याद आने का एक कारण शिवाजी कॉलेज में अध्यापन से भी सम्बन्धित है। मैं शुरू से ही गौतम सर के सानिध्य में रहा जैसे बाकी सब को लगता है मुझे भी लगता है कि मैं गौतम सर और यामिनी मैम के प्रिय छात्रों में हूँ। मैंने यामिनी मैम से छायावाद (कामायनी) और गौतम सर से रंगमंच पढ़ा। गौतम सर का व्यक्तित्व मुझे सदैव आकर्षित करता रहा। उनकी पर्सनैलिटी, उनका छात्रों के साथ खड़ा होना, छात्रों की परेशानियों पर बात करना, ऐसी तमाम तरह की बातें मुझे गौतम सर के नजदीक लाती रहीं।

मैंने डॉ. नगेंद्र को नहीं देखा पर दिल्ली विश्वविद्यालय में उनके प्रभाव के चर्चे सुने हैं। ऐसा प्रभाव मैंने गौतम सर को देखकर महसूस किया है। सन 1991-92 में जब सर ने हिन्दी विभाग जॉइन किया तब से सर के रिटायर होने (2015) तक चाहे वो अध्यक्ष रहे हों या न रहे हों। उनका प्रभाव हिन्दी विभाग और दिल्ली विश्वविद्यालय में हमेशा रहा है। अगर एकाएक नाटकों में शोध करने वाले शोधार्थियों की बाढ़ आयी तो उसमें गौतम सर के इस प्रभाव की भी महती भूमिका थी। इसका एक बहुत बड़ा कारण ये भी था कि उनके अन्तर्गत पीएच. डी और एम.फिल करने वाला शोधार्थी अपने भविष्य को लेकर लगभग निश्चिंत रहता था। काफी समय पहले दिल्ली विश्वविद्यालय में मध्यकाल भी इसी तरह के शोध के लिए लोकप्रिय हुआ करता था। गौतम सर एकेडमिक को तवज्जो देने वाले शिक्षक थे, बशर्ते कि आप अपने में गुम ना रहकर उनसे बात करें। लेकिन इन सबसे अलग उनके लिए दिल में आदर का भाव इसलिए भी है कि मैंने उन्हें ऊँचे पद पर पहुँचने के बाद भी अपनी कक्षा के प्रति ईमानदार पाया है। चाहे वे ILLL के निदेशक हो गये हों वे कई बार वहाँ से पैदल चलकर फैकल्टी में क्लास में जाने के लिए लालायित रहते।

2009 में मुझे हिन्दी विभाग में यूनिवर्सिटी टीचिंग असिस्टेंटशिप मिली तब सुधीश पचौरी सर हैड थे। उस दौरान गौतम सर के अधिक करीब रहने का अवसर मिला। उस समय विभागीय शोध योजना के अन्तर्गत हिन्दी साहित्य के इतिहास के पुनर्लेखन की बृहद योजना चल रही थी। जिसमें हम सभी यू.टी.ए को भी अपनी सहभागिता देनी थी। हमें सर ने वक्ताओं की रिकॉर्डिंग को ट्रांसक्रिप्ट करने का काम सौंपा था। हम सभी ने अपना काम बहुत अच्छे से किया तब सर ने यूनिवर्सिटी के इंटरनैशनल गैस्ट हाउस में लंच पर सभी गणमान्य अतिथियों के साथ हमें भी आमन्त्रित किया जबकि उसी समय के कुछ शिक्षक उनके इस निर्णय पर खुश नहीं थे। उन्हें लगता था कि छात्रों को इस तरह के आयोजन में शामिल करना ठीक नहीं पर सर के निर्णय के खिलाफ बोलने की वो हिम्मत नहीं जुटा पा रहे थे। उसी लंच के दौरान एक घटना और घटी। वह भी सर के चरित्र को और अपने छात्रों के प्रति उनके रुख को समझने के लिए ज़रूरी है। हुआ यूँ कि हमारा ही एक साथी उस समय के एक प्रोफेसर को नैपकिन से प्लेट साफ करके देने लगा। सर ने उसे देखा और तुरन्त बुलाया और कहा कि तुम यहाँ इसलिए नहीं आये हो। सर की यह बात मुझपर असर छोड़ गयी। कोई शिक्षक अपने छात्र के स्वाभिमान के लिए और उसके आत्मसम्मान के लिए यदि खड़ा हुआ तो वो गौतम सर ही थे। सर ने अपने छात्रों को तनकर खड़े होने की सीख दी। अपनी बात को रखने की सीख दी। किसी शिक्षक को किसी बड़े अधिकारी, डीन या कुलपति के आगे पीछे घूमते देख उन्हें बहुत तकलीफ होती थी और अगर वह उनका छात्र हो तो यह तकलीफ और बढ़ जाती थी। उनका कद और रुतबा आपके स्वाभिमान को कभी ठेस नहीं लगने देता। अपने यूटीए के दौरान सर से प्रूफ रीडिंग, और ट्रांसक्रिप्टिंग की बारिकियाँ भी सीखने को मिलीं। हिन्दी विभाग कार्यालय में उनका रुतबा ऐसा था कि उनके आते ही सब लोग खड़े हो जाते थे। मैंने इतने सालों में ऐसा कभी नहीं देखा कि सर किसी से खड़े होकर कुछ बोल रहे हों और वो अपनी सीट पर बैठा हो। हिन्दी विभाग में कितने ही कर्मचारियों की उन्होंने पैसों एवं अन्य तरह से मदद की और वे दान के इस सिद्धांत पर हमेशा चलते रहे कि जब एक हाथ दान कर रहा हो तो दूसरे हाथ को इसकी खबर न लगे। किसी की बहुत बड़ी मदद करने पर भी जब वह उन्हें धन्यवाद ज्ञापित करने जाता तो वे कहते सब ईश्वर कृपा से हुआ है। मैंने कुछ नहीं किया। ये सर का बड़प्पन था।

''देखता हूँ।'' सर का पसंदीदा वाक्य था पर यह वाक्य सर यूँ ही नहीं कहते थे। सर का यह वाक्य आपको अपने काम के प्रति निश्चिंत कर देता था। यह एक वाक्य एक तरह का आश्वासन हुआ करता था। किसी कवि को धूप में पाँव जलने पर घर की याद आती थी, हमारे पाँव में जब भी जलन होती हम सर का फोन नम्बर लगाते, वहाँ यह एक वाक्य इस बात का आश्वासन था कि निश्चिंत रहो और अपना काम करो, सर के जाने के बाद से इस दिल में अजीब सा खालीपन महसूस होता है, लगता है जैसे अभी सर का फोन आयेगा और वो कहेंगे "देखता हूँ"।

गौतम सर से हम सीख सकते हैं कि एक शिक्षक पहले शिक्षक होता है बाद में अध्यक्ष, निदेशक, गॉड फादर या एक्टिविस्ट या कुछ और। आप चाहे किसी भी बड़े से बड़े पद पर पहुँच जाएँ पर अगर कक्षा को पढ़ाने की अपनी बुनियादी ईमानदारी बनाये रखते हैं तो आप यकीन जानिये गौतम सर के प्रति यही सच्ची श्रद्धांजलि होगी। बाकी भावुकतामय उद्गार क्षणिक होते हैं।

असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, शिवाजी कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

आकर्षक व्यक्तित्व और गूढ़ कृतित्व के धनी : प्रोफेसर रमेश गौतम

अनीता देवी

आज बहुत ही शुभ दिन अर्थात् गुरुपूर्णिमा है, सर्प्रथम मैं अपने जीवन को गढ़ने वाले अपने सभी गुरुओं और विशेष रूप से आदरणीय प्रो. रमेश गौतम सर के चरणों की वंदना करते हुए अपना यह लेख उनकी स्मृति में श्रद्धा स्वरूप समर्पित करती हूँ। मेरा यह सौभाग्य रहा कि मैं स्कूल से लेकर कॉलेज तक अपने शिक्षकों की चहेती रही। बात उस समय की है जब मैं एजुकेशन का हब माने जाने वाले सोनीपत शहर के प्रतिष्ठित 'हिंदू कॉलेज' से प्रथम श्रेणी में एम.ए. करने के पश्चात दिल्ली आयी और मैंने एम.फिल. (दिल्ली विश्वविद्यालय के उत्तरी परिसर) में दाखिला लिया। दिल्ली विश्वविद्यालय में मैं किसी को नहीं जानती थी इसलिए मेरे लिए न केवल दिल्ली एक नया शहर था बल्कि दिल्ली विश्वविद्यालय भी नया था।

उस समय हिन्दी विभाग के अध्यक्ष गौतम सर होते थे। दिल्ली विश्वविद्यालय में 'डॉ. रमेश गौतम' एक जाना-पहचाना नाम था, शिक्षा जगत में उनका एक बहुत ही खास और महत्त्वपूर्ण स्थान था। पहले दिन जब मैं फीस आदि की जानकारी लेने हिन्दी विभाग के ऑफिस में आयी तो मैंने देखा कि दरवाजे के ठीक सामने एक मेज पर बहुत सारी फाइलें रखी हुई हैं तथा उस कुर्सी पर बैठने वाला व्यक्ति बैठा नहीं है बल्कि हाथ में दो-तीन पेपर्स को उलटता-पलटता हुआ खड़ा है, साथ ही वह सामने खड़े एक विद्यार्थी को लगभग डाँटते हुए कह रहा था कि 'तुम्हें कहा था ना कि एक सप्ताह से पहले पूछने मत आना लेकिन तुम आज फिर आ गये हो.. मुझे बस तुम्हारा ही काम नहीं है, और भी दसियों काम हैं' ऐसा कहते-कहते उन्होंने मेज पर पहले से रखी कुछ फाइले हाथ में उठाई और बाहर निकल गये, मैं, जो दरवाजे से थोड़ा अन्दर की तरफ खड़ी थी और उनसे कुछ पूछती उससे पहले ही यह सब सुन और देखकर बाहर आ गयी। बाहर लड़के-लड़कियाँ हाथ में कुछ फाइल, तो कुछ साधारण-सा प्लास्टिक बैग लिये खड़े थे, लड़कों से तो बात करने की कहाँ हिम्मत थी क्योंकि हरियाणा से आयी थी और हरियाणा में तो लड़कियों को कॉलेज भेजते समय घर वाले पहले ही हिदायत दे देते हैं कि 'सुनों! अगर आगे पढ़ना है तो लड़कों से दूरी बना कर रखना...।' इसलिए मैंने वहाँ ऑफिस के सामने ही गलियारे में खड़ी एक लड़की से पूछा - "यहाँ एडमिशन के लिए डॉक्यूमेंट वेरिफिकेशन किससे कराना हैं?" उसने इशारा करते हुए कहा- "इनसे जो फाइल लेकर गौतम सर के रूम में गये हैं।" सुन कर मैं थोड़ा डर गयी कि कैसे काम होगा ये व्यक्ति तो बहुत गुस्सा करता है, खैर! मैं भारी कदमों से उस कमरे में जाने लगी जिस कमरे में वो कर्मचारी गये थे, लेकिन तभी पीछे से उस लड़की ने पूछा 'आप हिन्दी विभाग में पहली बार आयीं हैं?" ..यह सुन मैं जाते-जाते रुक गयी। मैने कहा- "हाँ हिन्दी विभाग ही नहीं मैं तो दिल्ली विश्वविद्यालय में पहली बार आयी हूँ।" उसके बाद उसे अपने एडमिशन के बारे में बताया और कहा कि मुझे डॉक्यूमेंट वेरिफिकेशन के लिए ऑफिस में बुलाया है। बातों-बातों में पता चला कि वो भी इसी काम के लिए आयी है, वो दिल्ली विश्वविद्यालय की ही विद्यार्थी थी इसलिए सब जानती थी, उसने मुझे कहा कि कोई नहीं, अभी वे गौतम सर के कमरे में हमारी ही फाइल लेकर गये हैं, शायद सर अन्दर हैं नहीं, जब वे बाहर आयेंगे तो हम दोनों एक साथ ही उनसे बात कर लेंगे। मैंने भी 'हां' में गर्दन घुमायी और उसके साथ चुपचाप खड़ी हो गयी। लेकिन लड़कियाँ हैं तो ज्यादा देर चुप रहना भी कहाँ सम्भव था, बात तो करनी ही थी इसलिए मुझे पता तो था कि हिन्दी के विभागाध्यक्ष कौन हैं? लेकिन फिर भी मैंने उससे पूछ ही लिया "विभागाध्यक्ष कौन हैं यहाँ? "डॉ. रमेश गौतम सर" कहकर वो चुप हो गयी, तभी मैंने देखा कि गलियारे में सामने कुछ सर खड़े थे, उनकी ओर इशारा करते हुए मैंने उससे पूछा "शायद सर वहाँ खड़े हैं।" उसने कहा "नहीं तो...!" फिर उसने कुछ समझते हुए कहा "लगता है तुम गौतम सर को नहीं जानती" 'ना' मैंने गर्दन हिलाई और उसे याद दिलाते हुए कहा कि "मैं तो यहाँ पहली बार आईं हूँ ना, इसलिए किसी को नहीं जानती। लेकिन मैं इससे पहले जहाँ पढ़ती थी, वहाँ अपने सभी सर और मैडम को जानती थीं, और वे भी मुझे अच्छे से जानते थे, मेरी एम.ए. में भी दूसरी पोजीशन आयी थी।" लेकिन ये सारी बातें मेरे लिए महत्त्वपूर्ण थी उसके लिए नहीं, इसलिए वह मेरी बातों को लगभग अनसुना करते हुए बस सुन रही थी, तभी उसको गलियारे में दूर से आते हुए सर दिखाई दिये, उसने तुरन्त मेरी ओर गर्दन घुमाकर और आँखों से इशारा कर कहा "गौतम सर आ गये।" मैंने भी उसी दिशा में अपनी गर्दन घुमायी जिस दिशा में उसकी गर्दन घूमी थी, मैंने देखा कि दूर से हल्के आसमानी रंग की शर्ट पहने, हाथ में मोटी-मोटी दो-तीन किताबें लिये एक सर हमारी तरफ आ रहे हैं, शायद सर लाइब्रेरी से आ रहे हैं ऐसा सोचते-सोचते मैं अपने अतीत में चली गयी और मेरी आँखों में हमने एम.ए. में पढ़ाने वाले 'वर्मा' सर की तस्वीर घूम गयी, एक बारगी में मुझे लगा कि जैसे दिल्ली विश्वविद्यालय में मुझे वर्मा सर मिल गये हैं, वही वर्मा सर जो जब कक्षा में आते थे तो उनके हाथ में इसी तरह एक मोटी-सी किताब होती थी और जिन्होंने मुझे पीएच.

डी. करने के लिए बहुत प्रोत्साहित किया था, वे चाहते थे कि मैं उनके अंडर पीएचडी करूँ... लेकिन तभी मुझे ध्यान आया कि वह सब अब बहुत पीछे छूट गया है। आज मैं हिन्दू कॉलेज में नहीं, दिल्ली विश्वविद्यालय में खड़ी हूँ।...अचेतन मन से बाहर आ मैंने उस लड़की से बस यूँ ही कह दिया "लगता है सर लाइब्रेरी से आ रहे हैं, "अरे नहीं..", उसने भी तुरन्त उत्तर दिया "मुझे पता है सर एम.ए. की क्लास लेकर आ रहे हैं, पहले सर के साथ हमारी क्लास भी इसी टाइम होती थी.. सर को आते देख गलियारों के पिलर से सटे बाकि खड़े विद्यार्थी भी थोड़ा-थोड़ा आगे की ओर निकल आये, लेकिन बीच रास्ते सर को एक और सर मिल गये और वे उनसे बतियाने लगे .. इसी दौरान हम दोनों की नजर सर पर ही थी, ताकि सर आयें तो हमारा काम आगे बढे, तब तक हम दोनों ने विभाग सम्बन्धी अन्य बातों के साथ-साथ अन्य शिक्षकों के आदि के बारे में भी कुछ-कुछ बातें की, वहाँ उपस्थित दूसरे विद्यार्थियों की बातें भी मैं सुन रही थी, उस दिन सर को देखकर, उनके सम्बन्ध में अन्य विद्यार्थियों से सुनकर मैंने यही महसूस किया कि गौतम सर का व्यक्तित्व तो आकर्षक था ही साथ ही उनमें एक गम्भीरता थी, जो उनसे मिलने वालो को सतर्क करती थी, दूसरा उनका कृतित्व भी ऐसा था कि हर कोई उनसे प्रभावित होता था।

दो-तीन दिन के पश्चात हमारी कक्षाएँ शुरू हो गयी, गौतम सर हमें नाटक वाला पेपर पढ़ाते थे। क्लास में सर के व्याखान को सब बच्चे बड़े ध्यान से सुनते थे, मैंने कभी किसी विद्यार्थी को सर की क्लास में बात करते हुए नहीं देखा या फिर सर को क्लास में बोलना पड़ा हो विद्यार्थियों को चुप रहने के लिए, ऐसा कभी नहीं हुआ। उनके व्याख्यान में मौलिकता होती थी, जहाँ तक मुझे याद आ रहा है सर कक्षा में अधिकतर बिना बुक्स के ही पढ़ाते थे, समस्त नाट्य साहित्य पर उनकी गहरी पैठ थी, नाटककार भारतेन्दु और प्रसाद को लेकर तो उनका जो विश्लेषण होता था, इन विषयों पर उनकी जो समझ और गहराई होती थी वह मैंने अन्य किसी के व्याखान में नहीं देखी। कक्षा में वे न केवल पढ़ाते थे बल्कि बीच-बीच में प्रश्न भी पूछते थे और अन्त में वे समूह बनवाकर हमें नोट्स बनाने के लिए विषय देते थे। मेरे पास आज भी वो नोट्स हैं जो उस समय सर के द्वारा बनवाये गये थे। उस समय परिसर में सर की छवि ऐसी थी कि अधिकतर विद्यार्थी उनसे जुड़ना चाहते थे, सब चाहते थे कि एम.फिल और पीएच.डी. उन्हीं के अंडर में करें, लेकिन सब इतने भाग्यशाली नहीं बने। विद्यार्थियों को सर से बात करते हुए डर लगता था, ऐसे विद्यार्थियों में मैं भी एक थी, उनसे बात करने से पहले बहुत सोचना-समझना पड़ता था कि सर के पास जाकर क्या बोलना है? ताकि कुछ भी ग़लत न बोला जाये। या इस बात को हम यूँ भी कह सकते हैं कि विद्यार्थियों के मन में सर की बहुत इज्जत थी, गूगल मैप की तो छोड़ो उन दिनों फोन भी नहीं होते थे, नॉर्थ कैंपस से मॉल रोड के बस स्टैंड तक मैं, आशा और कुसुम इकठ्ठे पैदल आते थे, एक- दो दिन आने के बाद जब हम बस के इंतजार में खड़े थे तो मैंने बड़े आत्मविश्वास के साथ कहा- "आशा अब तो मुझे पता चल गया है रास्ते का" "कल जब मैं सुबह क्लास के लिए आउँगी तो इसी बस स्टैंड पर उतरूँगी, मैंने उन दोनों को बस स्टैंड दिखाते हुए कहा "देखो इस पर लक्स शॉप का अड्वरटाइजार्मेंट (Advertisement) लगा है", इस पर पहले तो आशा और कुसुम थोड़ा प्यार से मुस्कराई फिर उसके बाद कुसुम में मुझे समझाया कि अनीता एड से पहचान मत बना, नजफगढ़ के नाले से बना, ये लक्स का एड तो रातों-रात बदल जाएगा, लेकिन नाला कहीं नहीं जाने वाला, उनकी बात बिल्कुल सही थी इसलिए अगले दिन मैं मॉल रोड से पहले पड़ने वाले नाले को पहचान बनाकर ही बस स्टैंड पर उतरी, आज भी जब मैं उस बस स्टैंड के सामने से निकलती हूँ तो मुझे उनकी ये बात जरूर याद आती है।

इस तरह धीरे धीरे पहचान बनने लगी, इस दौरान आशा के माध्यम से अनिल जी से भी परिचय हो गया था, कक्षा में अनीता यादव से भी मेरी अच्छी बनती थी।

कुछ दिनों के बाद एक दिन मैं अपनी कक्षा की कुछ लड़कियों के साथ विभागाध्यक्ष के कमरे के सामने वाले लॉन में बैठी कुछ नोट्स बना रही थी, तभी गौतम सर कुछ देर पहले ही विभागाध्यक्ष वाले अपने कमरे में आये थे और तुरन्त वापिस अपना बैग उठाकर कमरे से निकले और गलियारे में लगभग भागते हुए से जा रहे थे...उनके साथ-साथ कुछ और शिक्षक जो शायद कुछ मिनट्स पहले ही आये थे, वे भी सर के पीछे- पीछे जल्दी-जल्दी भागे जा रहे थे, ऑफिस स्टाफ भी कमरे से बाहर निकल सर को जाते हुए देख रहे थे, हम भी टकटकी लगाए यह सब देखकर समझने की कोशिश कर रहे थे कि आखिर हुआ क्या है? हम सब उठ खड़े हुए और उनके कमरे के बाहर जो उनका सहायक बैठता था उससे पूछा कि क्या हुआ, सर ऐसे क्यों भागे जा रहे हैं? तब उन्होंने हमें बताया कि डॉ.यामिनी गौतम जोकि सर की पत्नी हैं उनका एक्सीडेंट हो गया है। उनके पैर में बहुत ज्यादा चोट आयी है। यह सुनकर हम सभी दुआ करने लगे कि हे भगवान! मैम को ज्यादा चोट न लगी हो और वे स्वस्थ मिलें। एमफिल में लघु शोध प्रबंध के विषय चयन में अनिल जी ने मेरी सहायता की, गौतम सर विभागाध्यक्ष थे, तो विषय में सर ने थोड़ा बदलाव करने का सुझाव देकर अपनी स्वीकृति प्रदान की।

उसके बाद जब पीएच.डी, के लिए फॉर्म भरा तो मैंने ये तो निश्चित कर लिया था कि पीएच.डी. नाटकों पर ही करनी है, लेकिन ये समझ नहीं आ रहा था कि नाटक सम्बन्धी कौन-से विषय पर काम करना सही रहेगा? तब भी सर ही विभागाध्यक्ष थे। मैं विभाग में जाकर सर से मिली तो उन्होंने मुझे कहा कि बेटा आप पहले ऑफिस में रजिस्टर चेक करो कि आज तक किन-किन विषयों पर पीएच.डी. हुई है? उसके बाद अपनी रूचि के कुछ विषय लिखकर लाओ। मैं तभी आपको विषय बता पाऊँगा...उसके बाद मैंने ऐसा ही किया और मैं आठ-नौ टॉपिक लिखकर सर के पास गयी जिसमें से सर ने मुझे दो विषय चुनकर दिए- पहला "प्रसाद के नाटकों में आधुनिकता बोध" और दूसरा "गांधीवाद और नाटक" उसके बाद मेरा इंटरव्यू हुआ और मुझे पहले विषय पर पीएच. डी. करने का अवसर प्राप्त हुआ। मुझे इस बात की खुशी थी कि 'प्रसाद' गौतम सर के पसंदीदा नाटककार थे। इसी तरह मैं आगे भी सर के बताये रास्ते पर ही चली और चलती

गयी परिणामस्वरूप दो-तीन कॉलेजों में पढ़ाने के बाद मैंने मैत्रेयी कॉलेज ज्वाइन किया। वहाँ मुझे डॉ. यामिनी मैम का सानिध्य मिला। डॉ. यामिनी मैम तो ज्ञान की प्रतिमूर्ति हैं, उनका साथ तथा उनकी ज्ञान वाणी को सुनना भले किसे अच्छा नहीं लगता। मैंने उनसे बहुत कुछ सीखा और समझा, उनका भरपूर स्नेह और आशीर्वाद मुझे मिला और भगवान से प्रार्थना करती हूँ कि हमेशा मिलता रहे।

कॉलेज आते-जाते यामिनी मैम अपने-आप को लेकर मुझसे अक्सर कहती थीं कि वे जो कुछ भी हैं उसमें उनके पिता और तुम्हारे गौतम सर का ही योगदान है, मेरा कुछ नहीं है। तुम्हारे सर के बिना मेरा कोई अस्तित्व नहीं है, मैंने देखा सर मैम को हमेशा 'यामिनी जी' कह कर ही बुलाते थे, यामिनी मैम बताती थी कि तुम्हारे सर के हिसाब से सब कुछ समय पर और व्यवस्थित होना चाहिए फिर चाहे घर हो या ऑफिस, सर एक-एक कागज को बहुत सँभाल कर रखते थे। सर को नियमों की अनदेखी करना बिल्कुल भी पसंद नहीं था, सर को यह भी अच्छा नहीं लगता था कि कोई उनके घर उनसे मिलने जाये तो कुछ लेकर ही जाये, वे पहले ही मना कर देते थे, लेकिन खुद अतिथि के आतिथ्य का पूरा ध्यान रखते थे, मैम कहती थीं कि तुम्हारे सर घर आये मेहमान का हमेशा पूरा आदर-सत्कार करते हैं फिर चाहे सर उस व्यक्ति को पसंद करते हैं या नहीं, इस बात से आतिथ्य भाव में कोई फर्क नहीं पड़ता था।

गौतम सर की एक बात जो मुझे बहुत अच्छी लगती थी वो यह कि जो भी व्यक्ति उनसे मिलने उनके घर जाता था, सर हमेशा स्वयं उसको बाहर दरवाजे तक छोड़ने आते थे, फिर व्यक्ति चाहे उनसे छोटा हो या बड़ा। मैंने ये उन्हीं से सीखा और इस सीख को मेरे पूरे परिवार ने भी अपनाया।

एक बार की बात है कि मैत्रेयी कॉलेज में हमारा विभागीय लंच था और उस दिन अचानक मैम के ड्राइवर की तबीयत खराब हो गयी, मैम का मेरे पास फोन आया कि आज मैं तुम्हारे साथ ही कॉलेज जाऊँगी, जब हम कॉलेज जाने के लिए निकल रहे थे तो मैम ज्ञानी(मेड) से गाड़ी में खाने-पीने का सामान रखवा रही थी, उस समय सर भी पास ही खड़े थे, पहले तो वे चुपचाप देखते रहे, फिर अचानक से कहते हैं "यामिनी जी! वैसे तुम्हारे इन महिलाओं के कॉलेजों में खाने-पीने के कार्यक्रम बहुत होते हैं।" मुझे याद है मैम सर की इस बात पर काफी देर तक हँसती रही। आदरणीय प्रो. रमेश गौतम सर और डॉ. यामिनी गौतम मैम के व्यक्तित्व और कृतित्व से बहुत कुछ सीखने को मिला, अन्त में आभार प्रकट करते हुए बस इतना ही कहूँगी कि आपकी शिक्षाएँ जीवन भर मेरे साथ रहेंगी।

असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, मैत्रेयी महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

पुस्तकेषु च या विद्या पर हस्तेषु च यद्धनम्।
उत्पन्नेषु च कार्येषु न सा विद्या न तद्धनम्॥

(चाणक्य नीति शास्त्र)

यादों का झरोखा

प्रवीण भारद्वाज

मनुष्य के जीवन में कई पड़ाव आते हैं जब वह किसी लक्ष्य की प्राप्ति हेतु बाधाओं को दूर करता हुआ आगे बढ़ता रहता है, इन्हीं सब विविधमुखी मंजिलों को पार करते हुए हम किसी ऐसी मंजिल को सर्वोत्तम मानकर उसे अपनी संतुष्टि का आधार मान लेते हैं। मेरा लगाव हिन्दी जगत और उससे भी बढ़कर दिल्ली विश्वविद्यालय से हिन्दी में अध्ययन करना मात्र संयोग नहीं था, मैं उन सौभाग्यशाली व्यक्तियों में से हूँ जिनको अपने परिवार का स्वप्न पूर्ण करने का अवसर प्राप्त हुआ। गुरुवर रमेश गौतम की छवि और विद्वत्ता का एहसास मुझे उनकी शिष्या बनने से पूर्व ही हो चुका था।

खेड़ा खुर्द, उत्तर पश्चिमी दिल्ली का एक छोटा सा गाँव जिसमें मेरी बहन मीनू स्नातकोत्तर में हिन्दी विषय का चयन करती है। मेरे पिताजी पाठ्यक्रम की सभी पुस्तकें खरीद कर लाते हैं, क्योंकि पुलिस में होने के बाद भी उनका सपना था कि उनकी छः संतानों में से किसी की विशेष रूचि हिन्दी विषय में हो तो वह उसे हिन्दी में स्नातकोत्तर करने की प्रेरणा दें।

पुलिस की 24 घंटे की नौकरी को कर्मठ भाव से करने वाले, दादाजी की डाँट फटकार को शांत भाव से सुनने वाले, खेतों में धान की खेती सँभालने वाले मेरे पिताजी श्री सत्यनारायण भारद्वाज जी ने बड़े ही गर्व के साथ बहन मीनू को दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में स्नातकोत्तर की कक्षाओं में नियमित रूप से जाने के लिए प्रेरित किया। उन दिनों हमारे घर में पानी का माध्यम हैंडपंप हुआ करता था और आयु में 6 वर्ष छोटी होने के कारण मैं हैंडपंप से पानी खींचती थी और मीनू बहन बाकी काम करते हुए सुनाती थी आर्ट्स फैकल्टी की कमरा संख्या 62 के किस्से-"तुम नहीं जानती प्रवीण जो गौतम सर से एक बार चन्द्रगुप्त नाटक पढ़ लेता है तो वह जीवन भर उसके दिमाग में छप जाता है" मीनू बहन, सर के किस्से सुनाती रहती और मैं कितनी ही बाल्टी पानी भरती जाती। उसके(मीनू) के साथ, 'राम की शक्ति पूजा', 'चन्द्रगुप्त नाटक' चना जोर गरम' और पूरा एम.ए. हिन्दी और कला संकाय में गौतम सर के हर लेक्चर को सुनने के लिए मैं नौवीं कक्षा की छात्रा प्रवीण भारद्वाज अपनी बहन का बेसब्री से इंतजार करती।

समय धीरे-धीरे बीतता गया और मीनू बहन विवाह के बंधन में बँध कर अपने ससुराल चली गयी। मैं अब 12वीं कक्षा उत्तीर्ण कर चुकी थी और पिताजी ने घर की पुरानी चली आ रही परंपरा को कायम रखा, सभी भाई बहनों के मध्य मुझे आगामी पढ़ाई हेतु विषय विकल्प चयन की मेरी आकांक्षा सम्बन्धी प्रश्न किया।

"प्रवीण इकोनॉमिक्स, सबसे बढ़िया नंबर है इसमें एम.ए. करते ही नौकरी लग जाएगी" मेरे बड़े भाई विनोद भारद्वाज ने खाना खाते हुए बीच में ही कहा।

"कहा है ना खाने के बीच में नहीं बोलते" पिताजी ने डाँट कर उन्हें चुप किया।

"राजनीति विज्ञान, प्रवीण'' बहन पूनम बोली जो मुझसे दो साल बड़ी हैं, दौलत राम महाविद्यालय से राजनीति विज्ञान में ही विशेषज्ञता हासिल कर रही थी।

"इस बच्ची से पूछा है मैंने, इसका दिमाग मत भटकाओ, बता प्रवीण बेटा क्या करना है आगे?"

"पापा दौलतराम से हिन्दी ऑनर्स" मैंने धीरे से जवाब दिया।

मेरी आँखों के सामने 'राम की शक्ति पूजा' और 'चंद्रगुप्त' नाटक जैसी अति प्रभावशाली पुस्तकों को गौतम सर से पढ़ने का आकर्षण घूम रहा था।

पिताजी को तसल्ली हुई कि दोनों बहने इकट्ठी जायेंगी तो और भी अच्छा रहेगा पर मेरा पूरा ध्यान दौलत राम महाविद्यालय के सामने वाली उस इमारत पर था जिसमें पढ़ाते थे गुरुवर रमेश गौतम।

मैं स्नातक में अध्ययनरत होते हुए भी स्नातकोत्तर की विद्यार्थी की भाँति गहन चिन्तन के साथ हर विषय को समझती थी। जैसे ही मैंने अपनी स्नातक की शिक्षा पूर्ण कि मैंने अपने उस सपने को साक्षात् होते पाया। मैं कला संकाय में स्नातकोत्तर की कक्षा के लिए अंधेर नगरी नाटक को पढ़ाने वाले अपने गुरुवर रमेश गौतम सर का बेसब्री से इंतजार कर रही थी और मेरे सामने थे अति विशिष्ट कद के गहरी नीली और सफेद चौड़ी धारीदार कमीज पहने मेरे परम आदरणीय गुरु रमेश गौतम। मेरे हाथ में छः वर्ष पुराना मीनू बहन का उनकी एम.ए की गौतम सर की कक्षाओं का रजिस्टर था।

भगवान हर जगह होता है ऐसा मैं मानती हूँ, और वह हर किसी के मन की बात भी जानता है, मैं अपने विद्या वाचस्पति के शोध ग्रंथ पर हिन्दी विभाग प्रभारी परम आदरणीय प्रोफेसर रमेश गौतम सर के हस्ताक्षर चाहती थी, मेरी अभिलाषा भगवान ने पूरी की और मेरे शोध ग्रंथ पर हस्ताक्षर करने के उपरांत ही गौतम सर सेवानिवृत्त हो गये।

समय बदलता है, जर्जर हुई इमारत की मरम्मत कर उन्हें पुनः आकर्षक बनाया जाता है, फूलों की नई पौध लगायी जाती है, पर मजबूत नींव दृढ़ता से दिल्ली विश्वविद्यालय को सदैव आधार प्रदान करती है। ऐसी ही दृढ़ नींव गुरुवर रमेश गौतम।

उन्होंने अपने विद्यार्थियों को छायावाद के चार स्तम्भों के विषय में सिखाया और आज जब मैं दिल्ली विश्वविद्यालय के आधार स्तम्भों पर दृष्टि डालती हूँ तो मुझे वहाँ बरसों से स्थापित विवेकानन्द जी की प्रतिमा और उन्हीं विवेकानन्द जी का साक्षात स्वरूप गुरुवर रमेश गौतम जी की ओजस्वी, अमर वाणी ही चारों ओर गूँजती प्रतीत होती है।

अतिथि प्रवक्ता
हिन्दी विभाग, शिवाजी कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

वो गम्भीर व्यक्तित्व

दीपमाला

''बेटा तुम कहीं पढ़ाती हो? जी सर एपीजे स्कूल, पीतम पुरा पी.आर. टी. हिन्दी हूँ।'' एम.फिल. हिन्दी के मेरे साक्षात्कार में गौतम सर के द्वारा पूछे गये प्रश्नों में से एक प्रश्न यह भी था। सर से मेरी पहली मुलाकात इसी साक्षात्कार में हुई थी। मैं हैरान थी, कि इन्होंने कैसे जाना कि मैं कहीं पढ़ा रही हूँ? अपने खुद के जीवन संघर्षों से जूझती हुई मैं यहाँ तक पहुँची थी। उम्मीद के मुताबिक मेरा चयन एम.फिल के लिए हो गया था। वह भी सर के निर्देशन में ही, मैं काली आंधी (कमलेश्वर) में 'राजनीतिक चेतना' पर लघु शोध प्रबंध लिखने लगी। सर से विभाग में जाकर मिलना बस इतना ही होता था कि मैं जब अपना एक अध्याय पूरा करती तो सर को उसे जाँचने के लिए दे आती। जब वापिस वो अध्याय मुझे मिलता तो यह देखकर बहुत खुशी होती कि सर ने इसमें कोई कमी नहीं निकाली। मेरे कार्य से सर संतुष्ट हैं, यही बात मुझे आगे और अच्छा करने के लिए प्रेरित करती रहीं। मेरी एम. फिल. हिन्दी सर के निर्देशन में हुई यह मेरा सौभाग्य था। मैं पी.एच.डी.भी सर के निर्देशन में करना चाहती थी। लेकिन सर ने खुद ही डॉ.कुमुद शर्मा मैम को मेरे लिए निर्देशक के रूप में चुना था। जिससे मुझे खुशी तो नहीं हुई लेकिन सर का आदेश समझ कर मैंने इसे स्वीकार किया। यू.जी.सी नेट की परीक्षा उत्तीर्ण करते ही मैंने एपीजे स्कूल की नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। मुझे कॉलेज में पढ़ाना था यह मेरा एक सपना था जिसके लिए मैंने रात दिन करके नेट का पेपर पास किया था। लेकिन मेरे भविष्य की नींव तो यहीं एपीजे स्कूल से पड़ गयी थी। मैं दूसरी कक्षा के विद्यार्थियों को हिन्दी पढ़ाती थी। मेरी कक्षा में पढ़ने वाली बच्ची अमृषा भारद्वाज के पिता वीरेंद्र भारद्वाज जी से मेरी मुलाकात पेरेंट टीचर मीटिंग में ही पहली बार हुई थी और बात करते हुए सर को पता चला था कि मैं आदरणीय गौतम सर के निर्देशन में दिल्ली विश्वविद्यालय से एम.फिल कर रही हूँ।

मई 2006 में मैंने एपीजे स्कूल की नौकरी से त्यागपत्र दे दिया था क्योंकि अप्रैल 2006 में नेट की परीक्षा का परिणाम आया था शायद 26 अप्रैल 2006 को। मैं उसमें पास हो गयी थी। इसी समय दिल्ली विश्वविद्यालय के कॉलेजों में सहायक प्राध्यापक की भर्ती हेतु बहुत से विज्ञापनों को देखकर मैनें भी अपनी श्रेणी में आने वाली विभिन्न कालेजों की नौकरियों को भरना शुरू किया। मई 2006 में जितनी पोस्ट आयीं मैंने सब भरी। इसी बीच मेरी शादी जून 2006 में तय हो गयी थी। मैं गौतम सर को अपनी शादी का कार्ड देने गयी थी। उन्होंने पूछा था लड़का क्या करता है? मैंने सर को बताया कि दिल्ली पुलिस में सिपाही है। सर ने खुश होते हुए कार्ड रख लिया था। मैं नहीं जानती कि सर ने क्या सोचा होगा, लेकिन मेरे मन में एक तीव्र इच्छा थी कि मैं सर को अपनी शादी में बुलाऊँ। सर शायद अपनी व्यस्ताओं के कारण नहीं आ पाये। इससे मुझे कोई दुख नहीं हुआ था। मेरी घर में लगन की रस्में चल रही थी। एक कॉलेज का इंटरव्यू मैं नहीं दे पायी थी क्योंकि मेरी लगन से शादी तक के समय के बीच में वो पड़ा था, और हम लोगों में हल्दी लग जाने के बाद, कंगना बँध जाने के बाद घर से निकलने नहीं देते। मैं बहुत निराश हुई थी उस समय, पर कुछ नहीं कर सकती थी।

शादी के बाद मैंने कहीं भी घूमने जाने के लिए अपने पति को मना कर दिया था क्योंकि मुझे पूरी आशंका थी कि इसी बीच कहीं फिर से मेरा कोई इंटरव्यू न निकल जाये। यही हुआ भी मिरांडा हाऊस, कालिंदी, विवेकानन्द इन तीन कॉलेजों में मैं इंटरव्यू दे चुकी थी। हर बार इंटरव्यू में सर से सामना होता था। मुझे इसी में बहुत संतोष मिलता था कि सर को मेरी फ़िक्र है। मुझे याद है खालसा कॉलेज देव नगर में पोस्ट आयी थी। 3 अगस्त 2006 को मेरा इंटरव्यू था। एक पोस्ट के लिए 150 से भी ज्यादा लोग साक्षात्कार के लिए आये हुए थे। देखकर मैं बहुत घबरा भी रही थी। लेकिन कुछ दोस्तों के साथ बात करते करते समय निकल गया और मेरी बारी आ गयी। साक्षात्कार बहुत ही अच्छा हुआ। अगले दिन मेरे पास खालसा कॉलेज से फोन आया कि मैडम आपकी नियुक्ति हो गयी है। मेरी खुशी का ठिकाना नहीं था, मैंने तुरन्त गौतम सर को फोन करके बताया, सर ने पूछा किसने बताया? मैंने कहा सर कॉलेज से कॉल आया है और कल दस्तावेजों को लेकर आने के लिए कहा गया है। सर ने कहा बधाई हो और फोन रख दिया। 8 अगस्त 2006 को मैंने खालसा कॉलेज में ज्वाइन कर लिया था। इसके बाद मैं दो तीन बार सर से मिलने के लिए उन्हें बिना बताये विभाग गयी थी पर सर उस समय इंटरव्यू में बहुत व्यस्त रहते थे, इसलिए मिल नहीं पायी। मेरे लिए ये किसी सपने से कम नहीं था कि जून में शादी, अगस्त में नौकरी और सितम्बर 2006 में गर्भ धारण होने की सूचना ने मुझे जैसे आसमान पर पहुँचा दिया था। मैं नहीं जानती कि अपनी इस सफलता के लिए मैंने सर को कितनी बार धन्यवाद बोला। सर मेरे लिए ईश्वर से कम नहीं थे। मैंने उन्हें हमेशा यहीं समझा भी और आज तक मानती हूँ। मैं जब भी कॉलेज में कदम रखती हूँ यही सोचती हूँ ये सर का आशीर्वाद है। सर मेरे अन्नदाता, मेरे सपने को हकीकत में बदलने वाले, मेरी योग्यता को बिना बताए ही समझ जाने वाले मेरे जीवन के सबसे पहले व्यक्ति थे। मैं इसके बाद जून 2007 में हुई अपनी बेटी के लालन-पालन में लग गयी। साथ ही घर भी मेरे जिम्मे था। सासू माँ शादी से पहले ही परलोक सिधार गयी थी। मुझे हमेशा मन में यहीं रहता था कि सर का बताया कोई काम या उनके सान्निध्य में कोई

काम करूँ। लेकिन घर, कॉलेज और बच्चे की जिम्मेदारी में पिस कर रह गयी। एक बार सर से शिवाजी कॉलेज में ही एक संगोष्ठी में मुलाकात हुई थी और मैंने सर को अपनी यह इच्छा बतायी थी। सर ने आश्वासन दिया था कि वह मुझे जरूर बताएँगे। मुझे सर का व्यक्तित्व बहुत गम्भीर लगता था। उनकी आँखों से मुझे पता नहीं क्यों डर भी बहुत लगता था। मैं यामिनी मैम से सिर्फ एक ही बार मिली थी जब मैम सर के कमरे में जा रही थीं और मैं अपना अध्याय सर से वापिस लेकर आ रही थी। मुझे पता भी नहीं था कि मैम सर की धर्मपत्नी है। यह बात मुझे बहुत बाद में अमित खरब से पता चली थी। वह और मैं एम.फिल. में सहपाठी रहे थे। मुझे उससे इर्ष्या होती थी क्योंकि वह सर के साथ उनके बहुत से कार्य किया करता था और विभाग में ही अस्थायी रूप से कार्य करता था। मुझे ही नहीं शायद सभी सहपाठियों को हुआ करती होगी। हमारे बैच में सबसे पहली नियुक्ति रसाल की तदर्थ प्रवक्ता के रूप में लेडी श्री राम कॉलेज में हुई थी। फिर स्थायी रूप से भी रसाल और अमित खरब की ही सबसे पहले नियुक्ति हुई थी।

घर, नौकरी और बच्चों की जिम्मेवारियों ने मुझे उस तरह से जैसे मैं देखती हूँ सब जुड़े रहे गौतम सर से, मुझे जुड़ने नहीं दिया। सच कहूँ तो मेरी महत्वाकांक्षाएँ भी इतनी नहीं थी कि अपने से जुड़ी किसी भी जिम्मेदारी से अनभिज्ञ रहूँ। इनकी ड्यूटी और मेरे कॉलेज के समय में बहुत अन्तर रहता था। हम दोनों ने मिलकर बच्चों को बड़ा किया है। मैं कॉलेज जाती थी तब तक ये घर में रहते थे और जब मैं आती थी तब ये ऑफिस जाया करते थे। जीवन की इसी भागदौड़ में कब ये कोरोना काल आ गया पता ही नहीं चला। ये हमें पता ही नहीं होता कि हम किस व्यक्ति से कब आखिरी बार मिल रहे हैं। एक बार अमित ने ही बताया था कि सर रोहिणी रहते हैं। मैंने कहा मुझे सर के घर जाना है एक दिन। उसने हैरानी से पूछा तुम गयी नहीं कभी? ''मैंने बहुत उदासी से कहा था कि नहीं जा पाई अभी तक।''

मई 2021 में कोरोना का जो कहर टूटा वो किसी से छुपा नहीं है। मैं अपनी जेठानी की 5 मई 2021 को अकस्मात हुई मृत्यु के दुख से पूरी तरह टूटी हुई थी। अभी उस दुख से खुद को सम्भाल ही रही थी कि 26 अगस्त 2021 को कोरोना महामारी से जूझते हुए दुबई के अस्पताल में सर के निधन की सूचना फेसबुक से किसी मित्र की पोस्ट से मिली। यह सुनकर दिल धक् से रह गया कि सर अब शारीरिक रूप से नहीं रहे। मैं उनसे अब कभी नहीं मिल पाऊँगी। मैं क्या कोई भी नहीं मिल पाएगा। ये सोच-सोच कर मन बहुत आहत हुआ। आँखों से आँसू भी छलक पड़े। मन को समझाने के सिवाय कुछ भी नहीं बचा था। सर अब उस दूसरे लोक से ही सब निःस्वार्थ भाव से करते रहेंगे। जैसा इस लोक में रहते हुए करते रहे।

मेरी जितनी भी पदोन्नति हुई सब 2021 से 2022 के बीच हुई। मैं यही मानती हूँ कि ये सर के आशीर्वाद के बिना सम्भव नहीं थी। सर को सब पता है। सर सब देख रहे हैं। उनका आशीर्वाद अब हमेशा साथ रहता है। दुख अब इस बात का ही होता है कि अब उस मुश्किल समय से निकालने वाला वो गम्भीर व्यक्तित्व, वो दूरदर्शी महान पुण्य आत्मा शारीरिक रूप से आस-पास खोजने से भी नहीं मिल सकती। अब बस कोशिश रहती है उनके जैसा निःस्वार्थ व्यक्तित्व बनने की। जिसमें किसी का भला हो और यदि मेरे माध्यम से हो तो पीछे नहीं हटती। यही सर से सीखी और कमाई मेरी सबसे बड़ी पूँजी है।

प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, श्री गुरु नानक देव खालसा कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

"विद्ययामृतमश्नुमते"
(ऋग्वेद)

आदरणीय प्रोफेसर रमेश गौतम सर

कमलेश वधवा

आदरणीय परम श्रद्धेय गौतम सर का हम सभी के प्रति स्नेह था। अपने गुरुवर को श्रद्धांजलि स्वरूप मन के भावों को आपसे सांझा करना चाहती हूँ। मैं इन भावों को सर की मौजूदगी में सभी के सामने कहना चाहती थी लेकिन मुझे कभी अवसर ही नहीं मिला या हिम्मत नहीं जुटा पाई। मैं जब एम.ए. कर रही थी तो सोलहवें पेपर के स्थान पर प्रोजेक्ट का विकल्प था। मैंने भी प्रोजेक्ट को चुना। सर से बात हुई और सर ने 'प्रेमचंद के रंग टोली वालों के संग' विषय भी सुझा दिया। काम शुरू किया तो लगा मुश्किल पड़ेगा। इधर-उधर किसी से बात की तो उन्होंने भी कहा कि तुम्हारी घरेलू परिस्थितियाँ ठीक नहीं हैं, तुम पेपर ही दे दो वही आसान रहेगा। विषय चयन के समय इंटरव्यू बोर्ड के विशेषज्ञों की बातें भी याद आ रही थी कि बेटा तुम शादीशुदा हो, तुम्हारी जिम्मेदारियाँ भी ज्यादा हैं, क्यूँ इन चक्करों में पड़ रही हो? आराम से पेपर दो। प्रोजेक्ट मुश्किल रहेगा। गौतम सर ने वहाँ भी हिम्मत नहीं टूटने दी और मैंने कहा कि मैं कर लूँगी। मैं अपने पति के साथ सर के पास गयी और कहा कि सर हमारे घर की परिस्थितियाँ ठीक नहीं हें इसलिये मैं ये प्रोजेक्ट नहीं कर पाऊँगी। सर ने अत्यंत सहज भाव से कहा—बेटा प्रोजेक्ट छोड़ दो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मैं नाराज नहीं होऊँगा लेकिन बेटा परिस्थितियाँ तो हमेशा प्रतिकूल ही रहेंगी। सर के कहे ये शब्द मेरे जेहन में बैठ चुके थे। घर वापिस आते—आते, मैं दृढ़ निश्चय कर चुकी थी कि अब तो प्रोजेक्ट ही करूँगी। काम शुरू किया और सफल भी हुई। तब से लेकर आज तक जब भी कोई मुश्किल आती है तो हम दोनों सर के इन शब्दों को याद करते हैं और हमारे अन्दर हिम्मत आ जाती है। नये जोश के साथ आगे बढ़ने की कोशिश करते हैं। सर के व्यक्तित्व को मेरा मन कुम्हार के रूप में व्याख्यायित करता रहा है। एक कुम्हार की तरह अपने विद्यार्थियों को बाहर से रोबीला रूप दिखाते थे ताकि हम कहीं लापरवाही ना करें और अन्दर से स्नेह का हाथ रखते थे कि मेरे बच्चों को कोई कठिनाई ना हो। हमारे सर ज्ञान को सर्वोपरि मानते थे। उनकी सोच अपने विद्यार्थियों को मुक्त गगन में उड़ने के लिए प्रेरित करती थी हमेशा कहते थे 'बेटा शिक्षा जहाँ से भी मिले ले लो'। एम.फिल, पीएच.डी में शोध कार्यों से जुड़ें सभी कार्यों को सर के मार्ग दर्शन में करना अपने आप में सौभाग्य की बात है। एक - एक पाठ को ध्यान से देखा—पढ़ा, सुधार करना सिखाया लेकिन फूलों की तरह मंजिल तक भी पहुँचा दिया। एम.फिल में मेरा विषय 'नेपथ्य राग में स्त्री विमर्श' था। इस सफर में मुझे कई दिक्कतें आ रही थी जो मैंने खुल कर सर को बतायी नहीं थी फिर भी पीएच. डी के दाखिले के समय जब मैंने सर से कहा कि मैं पीएच.डी के लिए भी अन्य नाटकों के साथ इसी विषय का चुनाव कर लूँ तब सर ने कहा—नहीं बेटा बहुत हो गया है अब दूसरा विषय चुनेंगे। आज तक मैं समझ नहीं पाई कि सर बिना कहे मेरी पीड़ा कैसे समझ गये थे? नया विषय नई चुनौतियों को साथ लाया था लेकिन उससे निरन्तर नाटक देखने, समझने का जो सुअवसर मुझे मिला वो मुझे कभी ना मिल पाता। पीएच.डी के इंटरव्यू के समय सर के आदेश का कि बेटा अब आपने हर हफ्ते नाटक देखना है, मैंने पूरी ईमानदारी से पालन किया था। मेरे पति मजाक में सभी को कह भी देते थे कि गौतम सर की बात तो इसके लिए पत्थर की लकीर है। सर ने कभी भी अपने लिए तो कुछ माँगा नहीं था जो कहा बस हमारे हित के लिए ही। सर हमेशा कहते थे बेटा मेरी शुभकामनाएँ आपके साथ हैं। एक बार दीपावली का समय था और मेरी एम.फिल चल रही थी। हम सर के पास डरते-डरते मिठाई लेकर गये। सर ने कहा बेटा ये वापस ले जाओ। यहाँ कोई खाने वाला भी नहीं हैं। आप बच्चों को खिला देना। आप मान लो कि मैंने ले लिया हैं। हमने कहा कि अपने माता-पिता के लिए भी तो लाये हैं। आपका भी वही स्थान हैं हमारे लिए। सर ने कहा 'बेटा मैं आपका चैप्टर चेक नहीं करूँगा अगर वापस नहीं लिया'। जैसे छोटे बच्चों को कहना ना मानने पर डांटा जाता है वैसे ही सर का भोलेपन वाला गुस्सा जिसे देखकर उस समय मैं डरी भी थी पर आज जब स्मरण करतीं हूँ तो सर के सहज और निःस्वार्थ प्रेम से उन पर और भी अधिक गर्व महसूस करतीं हूँ। उस समय मैं अपने दोस्तों से सुना करती थी कि हमारे गाइड समय नहीं दे रहें या बहुत-बहुत देर तक प्रतीक्षा करवाते हैं। मैं सोचा करती थी कि गौतम सर तो ऐसा नहीं करते। धीरे-धीरे सर को जब मेरी परिस्थितियों का पता चला तो घर में भी समय मिलने लगा। इसका श्रेय तो हमारी गुरुमाँ यामिनी मैम को भी जाता है। पूरे आदर सत्कार के साथ मैम ने हमेशा हमारा स्वागत किया और कभी ये एहसास नहीं होने दिया कि उनके व्यस्त जीवन से हमने समय चुरा लिया है। बल्कि मैम की ज्ञान गंगा में सहज ही गोते लगाने का सौभाग्य भी मिल जाता था। सर को केवल इंसानों की नहीं बल्कि देश और प्रकृति की भी बहुत चिन्ता रहती थी। सर बहुत खुश होकर अपने लगाये पेड़ों को हमें दिखाया करते थे। सादगी भरा जीवन जीने वाले हमारे सर ने तो प्रकृति माँ को कभी क्षुब्ध नहीं किया होगा। कोविड के दौरान भी सर से जब भी बात हुई तो वही हिदायत देते रहे कि वधवा साहब हालात बहुत खराब हें। अपना ध्यान रखो, परिवार का ध्यान रखो। सभी का ध्यान रखने वाले सर का ऐसे अचानक चले जाना इतना दुखदायी था कि लगा जैसे अपने पिता को एक बार फिर खो दिया हैं। भगवान राम जैसे पवित्र, निष्ठावान, मर्यादित और महान चरित्र वाले गुरुवर को शत-शत नमन।

असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, अदिति महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

स्त्रीत्व का देवयानी पक्ष सर को स्वीकार्य नहीं था

अर्चना

2009 में एम. ए. में जब प्रवेश लिया और कैम्पस में पहली क्लास लेने गयी तो एक सीनियर ने कहा कि अब आपकी एम. ए. की पढ़ाई शुरू हो रही है कुछ बातें ध्यान में रखनी होंगी। जैसे अटेंडेंस अनिवार्य नहीं है, इसलिए जिस क्लास में कुछ समझ में न आए, उसे अटेंड कर अपना समय मत ख़राब करना। लेकिन कुछ क्लास लेना अनिवार्य है जिनसे हमें पढ़ने-लिखने की अन्तर्दृष्टि मिलती है। एम.ए. स्तर पर दो तरह के गुरुओं से सामना होगा। एक तरह के गुरु वे मिलेंगे जो विचारधाराओं के आईने में साहित्य पढ़ना सिखाएंगे। उनके अध्यापन में साहित्य गौण और विचारधारा मुख्य होगी। वे विचारधाराओं की पुष्टि के लिए साहित्य को नमूने के तौर पर पेश करेंगे। विचारधारा के किले को मजबूत बनाने के लिए साहित्य का ईट-गारे के तौर पर इस्तेमाल होता हुआ दिखाई देगा। साहित्य के अध्ययन-अध्यापन की यह एक अलग पद्धति है जो कई अर्थों में अनिवार्य, कुछ अर्थों में बहुत रूढ़ और बंद किले की तरह, लेकिन अति कठिन पद्धति है। दूसरी तरह के गुरु ऐसे मिलेंगे जिनसे यह प्रेरणा मिलेगी कि किसी तरह के विचार का कोई आग्रह या दुराग्रह पाले बिना साहित्य को साहित्य की तरह कैसे पढ़ा जाए। साहित्य जीवन का प्रतिबिंब है और उसी जीवन को जानने समझने का एक विचार भी है। वह किसी दर्शन को अभियक्ति देने का माध्यम मात्र नहीं है, न किसी विचारधारा की प्रतिमूर्ति खड़ा करने का औज़ार। वस्तुतः हमारा जीवन ही साहित्य का दर्शन है जिसकी वह कलात्मक प्रस्तुति करता है। इस बात को समझना ज़रूरी है। यह अध्ययन-अध्यापन की साहित्यिक पद्धति है। प्रोफेसर रमेश गौतम साहित्य की इसी अध्ययन पद्धति के प्रवक्ता हैं। उनकी कक्षा में कभी देर से मत आना। उनकी क्लास में उपस्थित होने से कभी चूकना मत। यह गौतम सर से मेरा पहला और अप्रस्तुत साक्षात्कार था। मेरे सीनियर द्वारा दिए गये इस परिचय से मैं कभी बाहर नहीं निकल पाई। बल्कि प्रत्यक्ष रूप से क्लास में सर का सामना करना एक और तरह का आभामंडल छोड़ गया। हम बड़े सौभाग्य शाली हैं जो हमें गुरु के रूप में गौतम सर मिले। व्यक्तित्व ऐसा कि देखते ही बात करने से पहले सोचना पड़े।

प्रोफेसर रमेश गौतम सर से हमें दो नाटक पढ़ने समझने का अवसर मिला। पहला नाटक था 'चन्द्रगुप्त' और दूसरा नाटक था 'ध्रुवस्वामिनी'। दोनों ही नाटक हिन्दी के सांस्कृतिक जागरण के मूर्धन्य नाटककार जयशंकर प्रसाद के हैं। स्वाध्याय के क्रम में दोनों नाटक पाठ और विश्लेषण दोनों ही दृष्टि से आकर्षक थे, लेकिन साहित्य सम्बन्धी अब तक जो हमारी स्नातकीय समझ बनी थी उससे बहुत आगे की रचना थीं वे। हमारे लिए उसे समझना और उसका विश्लेषण करना आसान नहीं था। बिल्कुल गौतम सर की तरह जो आपको आकर्षित भी करते थे, लेकिन उनसे बात करना उतना ही कठिन लगता था। व्यक्तिगत रूप से यह मेरी सीमा थी। इसलिए इन नाटकों पर सर को सुनने के लिए मैं बहुत उत्साह के साथ गयी। सर ने थोड़ी-बहुत हमारी जिज्ञासा जानने के बाद नाटक पर अपनी बात रखनी शुरू की। उनके कथनों का सार था कि पहला नाटक राष्ट्रीय सांस्कृतिक बोध और स्वाधीनता की चेतना की वैचारिकता से सम्पन्न नाटक है। जिसके दो हिस्से उनकी व्यख्या के केंद्र में होते थे। वे बाकायदा उसे उद्धृत करते हुए उस पर बात करते थे। पहला हिस्सा था - ''तुम मालव हो और यही तुम्हारे मन का अवसान है न? परन्तु आत्म सम्मान इतने ही से सन्तुष्ट नहीं होगा। मालव और मागध को भूलकर जब तुम आर्यावर्त का नाम लोगे, तभी वह मिलेगा। क्या तुम नहीं देखते हो कि आगामी दिवसों में आर्यावर्त के सब स्वतंत्र राष्ट्र एक के अनन्तर दूसरे विदेशी विजेता से पददलित होंगे?" ऐसा लगा जैसे सर हमें समझाने की कोशिश कर रहे हों कि कालजयी रचनाकार जयशंकर प्रसाद आज के समय में अनेक राज्यों में उठ रहे अलगाववादी आन्दोलन पर भी दूर-दृष्टि रखते हैं।

'चन्द्रगुप्त' नाटक में राष्ट्रीय एकता अखण्डता को व्यक्त करने वाले अलका के कथन को वे उद्धृत करते ''...भाई तक्षशिला मेरी नहीं और तुम्हारी भी नहीं। तक्षशिला आर्यावर्त का एक भू-भाग है, वह आर्यावर्त की होकर ही रहे, उसके लिए मर मिटो।'' इस उद्धरण को रखने के बाद वे जिस उद्दाम भावना लेकिन संयत स्वर में उसकी व्याख्या करते थे वह रोंगटे खड़े कर देती थी। नाटक के मर्म को बड़े ही सरल सहज ढंग से हम विद्यार्थियों तक सम्प्रेषित कर देते थे। ऐसा लगता था कि आप न सिर्फ अतीत के गौरव बोध से भरे जा रहे हैं, बल्कि राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन की एक हल्की सी प्रशांत लहर आप तक पहुँच रही है और आप उससे आप्लावित हुए जा रहे हैं। स्वयं उनके भीतर एक अखंड राष्ट्रवाद की भावना हिलोड़ें लेती रहती थी, जो पाठ और विश्लेषण की प्रक्रिया में बिना चीख-चीत्कार और शोर - शराबे के हमारे भावात्मक संवेदन के हिस्से बनते चले जाते थे। और हमें समझ में आया कि चन्द्रगुप्त नाटक न सिर्फ अतीत गौरव की गाथा का महाकाव्यात्मक नाटक है, बल्कि वह राष्ट्रीय एकता, साम्प्रदायिक सद्भाव, अन्तर्राष्ट्रीय सौमनस्य और स्वाधीनता की दैदीप्यमान चेतना का नाटक है। इस व्याख्या के पीछे आज़ाद भारत में उभरने वाली क्षेत्रवादी विखंडनकारी भावना भी थी शायद, जिस पर गौतम सर चन्द्रगुप्त नाटक के माध्यम से बार-बार कुठाराघात करते थे। दरअसल वे अखण्ड भारत के निर्माण के पक्षधर, हमारे समय की बौद्धिक चेतना के प्रखर प्रतीक थे। साहित्य को उसकी समकालीनता के साथ अपने विद्यार्थियों तक पहुँचाना उनका लक्ष्य होता था।

इसी कड़ी में वे एक और उद्धरण रखते जो उनके साहित्य चिन्तन की केंद्रीय कुंजी की तरह था। इसमें एक हिस्सा दांडायान के कथन से होता - ''जयघोष तुम्हारे चारण करेंगे, हत्या, रक्तपात और अग्निकांड के लिए उपकरण जुटाने में मुझे आनन्द नहीं। विजय-तृष्णा का अन्त पराभव में होता है, अलक्षेन्द्र, राजसत्ता सुव्यवस्था से बढ़े तो बढ़ सकती है, केवल विजयों से नहीं।'' तो दूसरा हिस्सा आचार्य विष्णुगुप्त अथवा चाणक्य का होता जो आम्भीक के इस दुर्वचन के प्रतिक्रिया स्वरूप आता है, ''आम्भीक (क्रोध से): बोलो ब्राह्मण, मेरे राज्य में रहकर, मेरे अन्न से पलकर, मेरे ही विरूद्ध कुचक्रों का सृजन।

चाणक्यः राजकुमार, न ब्राह्मण किसी के राज्य में रहता है और न किसी के अन्न से पलता है, स्वराज्य में विचरता है और अमृत होकर जीता है। यह तुम्हारा मिथ्या गर्व है। ब्राह्मण सब कुछ सामर्थ्य रखने पर भी स्वेच्छा से इन माया स्तूपों को ठुकरा देता है। प्रकृति के कल्याण के लिए अपने ज्ञान का दान देता है।''

सर दांड्यायाण और चाणक्य के इस कथन को भारतीय बौद्धिक संस्कृति के प्रतीक के रूप में देखते थे। वे मानते थे कि दांडायान छल-बल हिंसा रक्तपात आदि जैसे अशुद्ध साधनों का उपयोग करने वाली सत्ता के अहंकार को आईना दिखाने वाले निर्भीक और आध्यात्मिक भारतीय बुद्धिजीविता के आदर्श प्रतिरूप थे। और चाणक्य उसी आदर्श बौद्धिकता के व्यावहारिक और प्रायोगिक रूप की अग्निधर्मा छवि थे। वे निर्भीकता और शांति के पैरोकार होते हुए भी समय आने पर खड़ग प्रयोग की भूमिका पहचानते थे। इस तरह गौतम सर ब्राह्मणत्व को एक उद्दात्त और गरिमामयी रूप में देखते थे, जो स्व-सुख, स्व-सत्ता या किसी अन्य तरह के मोह से मुक्त निरन्तर राष्ट्र सेवा भाव से जीता है। सर की व्याख्या यह प्रतिध्वनि दिए बिना नहीं रहती थी कि भारत के हज़ारों सालों की गुलामी का कारण कहीं न कहीं क्षत्रिय शक्तियों के द्वारा इस ब्राह्मणत्व शक्ति की गहरी उपेक्षा भी रही है। समकाल में पुनः वह आध्यात्मिक, निर्भीक बौद्धिक शक्ति परदे के पीछे धकेली जा रही है। एक राष्ट्र के रूप में यह अकल्याणकारी बात है। इसका उस जातीय राजनीति से कहीं कोई सम्बन्ध नहीं है जो अपनी सत्ता पिपासा में जाति के नाम पर राष्ट्र को पुनः क्षेत्रीयता और खंडित राष्ट्रीयता की तरफ धकेल रही है।

इसी दृष्टि से वे स्त्री चेतना के रचनात्मक सरोकारों को ध्यान में रखते हुए 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक का अध्ययन करने के लिए प्रेरित करते थे। सामाजिक सकारात्मक मर्यादा, परिवार संस्था के नैतिक स्वरूप के सापेक्ष, राष्ट्रीय जीवन में उदात्त नैतिक मूल्यों के संरक्षण के संदर्भ में स्त्री चेतना के अध्ययन को भी वे बहुमूल्य मानते थे। ध्रुवस्वामिनी के माध्यम से वे स्त्री स्वातंत्र्य के नैतिक पक्ष का समर्थन करते थे। लेकिन स्त्रीत्व का देवयानी पक्ष (वन एपल इज नॉट एनफ फॉर होल ऑफ़ द लाइफ, टेस्ट मोर) सर को स्वीकार्य नहीं थे,क्योंकि 'देवयानी का कहना है' (लेखक—रमेश बक्षी) नाटक की देवयानी सर्व नकारवादी धारणा की शिकार है। वह न विवाह संस्था में विश्वास करती है, न संतति में और न भारतीय संस्कृति में। सर का मानना है वह एक गंधहीन पुष्प की तरह है, जो शोभा तो बढ़ा सकती है, लेकिन जीवन में कुछ भी शुभ पैदा नहीं कर सकती। सर का विमर्शवादी नाटकों पर यह एक गहरा आक्षेप था। और इसे लेकर वे दृढ़ थे। सर किसी तरह के अतिवाद को स्वीकार नहीं करते थे। नाटक अध्ययन को लेकर इतनी साफ़ और स्पष्ट दृष्टि बहुत कम अध्यापकों में थी। गौतम सर थोथे आदर्शवादी दृष्टि के कायल नहीं थे। जीवन में उसकी व्यवहार्यता और साहित्य के व्यावहारिक अध्ययन में उसकी भूमिका तक ही वे आदर्शवाद को वरेण्य मानते थे।

उनसे पढ़ने का मौका मिला और नाट्य अध्ययन कि तरफ मेरा रुझान बढ़ता चला गया। यही कारण है कि एम. ए. में मैंने उनके निर्देशन में रंगमंच का प्रोजेक्ट किया था। और एम.फिल. में उन्हीं के निर्देश में लघुशोध प्रबंध लिखने का अवसर मिला। पीएच.डी. में भी विषय चयन से लेकर शोध को आगे बढ़ाने में गौतम सर निरन्तर मार्गदर्शन करते रहे।

आज मैं नाटक और रंगमंच के विषय में जो भी समझ रखती हूँ वो गौतम सर की देन है। गौतम सर के अन्य विद्यार्थियों से ज्यादा मैं सौभग्यशाली हूँ कि मुझे गौतम सर के साथ यामिनी मैडम भी गुरु के रूप में मिलीं। यामिनी मैडम मातृतुल्य हैं और गौतम सर पितृतुल्य। एक गुरु के रूप में उन्होंने हमारे ज्ञान चक्षु खोले, वहीं एक पिता की तरह अविभावक की तरह हमारे भविष्य को लेकर भी निरन्तर मार्गदर्शन करते रहे। अपने विद्यार्थियों को लेकर उनके जितना कन्सर्न्ड गुरु बिरलों को ही मिल पाता है। गौतम सर की सूक्ष्म दृष्टि विद्यार्थियों को परख लेती थी और दूरद्रष्टा दृष्टि उनके हित में कार्य करती थी।

अध्ययन-अध्यापन से अलग एक बात जो उनकी अत्यधिक आकृष्ट करती थी वह थी अनुशासन और बाहरी व्यक्तित्व। उन दिनों आम तौर पर हिन्दी अध्यापकों में एक खास तरह कि शिथिलता दिखाई देती थी। वह शिथिलता या तो ज्ञान के प्रति जिज्ञासा की होती, या आचरण की शिथिलता होती थी। नहीं कुछ तो बाहरी व्यक्तित्व ही इतना ढीला ढाला होता कि वे कोई आकर्षण नहीं पैदा कर पाते थे। जबकि गौतम सर जितने दृष्टि सम्पन्न और प्रत्युत्पन्न मति व्यक्ति थे, उतने ही बाहरी तौर पर अनुशासित और व्यवस्थित व्यक्तित्व था उनका। न फालतू बोलना, न फालतू सुनना और न फालतू सुनाना। जैसे वे कबीर की इस धारणा के कि 'बोलत बोलत बढ़हिं विकारा' के साक्षात् प्रतिमूर्ति हों। एक डैसिंग पर्सनैलटी थी उनकी। हिन्दी वालों में रहते हुए हिन्दी वालों से भिन्न। जैसा कि एक मेक्सिकन फ्रेज का अंग्रेजी रूपांतरण है "इफ यू लिव इन मेक्सिको यू मस्ट लुक लाइक मेक्सिकन।" उसी तरह वे मानते थे कि अगर आप पढ़े-लिखे शिक्षित नागरिक हैं तो आपको वैसा दिखना भी चाहिए। व्यक्तिगत रूप से वे इस बात का पूरा पूरा निर्वाह भी करते थे। उनके विद्यर्थियों पर भी सर की इस व्यावहारिक सोच और आचरण का पूरा-पूरा प्रभाव दिखाई देता है।

असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, श्री गुरु नानक देव खालसा कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

स्मृति के गलियारों से होते हुए...

पूनम शर्मा

शोक और पीड़ा के कटघरे में खड़े हो जब भी मैं, उस उन्मुक्त, संतोषी, गहरे आकाश की ओर निहारती हूँ तभी सर की शान्त, स्नेहमयी, उत्साहवर्धिनी, निर्माणकारी छवि दोनों हाथ उठाकर आशीर्वाद देती दिखाई देती है। स्मृति-पटल पर सर की एक-एक बात याद हो आती है, जहाँ विश्वविद्यालय के हिन्दी- विभाग के गलियारे से होते हुए मन एक बार पुनः दौलतराम महाविद्यालय में पढ़ाते सर के पास पहुँच जाता है, जहाँ सर चाणक्य की भूमिका में अपने सभी शिष्यों को सदैव शीर्षस्थ पर ले जाने की चाह और राह में रत दिखाई देते। जब भी सर से आशीर्वाद लेती तो उनका एक ही वाक्य होता—''ईश्वर तुम्हारी सभी सद्इच्छाएँ पूरी करें।'' कर्मठता, ईमानदारी, मेहनत, ईश्वर पर विश्वास, बड़ों की सेवा, निरन्तर अध्ययन की आदत और सद्इच्छाएँ सभी कुछ सर से बात करते हुए, बातों ही बातों में ह्दय पटल पर छप जाता। सर ने कभी 'शार्टकट ' नहीं सिखाया, निरन्तर अध्ययन तपस्या के साथ आगे बढ़ने की बात आती। गुरुवर से पढते और बात करते समय ज़िन्दगी की कितनी ही बातें और रास्ते साफ दिखाई देने लगते थे। नाटक पढ़ाते समय कैसे हर एक नाटक से जीवन का सार निकाल कर उसे हमारे आज के साथ जोड़कर समझा देते। 'चन्द्रगुप्त' हो या 'पगला घोड़ा', 'भारत दुर्दशा' हो या 'अंधेर नगरी' आज भी हमारे मनोमस्तिष्क से जाते नहीं है। सर की अध्यापनकला का गुण ही था कि नाटक के हर पहलू पर हमें विचार करने के साथ उसे आज के परिप्रेक्ष्य में देखने के लिए हर सम्भव साधन देते थे। जीवन और शिक्षा के सत्य, शिव और सुंदर रूप को पहचानने की दृष्टि और शक्ति मुझे परम श्रद्धेय गुरुवर गौतम सर से ही मिली।

सर ने शिक्षा जगत को जिस मुकाम पर लाकर खड़ा किया है वह कोई विरला ही कर पाता है। मैं उन्हें शिक्षा जगत के भारतेंदु के रूप में देखती हूँ, जिनकी दूरदृष्टि ने यह पहले ही भांप लिया था कि विश्वविद्यालय की भलाई कैसे हो सकती है? विश्वविद्यालय और विभाग के लिए किये गये उनके अथक प्रयासों को शत्-शत् नमन।

प्रतिदिन मेरे लिए 'दिन' होता है उनकी निश्छल आत्मा की उज्ज्वलता का, उल्लास में पगी उनकी स्मित मुस्कान का, लिखने-पढ़ने में रत उनके बौद्धिक मन का और दिन होता है पोर-पोर में बसी उनकी जिजीविषा और जीवनासक्ति का। स्मृति के गलियारों में जितना भी झांक केवल उनके आशीर्वाद देते स्तंभ रूपी हाथों को ही देख पाती हूँ, उनसे दोबारा मिलकर यह कह पाना कि 'सर आपके बताए और बनाए रास्तों पर चलने का अथक प्रयास कर रही हूँ' इस जीवन में तो सम्भव नहीं। यह असम्भवता की पीड़ा निरन्तर सालती है। ईश्वर से कामना है प्रत्येक मनुष्य जन्म में मुझे पितृ तुल्य गुरु के रूप में सर का साथ मिले। शिष्य रूप में सर के साथ बिताया समय तो उस रामकथा के समान है जो कभी समाप्त नहीं हो सकता, नित्य एक नया अध्याय खुल जाता है।

सर की स्मृति में शत् शत् नमन्...

प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, माता सुन्दरी कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः॥ (ऋग्वेद)
(बिना परिश्रम किये देवों की मैत्री नहीं मिलती।)

रमेश गौतम सर की पुण्य स्मृति को नमन

नवनीत कुमार

वर्ष 2006 में मुझे दिल्ली विश्वविद्यालय के हंसराज कॉलेज में दाखिला मिला। उसके दो महीने बाद कुछ मित्रों के साथ आर्ट्स फ़ैकल्टी में हिन्दी विभाग को देखने आया था। शाम के वक्त अक्सर विभाग में कम ही लोग मिलते हैं, इसलिए लगभग खाली-खाली था। मैंने मौका देखकर अध्यक्ष के कमरे में झाँका, अध्यक्ष की कुर्सी खाली थी। किंतु, पीछे की दीवार पर लगे ऑनर्स बोर्ड पर मेरी नज़र गयी तो तमाम नामों के बीच एक नाम, जिसने मुझे सबसे अधिक आकर्षित किया, वह था 'प्रोफेसर रमेश गौतम'। इसका कारण मुझे बहुत देर से पता चला, जिसे आपको भी समझाने का यत्न करूँगा। उस दिन मैं हॉस्टल तो आ गया किंतु गौतम सर से मिलने की चाह मन में हमेशा बनी रही। समय बीतता गया, 3 साल बाद एम.ए. प्रथम वर्ष की कक्षा में गौतम सर से सीधा सामना हुआ जब वह 'स्कंदगुप्त' पढ़ाने के लिए आए। उस दिन उनके मुख पर जो तेज देखा था, वह कभी कम नहीं हुआ और वह मुझे आज भी नहीं भूलता है। विद्यार्थियों की इतनी भीड़ और ऊपर से चरण-वंदना वाली फौज के बीच से होकर मेरे लिए गौतम सर की नज़र में आना बड़ी बात थी। इतना साहस मैं कभी कर पाऊँगा, यह सोच कर ही मन हार जाता था। इसे अपना सौभाग्य कहूँ या दुर्भाग्य, एक दिन सुबह 09:30 बजे की कक्षा में सर 'भट्टार्क' और 'प्रपंच बुद्धि' को पढ़ा रहे थे। तभी उनकी नज़र कक्षा में सबसे पीछे से दूसरी पंक्ति में बैठे मुझ पर और मेरे मित्र (नामोल्लेख जरूरी नहीं) पर पड़ी। एक बुलंद आवाज—''हाँ भई! वो पीछे आप दोनों! मैं पिछले 25 मिनट से देख रहा हूँ कि आपलोग पढ़ाई छोड़कर कुछ अन्य काम में व्यस्त हैं। ख़ैर, आपलोग जो भी कीजिए लेकिन प्लीज! आपलोग क्लास को डिस्टर्ब मत कीजिए और कक्षा के बाद अगर आप लोग के पास समय हो तो मुझसे बाहर मिलिए।'' इतना सुनते ही शरीर के सभी कनेक्शन एक्टिव हो गये, चेतनता तुरन्त लौट आयी। कक्षा समाप्त होने के बाद जब बाहर सर से मिले तो सर ने पूछा- क्या नाम हैं आपका? मैंने कहा—'नवनीत'। सर ने पुनः कहा—''श्रीमान नवनीत! बहुत सुंदर नाम है। पढ़ाई में ध्यान दीजिए।'' उस दिन के बाद सर की कक्षाओं में चौतन्य और नियमित हो गया। कोर्स पूरा हुआ, परीक्षाएँ सम्पन्न हुई, नया सेमेस्टर शुरू हुआ।

एम.ए. के दूसरे वर्ष, चौथे सेमेस्टर में विकल्प का चयन करना था। मैं बड़ी दुविधा में था। कुछ मित्र कहते कि भाषाविज्ञान पढ़ना सही रहेगा क्योंकि इसमें नंबर अधिक मिलते हैं। कुछ कहते कि आधुनिकता की ओर कदम बढ़ाकर आगे चलें, कुछ कहते कि भक्ति में ही शक्ति है (ये अलग बात है कि भक्तिकाल का विकल्प चला नहीं) किंतु, जीवन एक रंगमंच है, सभी को अपना किरदार निभाना होता है। फिर एक अन्य मित्र (नामोल्लेख जरूरी नहीं) ने भरोसा दिलाया कि चलो हम हैं, सब हो जाएगा, मिलकर कर लिया जाएगा। फिर सर के मुख का वो तेज, जिसका जिक्र मैंने ऊपर किया है, मुझे रंगमंच विकल्प का चयन करने को प्रेरित किया। कक्षाएँ शुरू हुईं, सर नियमित रूप से प्रतिदिन समय से अपनी कक्षा पढ़ाते थे। भारतेंदु, प्रसाद और मोहन राकेश सर के प्रिय थे। ख़ासकर—भारतेंदु; नीलदेवी सर का प्रिय नाटक था। एक बार रंगमंच की कक्षा में सर भारतेंदु पर बात करते हुए केवल नीलदेवी के उदाहरण और चरित्र बताते जा रहे थे। काफी देर बाद सर ने ही पूछा—''अरे भई! क्या फुसर-फुसर कर रहें हैं आपलोग''। किसी ने कहा—''सर नीलदेवी तो स्लेबस में है ही नहीं'' फिर सर ने कहा- "ओहो ध्यान से उतर गया मुझे लगा मैं आधुनिक काव्य विकल्प की कक्षा ले रहा हूँ। मुस्कुराते हुए सर ने कहा कोई बात नहीं - माई मिस्टेक, माई मिस्टेक''

अब परियोजना कार्य करने की बारी आयी। विभाग द्वारा सभी शिक्षकों को आबंटित विद्यार्थियों की सूची सूचना पट्ट पर लगा दी गयी। सौभाग्य से मेरा नाम गौतम सर के साथ था। हफ्ते भर बाद विभाग की गैलरी में सर मिले, प्रणाम स्वीकारते हुए सर ने कहा—''श्रीमान नवनीत! 35 से 40 पेज में परियोजना कार्य को लिखकर विभाग में नरेश (कार्यालय सहायक) के पास जमा कीजिए। परियोजना के काम में कोई कठिनाई हो तो कभी भी मिलिएगा।" यह सर के साथ मेरा दूसरा संवाद था। परियोजना कार्य पूरा हुआ, परीक्षाएँ सम्पन्न हुई, परिणाम जारी हुआ, मैं एम.ए. उत्तीर्ण हो गया।

सितंबर, 2011 में एक दिन श्री मुन्ना पाण्डेय सर, जो जीवन पर्यंत शिक्षण संस्थान (ILLL) में डेप्यूटेशन पर फ़ेलो थे, उनका फोन आया- 'नवनीत! कुछ टाइपिंग का काम है। करोगे? मैंने अपनी सहर्ष सहमति दी। मुन्ना सर ने शाम को ILLL बुलाया। जब मैं ILLL गया तो देखा वहाँ निदेशक के कक्ष पर गौतम सर की नाम पट्टिका लगी है। मुन्ना सर से मैंने हिम्मत करके पूछा कि सर हैं? तो सर ने कहा—सर आज दोपहर बाद नहीं आए। पाण्डेय सर से टाइपिंग सामग्री लेकर मैं घर आ गया और फ़िर इसी क्रम में मेरा ILLL आना-जाना शुरू हो गया। एक दिन गौतम सर से वहीं सामना हो गया- प्रणाम स्वीकारते हुए सर ने कहा- हाँ भई, श्रीमान् नवनीत! टाइपिंग का काम लिया है, ज़िम्मेदारी से करना। मैंने केवल हाँ में सिर हिलाया और तेजी से कदम बढ़ाते हुए निकल गया। अब टाइपिंग काम में और अधिक उत्साह आ गया। एक के बाद एक और फिर काफी काम मिलने लगे, काम का दबाव भी बढ़ने लगा। अन्य विषय के अध्येता सर लोग भी टाइप, डिजाइन और पेज सेटिंग करने का आग्रह करने लगे। मैं कभी मना भी नहीं करता था। किंतु एक दिन एक अध्येता जब मुझे काम सौंप रहे थे, तब गौतम सर ने देख लिया,

फिर क्या था, उसी क्षण संवाद कक्ष में सभी के सामने सर ने कहा—''श्रीमान नवनीत! यहाँ केवल मेरे रिक्वेस्ट पर आते हैं और काम करते हैं। इनको केवल मैं या फ़िर मुन्ना ही काम सौंप सकते हैं तो आगे से... आप लोग प्लीज! इस बात का जरूर ध्यान रखिएगा।'' फिर मुस्कुराते हुए अपने कमरे की ओर चले गये। अक्सर दोपहर में जब भी कहीं बाहर बैठकों में या किसी काम से जाते तो मुझे बुलवाते और मुस्कुराते हुए कहते श्रीमान! आज आपको मेरा लंच बॉक्स भी फिनिश करना है। एक बार मेरी तबियत ज्यादा ख़राब थी हफ्ते भर बाद जब ILLL आया था। लंच में सर भी हमलोगों के साथ ही बैठकर लंच कर रहे थे, सर ने पूछा- "क्यों भई श्रीमान! क्या हुआ? इतनी तबियत कैसे ख़राब हो गयी?" मैंने कहा- 'सर, ब्लड प्रेशर और सुगर दोनों बढ़ गया था।' सर ने कहा- "यार! चीनी और नमक दोनों ही नहीं रहा आपके जीवन में, फिर 'रस' तो बचा ही नहीं। सभी एकदम से हँस पड़े। फिर सर ने कहा- "हँसो मत भई! इनकी तबियत ख़राब है। लेकिन, आप श्रीमान! मुस्कुराते रहा कीजिए, अच्छे लगते हैं।"

एक दिन दोपहर में सर ILLL में थोड़ी देर से आये थे। उनके आते ही सभी फ़ेलोज सर से मिलने की तैयारी कर ही रहे थे तभी सुश्री काबेरी (निजी सहायक) ने आवाज दिया- 'नवनीत जी! सर बुला रहे हैं।' कंटेंट क्रिएशन कक्ष में बैठे सभी फ़ेलोज सोच में पड़ गये। ख़ैर, मैं तुरन्त गया। प्रणाम का जबाब देते हुए सर ने कहा—"श्रीमान नवनीत! ये पैकेट लीजिए, इसको लेकर किंग्सवे कैंप जाइए और काम निपटाकर आइए और यह काम किसी को पता न लगे, तुम्हारे मुन्ना सर को भी" मैंने तुरन्त पैकेट उठाया और निकला पड़ा, काम खत्म करके आ गया। शाम को घर जाते समय सर की कार के पास सभी लोग खड़े थे। मैं भी था लगभग सभी के पीछे। सर की नज़र मुझ पर पड़ी तुरन्त कहा—''हाँ भई श्रीमान! यार उस काम के लिए तुम्हें दिल से धन्यवाद।'' पास में खड़े एक वरिष्ठ अध्येता तुरन्त पूछ बैठे—सर कौन सा काम नवनीत ने किया? सर ने उनसे मुस्कुराते हुए कहा—''यह मेरे और श्रीमान नवनीत के बीच की बात है, आप लोग न पड़ें इस चक्कर में।" हँसते हुए सर अपनी कार में बैठकर चले गये।

किसी दिन एक दोपहर में जेएनयू से प्रो. रामबख्श सर ईपीजी पाठशाला के लिए वीडियो रिकॉर्डिंग के लिए ILLL आये थे। सभी बैठे थे। इसी बीच कुछ प्रूफ दिखाने के लिए मैं पहुँचा था। सर ने प्रूफ किनारे करके कहा—डॉ. साहब! यार इस लड़के की नौकरी लगवानी है, बड़े अहसान हैं मुझ पर, लेकिन ये महाशय नेट ही नहीं निकाल रहे हैं तो अब इनको पी-एच.डी. करनी होगी पहले।"

कुछ महीनों बाद महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा के भाषा विद्यापीठ में मुझे पी-एच.डी. में प्रवेश मिल गया। वर्धा में प्रवेश प्रक्रिया सम्पन्न करके जब मैं प्स्स् गया तब सर ने मेरे प्रणाम का जबाब देते हुए पूछा—''श्रीमान नवनीत! आप अपने गाइड की ख़ास बात बताइए।'' मैं सोच में पड़ गया। काफी देर बाद सर ने कहा—''प्रो. हनुमानप्रसाद शुक्ल हिन्दी के सबसे यंग प्रोफेसर हैं। विद्वान व्यक्ति हैं, उनके साथ लगकर काम कीजिए।'' मैं जी सर में सिर हिलाते हुए वहाँ से निकल लिया। वर्धा आने के बाद भी मैं गौतम सर से दो या तीन महीनों के अन्तर से फोन पर बात कर ही लेता था। कभी अकादमिक, तो कभी स्वास्थ्य प्रसंगों पर। अपनी शादी का कार्ड स्पीड पोस्ट भेजने के बाद, एक दिन सर को फोन किया, फोन उठाते ही सर ने कहा- ''हम्म भई श्रीमान नवनीत! कार्ड मिला गया मुझे। आप दोनों को बहुत-बहुत बधाई, आशीर्वाद। पी-एच.डी. जल्दी जमा कर दो, ताकी शुक्ला जी कुछ कर सकें तुम्हारे लिए।''

वैश्विक महामारी कोविड-19 के आरंभिक समय में दिसंबर, 2020 में मैंने सर से बात की थी, सर ने पूछा—पी-एच.डी. जमा किया भई श्रीमान! मैंने कहा—'सर, आई.सी.एस.एस.आर. के प्रोजेक्ट में रिसर्च असिस्टेंट के रूप में काम कर रहा था, इसलिए पी.एच.डी. का काम धीमा पड़ गया था।' सर ने कहा—"ऐसा है अपने गुरु मुन्ना की राह मत पकड़ो, पी-एच.डी. जल्दी जमा करो, इतनी देरी ठीक नहीं है। भई! नौकरी लेनी है कि नहीं लेनी? हम्म, टाइम मत वेस्ट करो, जमा करो। शुक्ला जी ठीक हैं?'' मैंने कहा—''जी सर।'' फिर सर ने कहा—''हम्म, जल्दी जमा करो भई। पहले ही कर देना चाहिए था, इतनी देर कर दी, जमा कर के मुझे बताओ। मैंने 13 अगस्त, 2021 में अपनी पी-एच.डी. जमा किया। शाम को सर को फोन लगा रहा था। बात नहीं हो पायी। अगले दिन श्री मुन्ना पाण्डेय सर से पता चला कि सर भारत से बाहर हैं, कोविड संक्रमित भी हो गये हैं, हालत ख़राब है। और फिर हफ्ते भर बाद ही ख़बर मिलती है कि सर अब हम सबके बीच नहीं रहे। कुछ क्षण के लिए मेरा अवचेतन सुन्न पड़ गया, सर की सारी बातें नम आँखों के सामने तैरने लगीं, आँसू रुकने का नाम नहीं ले रहे थे, कानों में श्रीमान! श्रीमान! श्रीमान नवनीत! श्रीमान नवनीत! गूँजने लगा।

गौतम सर सच्चे अर्थों में अद्भुत और अद्वितीय व्यक्तित्व के थे। मुझे कभी उन्होंने 'नवनीत' नहीं बुलाया, जब भी बुलाया 'श्रीमान' या 'श्रीमान नवनीत' ही कहा। यह अपने आप में बहुत बड़ा सम्मान है, एक वरिष्ठ प्रोफेसर आपको इतना बड़ा सम्मान दे। मैं ILLL का कोई स्थायी अथवा अस्थायी कर्मचारी या फ़ेलो नहीं था फिर भी सर मुझे इससे कम का सम्मान कभी नहीं दिया। ऐसा सम्मान मुझे समूचे दिल्ली विश्वविद्यालय में या फिर कहीं अन्यत्र नहीं मिला, जितना अकेले गौतम सर ने दिया। गौतम सर ने पूरी ज़िंदगी अपनी शर्तों पर जी। सर हमेशा कहते थे चीजें या तो होती हैं या फिर नहीं होतीं। मैंने कभी कल्पना ही नहीं की कि उस दिन की फोन पर मेरी बात आख़िरी बात होगी। सर से मैं अपनी किसी भूल या धृष्टता के लिए माफी भी नहीं माँग पाया, सबकुछ इतना जल्दी घटित हो गया। मन में केवल एक ही बात आती हैं कि क्या सर को ऐसे ही जाना था? किंतु, नियति के समक्ष हम केवल हाथ बाँधे खड़े रहने के अलावा कर भी क्या सकते हैं। सर के साथ अनेक और भी बहुत से प्रसंग हैं जिन्हें याद करते ही आँखें नम हो जाती हैं। मैं अपनी भावनाओं पर नियंत्रण रखते हुए अपनी बात को समाप्त करता हूँ।

पूर्व शोधार्थी एवं शोध सहायक
भाषा विद्यापीठ
महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा

●

परम श्रद्धेय गौतम सर

कंचन

आदरणीय गुरुवर प्रोफेसर रमेश गौतम सर को कोटि कोटि नमन

प्रोफेसर रमेश गौतम सर मेरे मार्गदर्शक, अभिभावक और पितृतुल्य थे। सर से बहुत कुछ सीखा और पाया और अभी भी बहुत कुछ सीखना था। आज मैं जो भी हूँ सर के आशीर्वाद से ही हूँ। जब भी सर से मिलती तो एक विशेष स्नेह महसूस होता था। एम. ए की कक्षा में सर के ऊर्जावान, सारगर्भित, और प्रासंगिक व्याख्यान ने मेरे भीतर नाट्य साहित्य के प्रति रुचि को और बढ़ा दिया। नाटक पढ़ाते समय नाटकों का विवेचन विश्लेषण, रंग चिन्तकों का परिचय, नाटक प्रस्तुतियों की चर्चा, नाट्य आलोचना पर बातचीत, नाटक की वर्तमान प्रासंगिकता, नाटककार की पृष्ठभूमि, रुचि, विचारधारा, आदि सभी पहलुओं और बिन्दुओं पर सर का विस्तार से चर्चा करना आज भी याद आता है। कितना भी गूढ़ विषय क्यों न हो, सर हमेशा बहुत ही सरल शब्दों में उसे समझाते। सर के सभी विद्यार्थी बहुत भाग्यशाली हैं जो हमें विलक्षण प्रतिभा से सम्पन्न सर का सांनिध्य मिला। सर के सांनिध्य में ही विपरीत परिस्थितियों से जूझना, जीवन को एक नये दृष्टिकोण से देखना सीखा।

सर की बातें मेरे लिए हमेशा यादगार रहेंगी। उनकी विद्वता और ज्ञान की गहराई ने मुझे हमेशा प्रभावित किया। सर सदैव सजग, ईमानदार, समाज के प्रति संवेदनशील, अपने विद्यार्थियों के लिए अभिभावक रहे। सभी का भला सोचने वाले, परहित करने वाले, अपने विद्यार्थियों की छोटी सी उपलब्धि पर भी सर बहुत खुश होते। सितंबर 2016 में दिल्ली विश्वविद्यालय में नुक्कड़ नाटक महोत्सव 'उड़ान' का आयोजन हुआ। सर ने इसमें नाट्य लेखन के साथ-साथ नाट्य निर्देशन करने के लिए भी मुझे प्रोत्साहित किया। सर के मार्गदर्शन में बहुत कुछ सीखने को मिला। सर ने नाट्य मंचन के सभी महत्वपूर्ण बिन्दुओं, रंग संकेतों, नाटक में अनुशासन की भूमिका पर जीवंतता और बारीकी चर्चा की। निर्देशन से संबद्ध मेरे हर प्रश्न का उत्तर सर बहुत धैर्य और सहजता के साथ देते। सर अपने अकादमिक और प्रशासकीय कार्यों में सदा व्यस्त रहते थे। इतनी व्यस्तताओं के बाद भी सर ने सदा समय निकालकर मेरे प्रश्नों के समाधान दिए। 'उड़ान' में नाटक प्रस्तुति के निर्देशन कार्य में पूरे नाट्य समूह को प्रथम स्थान प्राप्त हुआ। गौतम सर के मार्गदर्शन, प्रोत्साहन और वीरेंद्र सर के दिशानिर्देश पर ये उपलब्धि प्राप्त हुई। पुरस्कार वितरण की शाम सर की आँखों की चमक मुझे आज भी याद है। उनका मेरे सिर पर हाथ रखकर यह बोलना की 'बेटा तुम ने बहुत मेहनत की' मुझे आज भी और मेहनत करने के लिए प्रेरित करता है। नाट्य प्रस्तुति की सफलता की खुशी सर की आँखों में मैंने उस दिन देखी। परम आदरणीय गौतम सर की विद्यार्थी होना मेरे लिए गर्व की बात है। मैंने सर से सदा स्नेह और आशीर्वाद पाया है।

मैं उनकी कृपा और आशीर्वाद का आभार आज भी महसूस करती हूँ।

सर बहुत सरल और अनुशासनप्रिय व्यक्ति थे। मैंने उनसे सीखा कि कैसे एक व्यक्ति अपने अनुभव से दूसरों की सहायता कर सकता है।

एम.ए के उपरान्त नाटक साहित्य में मेरी रूचि धीरे-धीरे इतनी बढ़ गयी कि मैंने एम और पी एच.डी में शोध कार्य नाट्य साहित्य को आधार बनाकर ही किया। एम.फिल और पी एच.डी में सर मेरे शोध निर्देशक रहे। सर का उत्तम कोटि का उद्बोधन, गरिमामय व्याख्यान, विराट व्यक्तित्व, अकादमिक क्षेत्र में उच्च स्थान के साथ साथ प्रशासकीय कार्यों में भी निपुणता आदि उनके व्यक्तित्व को विराट बनाते थे। सर के पूर्ण सहयोग, सतत् मूल्यांकन और सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टि के द्वारा मेरा शोध कार्य सफलतापूर्वक पूर्ण हुआ।

सर आप हम सभी की स्मृतियों में आजीवन विद्यमान रहेंगे। आज सर नहीं है लेकिन उनकी सुनहरी यादें, उनकी सीख, उनके आदर्श, स्मृतियों का अनमोल खजाना शेष हैं, यामिनी मैम की छत्रछाया का सहारा है। एक बात का अफसोस सदा मन में रहेगा कि सर ने हमेशा सिर्फ दिया ही दिया है और मैं आपके लिये कुछ भी न कर पाई। सर से जो पाया वह एक अमूल्य निधि है। सर आप सदा मेरी स्मृतियों में जीवित रहेंगे। मैं सर के सिखाए आदर्श मार्ग पर चलने को सदैव प्रयासरत रहूँगी और यही प्रयास मेरी ओर से सर के लिए श्रद्धा सुमन होंगे।

सात समंदर की मसि करौं
लेखनि सब बनराइ।
धरती सब कागद करौं
गुरु गुण लिखा न जाइ॥

असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, शिवाजी कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

एक चिन्तनशील अध्यापक : गौतम सर

आशा

श्रद्धेय गुरुवर रमेश गौतम सर से मेरा पहला परिचय, मेरी उच्च शिक्षा की प्रथम गुरु राज मैम के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप में हुआ। दरअसल, मेरे परिजनों की, मेरे भविष्य के सम्बन्ध में योजना थी कि बी.ए. के बाद बी.एड. में एडमिशन होते ही मेरा विवाह कर दिया जाय। राज मैम ने मुझे प्रेरित किया कि मैं अपने घरवालों को एम.ए., एम.फिल. और पी.एच.डी. के लिए मनाऊँ और विवाह भी कम-से-कम एम.ए. के बाद ही हो। राज मैम से मिलकर मेरे पापा सहर्ष तैयार भी हो गये। एम.ए. प्रथम वर्ष के दौरान ही राज मैम ने गौतम सर के व्यक्तित्व का संक्षिप्त किन्तु प्रभावशाली वर्णन करने के बाद मुझे निर्देशित कर दिया था कि एम. ए. फाइनल में विकल्प के रूप में नाटक और रंगमंच के प्रश्नपत्रों का ही चयन करना है।

रमेश गौतम सर पर केन्द्रित संस्मरणात्मक लेख लिखते समय मुझे सबसे पहले उनके अध्यापकीय व्यक्तित्व का स्मरण हो रहा है।

सन् 1998 में मैं एम. ए. फाइनल में थी। गौतम सर जयशंकर प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त' नाटक पर केन्द्रित कक्षा ले रहे थे। कमरा विद्यार्थियों से खचाखच भरा हुआ। 'चन्द्रगुप्त' के पहले अंक का पहला दृश्यतक्षशिला के गुरुकुल में चाणक्य, उनके शिष्य चन्द्रगुप्त, सिंहरण से सिकंदर के साथ मिलकर आर्यावर्त के विरुद्ध षड्यन्त्र करने वाले आम्भीक की बहस चल रही है। बाहरी और आन्तरिक द्वन्द्व के बाद चाणक्य का अपने शिष्यों को कहना—'मालव और मागध को भूलकर जब तुम आर्यावर्त का नाम लोगे, तभी वह मिलेगा' दृश्य का सूक्ष्मता से विश्लेषण करने की शैली इतनी प्रभावशाली कि सामने बैठे अवाक विद्यार्थी नाटक का अमूर्त दर्शन करने के साथ-साथ संवादों के उपपाठ को भी समझ रहे हैं। 'स्कन्दगुप्त' के पहले अंक के पहले दृश्य पहला संवाद 'अधिकार सुख कितना मादक और सारहीन है अपने को बलवती समझने की स्पृहा उससे बेगार कराती है...'—आज भी जब कभी यह संवाद पढ़ती हूँ या सुनती हूँ, गौतम सर द्वारा किया गया स्कन्दगुप्त के अन्तर्द्वन्द्व के विश्लेषण का ध्यान अनायास हो आता है। जयशंकर प्रसाद के सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय चिन्तन की समझ पहले-पहल इन्हीं कक्षाओं में बनी। राजा लक्ष्मण सिंह द्वारा अनूदित कालिदास के 'शंकुतला' नाटक में शकुन्तला द्वारा पेड़-पौधों को सींचने के दृश्य का वर्तमान पर्यावरणीय सन्दर्भों में विश्लेषण, भारतीय जीवन मूल्यों का महत्त्व, मोहन राकेश कृत 'आधे-अधूरे' में आधुनिक महानगरीय जीवन-शैली में टूटते-बिखरते पारिवारिक सम्बन्धों को बचाने और धर्मवीर भारती कृत 'अन्धा युग' में आजादी के बाद आये जीवन-मूल्यों के विघटन के प्रति चिन्ता दिखती। उनकी अध्यापन शैली से प्रभावित मेरे जैसे कई विद्यार्थी दूसरे सेक्शन के साथ ही नॉन कॉलेजियेट की कक्षाओं तक में बादल सरकार के 'पगला घोड़ा', शंकर शेष के 'कोमल गांधार', आग़ा हश्र कश्मीरी कृत 'बिल्वमंगल सूरदास', ब्रेख़्त का 'खड़िया का घेरा' के साथ-साथ रंगमंच के सिद्धान्त भी पढ़ने और समझने पहुँच जाते थे। गौतम सर हर नाटक के कुछ दृश्यों को छाँट लेते थे, उन दृश्यों के चुनिन्दा संवादों को सूत्र की तरह पकड़कर पूरा नाटक समझा देते थे। अध्यापन के दौरान सर कई बार कुछ हिन्दी कवियों की पंक्तियों का भी प्रयोग करते थे—जो बतलाता था कि हिन्दी काव्य पर भी उनकी अच्छी-खासी पकड़ है। उनकी अध्यापन शैली को देखते हुए सहज ही अनुमान लगाया जा सकता था कि प्रसाद के नाटकों में चाणक्य, दांडायन, चन्द्रगुप्त, सिंहरण, अलका, स्कन्दगुप्त, ध्रुवस्वामिनी और भारतेन्दु के नाटकों में हरिश्चन्द्र, नीलदेवी उनके विशेष प्रिय पात्र थे। सत्र की अन्तिम क्लास में सर विद्यार्थियों को अपने घर का टेलीफोन नम्बर भी दे देते थे—परीक्षा की तैयारी के दौरान कोई जिज्ञासा या प्रश्न हो तो विद्यार्थियों को फोन करने की छूट थी। सौभाग्य से मुझे एम. फिल एवं पी.एच.डी. के दौरान शोध-निर्देशक के रूप में गौतम सर ही मिले। शोध-विषय की सूक्ष्म समझ, सन्दर्भों के सावधानीपूर्वक प्रयोग, प्रूफ रीडिंग—सबके प्रति गौतम सर अतिरिक्त रूप से सजग और सचेत रहना सिखाते थे। प्रूफ की छोटी-छोटी गलतियों को भी उनकी पैनी नज़र तुरन्त पकड़ लेती थी। गौतम सर का बाहरी व्यक्तित्व निःसन्देह रौबदार था किन्तु विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में होने वाले साक्षात्कारों में वे हमेशा 'स्टूडेंट-फ्रेंडली' रहते थे, साक्षात्कार देने वाले किसी भी विद्यार्थी का मनोबल नहीं गिरने देते थे। किसी प्रश्न का उत्तर न आता हो तो बड़ी सहजता से अन्य प्रश्न पूछ लेते थे।

दिल्ली विश्वविद्यालय के अदिति महाविद्यालय में मेरी स्थायी नियुक्ति के बाद सर ने आशीर्वाद स्वरूप कहा—'अध्यापन कार्य निष्ठापूर्वक करना है, कॉलेज के शिक्षणेतर कार्यों और पारिवारिक जिम्मेदारियों के साथ-साथ पढ़ने-लिखने का कार्य रुकना नहीं चाहिए'। इसके बाद मैंने जब भी कोई अकादमिक कार्य किया, सर ने हमेशा उत्साहित किया, और बेहतर करने की प्रेरणा दी। मैं कई वर्षों तक अदिति महाविद्यालय की नाट्य समिति की संयोजिका रही। मंडी हाउस के श्रीराम सेंटर में हमारी छात्र-प्रस्तुतियाँ होतीं। मैं सर को मुख्य अतिथि के रूप में आमन्त्रित करतीं, सर सहर्ष आते और प्रस्तुति समाप्त होने के बाद अपनी त्वरित और सुचिन्तित टिप्पणी से छात्राओं का उत्साह-वर्द्धन करते। नाटक और रंगमंच से जुड़े विषयों पर चर्चा और विचार-विमर्श के लिए सर तत्पर रहते थे। मैंने सर के साथ राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, श्रीराम सेंटर आदि में कई नाट्य-प्रस्तुतियाँ देखीं। प्रस्तुति के बाद होने वाली चर्चा में सर हमेशा नाटक के पीछे छिपे विचार को पकड़ने की कोशिश करते थे। उनका मानना था कि विचार महत्वपूर्ण होने पर

साधारण शिल्प में भी नाटक की प्रस्तुति प्रभावशाली हो जाती है।

सर ने विश्वविद्यालयी स्तर पर नाटक और रंगमंच के पठन-पाठन, अध्ययन-अध्यापन की पद्धति को नाटक की प्रकृति के अनुरूप 'प्रयोगशील' बनाया। नाट्यालोचना पर आधारित उनकी पुस्तकों के कई-कई संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण इस बात के सूचक हैं कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और जयशंकर प्रसाद जैसे कालजयी नाटककारों के नाटकों का समसामयिक सन्दर्भों में पाठ उनकी चेतना में निरन्तर चलता रहता था। सर के सानिध्य और निर्देशन में मुझे पाठ्यक्रम-निर्माण, पाठ्यपुस्तक-लेखन व सम्पादन, पुस्तकों में अध्याय, ई-पाठ लेखन—जैसे कई प्रकार के अकादमिक कार्य करने का सुअवसर प्राप्त हुआ—सर की दृष्टि किसी भी प्रकार के वाद या विचारधारा से परे सदैव विवेक-सम्मत और 'परफेक्शन' की रहती थी, वे अपने कार्य को अद्यतन करने के लिए तत्पर रहते थे और हमें भी ऐसा ही करने के लिए प्रेरित करते थे।

सबके जीवन में अनेक प्रकार के उतार-चढ़ाव आते रहते हैं, मेरे जीवन में भी आये। निराशाजनक और दुखदायी क्षणों में गौतम सर ने अपना स्नेह-पूरित वरद-हस्त सिर पर रखा। सुखद परिस्थितियों में सर ने उत्साहवर्द्धन किया। उनका व्यवहार हमेशा अनुशासित और मर्यादित रहा। उनके मजाक करने का तरीका भी बहुत शालीन होता था। मैंने अनेक बार उनमें पिता की स्नेहिल छवि देखी। सर के गरिमामय व्यक्तित्व की झलक उनकी भाषा में भी दिखती थी। व्यक्तिगत और अकादमिक—दोनों स्तरों पर भाषा का सटीक प्रयोग करने के वे धनी थे। नपे-तुले शब्दों में अर्थवान बात कह जाना उनकी निजी विशेषता थी।

मैं अपने गुरुवर का गौरव गान करने में अक्षम हूँ। उनसे जुड़े अनुभव अप्रतिम, अमिट और अनन्य हैं, जो संचित निधि के रूप में हम शिष्यों में विद्यमान हैं और यही अनुभव अब हम सबका मार्ग प्रशस्त करेंगे। अब, जबकि गौतम सर सूक्ष्म-रूप हो गये हैं, देश-विदेश के विश्वविद्यालयों में अध्यापन-कर्म से जुड़े उनके विद्यार्थी, उनकी परम्परा को निश्चित रूप से आगे बढ़ायेंगे—ऐसा संस्कार-बीज वह डालकर गये हैं।

प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, अदिति महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

●

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्ग।
पथस्तत्कवयो वदन्ति॥
(कृष्ण यजुर्वेद)

सोशल मीडिया

लक्ष्मण दत्त गौतम

अनुज रमेश को परिवार सहित मेरे अपार श्रद्धा सुमन। कोरोना प्रपंचक ने एक और आर्यपुरुष की बलि ले ली। क्रिया की प्रतिक्रिया तेरे दर्शन का सिद्धांत है, तो तय है, निकट भविष्य में विश्व तुझे भी संहारक पाठ देगा।

रमेश भाई मिट्टी से जुड़ा रहा... अपनी अंतिम साँस तक! स्वाभिमानी! अहंकार छू भी नहीं गया था। एम.ए. के बाद ही घनिष्ठता हुई। बीस साल का फासला था—मेरे और उनके बीच। अध्यापक के तौर पर वे ऐसे वक्ता थे जो बिना स्वाध्याय किये कभी कक्षा में नहीं जाते थे। मितभाषी! गंभीर वक्ता! श्रोता के रूप में अपार धैर्य! अपने जीवनकाल में मैने इतना धैर्य कदाचित ही देखा होगा।

शैशव से ही नाट्य कला में उनकी रूचि थी, जो अपने जीवन के अन्तिम समय तक लोकनाट्य परम्परा का इतिहास उनसे लिखवा ही गयी। एन.एस.डी. से वे ऐसे जुड़े थे कि भारतीय एवं वैश्विक नाट्य लीलाओं पर उनकाअच्छा खासा दख़ल था। अपने निर्देशन में अधिकांश शोधकर्ताओं ने नाटक पर ही शोध किया था। उनके विशेष छात्र अन्ततः एन एस डी से जुड़ कर भविष्य की संभावना बन रहे हैं।

दो संस्मरण आजीवन नहीं भूलूँगा। मैं परिवार की अपेक्षा मित्रों को ज्यादा तरजीह देता था। दुबई आने से पहले घरेलू समस्याओं को लेकर बात छिड़ गयी।उन्होंने जो कहा,भूला नहीं जा सकता।

''भाई साहब! आप बहुत सीधे हैं। कितने ही लोग मतलब साधने के लिए दोस्ती करते हैं। जानकर भी आप नहीं सम्भलते। दोस्त एकाध ही होता है। इतना ध्यान शुरू से ही अपने बच्चों पर देते और उनको अपना मित्र मानकर उनपर ध्यान देते तो...।"

मैं सन्न रह गया! आज हिमाद्रि की सेवा देखकर मैं नतमुख हूँ।

सब जानते हैं रमेश स्वभाव से बड़े गम्भीर थे। लोग उनसे सम्भल के बात करते थे। मुझसे बात करने में सहज थे। पता लगा, ये उनकी ओढ़ी हुई मुद्रा थी। नाट्यप्रेमी होने के नाते इस मुद्रा को स्वाभाविक बना लिया था। लेकिन संकट का मारा हताश छात्र अपनी बेबसी में जब उनके सामने रो पड़ता था, तो समझो उसकी समस्या हल हो गयी! उनका दिल इतना कोमल भी हो सकता है, ये बाद बाद में उनके मुख से सुन पाया था।

प्रशंसा से वे बहुत दूर थे। किसी के काम में सहयोगी बनकर वे आगे बढ़ जाते थे। कोई करना भी चाहता तो अनसुना कर देते थे। चाटुकारिता से वे कोसों दूर थे। नेकी कर कुएं में डाल उनका परम्परा सूत्र था। आजीवन उस पर खरे उतरे।

भगवान से मैं क्या कहूँ? हमने ही उनको बनाया है। आप सब हाज़िर नाजिर ही उनसे पाठ लेकर अपने संस्कारों का शोधन करते चलेंगे तो आपके रूप में ही हम भाई रमेश का चेहरा देखते रहेंगे। ●

वीरेन्द्र सिंह नेगी

आचार्य रमेश गौतम जी का यूं जाना बेहद मायूस कर देने वाला है। वैश्विक विपदा के समय अपने देश से दूर इस प्रकार परिजनों, मित्रों, शिष्यों व प्रसंशकों से दूर असहाय सा छोड़ कर परलोक गमन कर जाना बेहद झकझोर कर रख देने वाला है।

'नेगी साब' आईये।

यह अन्दाज था सर का। मुझे याद है बहुत वर्षों पहले हमारे कॉलेज में हिन्दी के प्रमोशन की कमेटी में आये थे, मेरी भूगोल प्रमोशन में एक्सपर्टस दिक्कत खड़ी कर गये, तब डॉ. गौतम रीडर थे, उन्होंने बेहद प्रभावशाली ढंग से एक्सपर्टस को समझाने की कोशिश की, पर सफल न हुए। पर उनका अन्दाज, अनजान के लिए मदद को आगे बढ़ कर आना और उनका जोरदार हिन्दी में अंग्रेजियत ओढ़ी इंटलेक्चुअल बनी जमात से वाद-विवाद करना कहीं मेरे दिल में उनके लिए घर कर गया।

फिर मैं विश्वविद्यालय स्तर पर एक्टिविज्म में उतरा और डूटा के चुनाव में उठने लगा, हमारे संगठन की उच्च ईकाई बैठकों में गौतम सर भाग लेने आते लेकिन आते ही अन्य जगह उन्हें जाना होता तो अधिक देर नहीं रुकते। बाद में पता चला कि नाटक विधा में शोध छात्रों को खूब समय देने के चलते, वे राजनीतिक बैठकों में केवल उपस्थिति दर्ज कराने शामिल होते। मुझसे छुटपुट वार्तालाप में मेरी हिन्दी की खूब सराहना भी वे करते।

इधर गुरु जी की शोध शैक्षणिक व्यस्तता बढ़ती जा रही थी और मेरी डूटा व एकेडमिक काउंसिल एग्जीक्यूटिव काउंसिल चुनाव में भागीदारी। वे मुझे हर चुनाव में खड़े होने पर शुभकामनाएँ देते और जीतने पर बधाई। याद आता है कि हिन्दी विभाग में एक समय ऐसा आया कि कोई शिक्षक प्रोफेसर पद पर नहीं था, तब उनका दायित्व और कामकाज काफी बढ़ गया था। पर वे सुबह से शाम तक एक जैसे तरोताजा ही दिखते थे। विश्वविद्यालय में शिक्षक विषयों को लेकर उनसे मेरी कई बार अनुनय-विनय व बहस भी हुई।

'नेगी साब' आईए, क्या बात है, आज मित्रता धर्म निभाने आये हो या राजनीतिक धर्म?

मेरा उनके कक्ष में जाने पर वे भाँप लेते थे की फिर कोई समस्या कोई आग्रह कोई अनुनय विनय या झगड़ा लेकर ही नेगी आया होगा। खैर यह एक बात है।

एक अन्य बात उनकी विशेष रही कि शिक्षक एक्टिविज्म के आंदोलनों में शिक्षा और शोध की हानि के लिए वह कभी सहमत नहीं होते। वे कहते कि यह भी एक जरूरी बात है पर संस्थान चलते रहने चाहिए यह भी जरूरी है।

हिन्दी विभाग में बाम, दायं, फ्रि थिंकर, नक्सल, कांग, समाजवादी, प्रगतिशील, स्वच्छंद और भारतीय सभी प्रकार की आइडियोलॉजीज ने खूब प्रसार व विस्तार पाया, इसके बीच उन्होंने विश्वविद्यालय के हिन्दी परिवार का नेतृत्व भी किया। परिवेश में उन्होंने आलोचनाएँ भी पायीं, विवाद भी देखें, परंतु उनके शिष्यों की एक बड़ी संख्या भी मैंने देखी जो उनमें गुरु शिष्य का भाव जानकर हमेशा के लिए जुड़ी रही।

उन्होंने मुझे कई बार कहा 'नेगी साब' किसी का कटु विरोधी मत बनिये, उससे सहयोग और असहयोग करने की छूट हमेशा आपके पास ही रहती है। उनके यह शब्द मैंने अपने सार्वजनिक जीवन में अपनाये हैं।

उनके सेवानिवृत्त होने पर हंसराज कॉलेज में उनका विदाई समारोह कार्यक्रम आयोजित किया गया, वहाँ मंच से उनके सम्मान में खड़ा होकर बोलने के अवसर को मैंने गुरु-दक्षिणा के मंच के रूप में माना।

एक सरल, विराट और दृढ़ व्यक्तित्व हमारे बीच से चला गया। बहुत ही दुखद है।

मैं उनके जाने से काफी व्यथित और विचलित हूँ क्योंकि इस कोरोना काल में जिस मजबूरी और बेबसी का इंसान ने सामना किया है और कर रहा है वह मानव इतिहास में पहले कभी नहीं सुनी वह देखी गई।

सच कहूँ मुझे इंतजार था कि आचार्य रमेश गौतम जी ठीक होकर लौट आयेंगे।

पर...

भावभीनी श्रद्धांजलि!

मेरे भगवान भोलेनाथ आपको बैकुंठ प्रदान करेंगे।

आपको सादर नमन

हे गुरुवर!

●

रहने को सदा दहर में आता नहीं कोई।
तुम जैसे गये ऐसे भी जाता नहीं कोई॥

(कैफ़ी आज़मी)

भारतेन्दु युगीन नाटक: सन्दर्भ सापेक्षता
रंगानुभव के बहुरंग
रमेश गौतम
नाटककार प्रसाद तब और अब
रमेश गौतम
प्रसाद के नाटक: युग साक्ष्य
हिन्दी-नाटक मिथक और यथार्थ
रमेश गौतम
नाटककार भारतेन्दु
नए संदर्भ : नए विमर्श
रमेश गौतम
हिंदी नाटक
नई परख
अंधेर नगरी
सोच और सृजन
नील देवी
सोच और सृजन
हिन्दी के प्रतीक नाटक
डॉ० रमेश गौतम
रमेश गौतम
डॉ० रमेश गौतम
भारत-दुर्दशा
सोच और सृजन
रमेश गौतम
मिथक और स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटक
रमेश गौतम
हिन्दी रंगमंच का लोक पक्ष
प्रसाद के नाटक:
देश और काल की बहुआयामिता

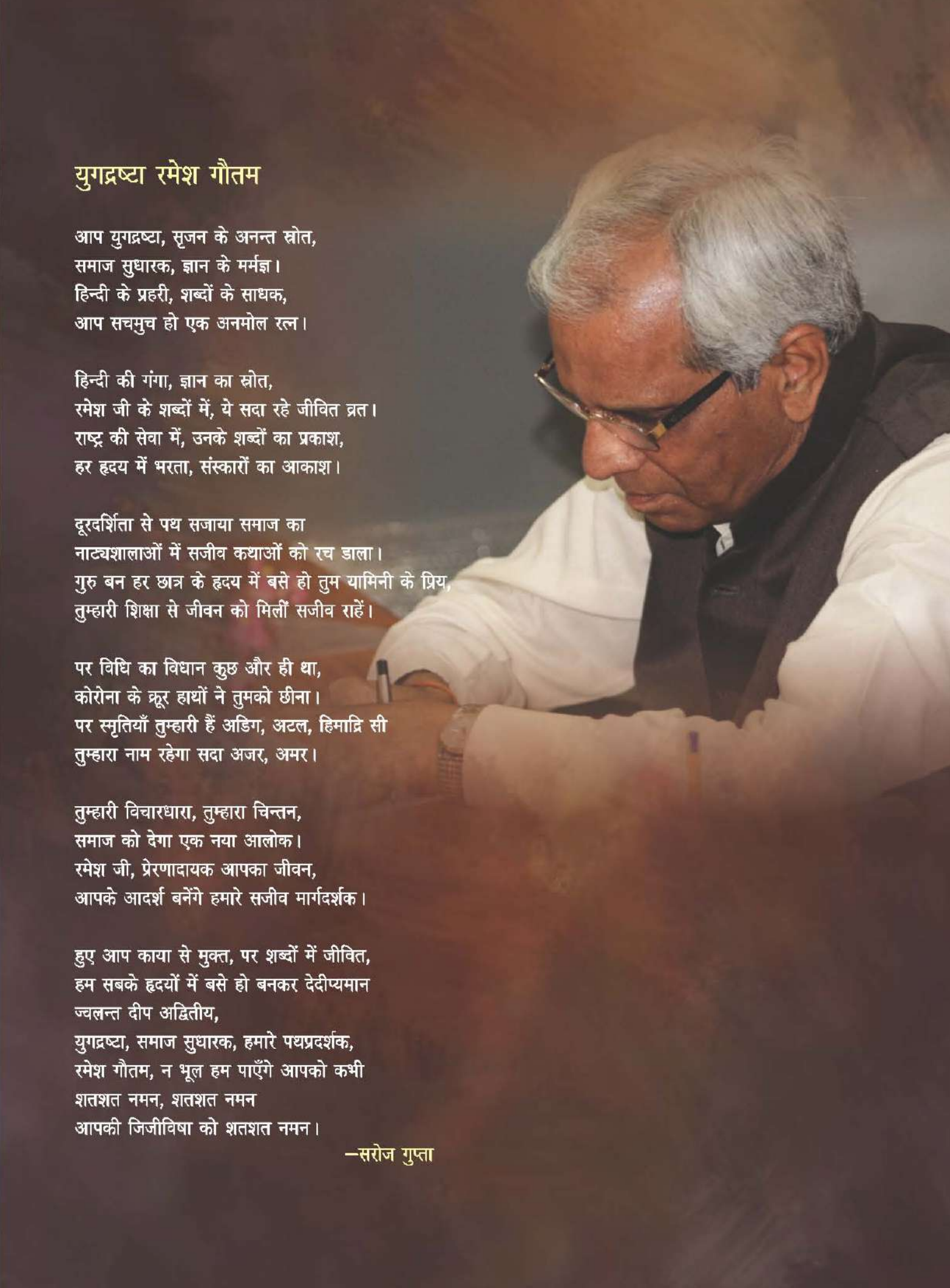

युगद्रष्टा रमेश गौतम

आप युगद्रष्टा, सृजन के अनन्त स्रोत,
समाज सुधारक, ज्ञान के मर्मज्ञ।
हिन्दी के प्रहरी, शब्दों के साधक,
आप सचमुच हो एक अनमोल रत्न।

हिन्दी की गंगा, ज्ञान का स्रोत,
रमेश जी के शब्दों में, ये सदा रहे जीवित व्रत।
राष्ट्र की सेवा में, उनके शब्दों का प्रकाश,
हर हृदय में भरता, संस्कारों का आकाश।

दूरदर्शिता से पथ सजाया समाज का
नाट्यशालाओं में सजीव कथाओं को रच डाला।
गुरु बन हर छात्र के हृदय में बसे हो तुम यामिनी के प्रिय,
तुम्हारी शिक्षा से जीवन को मिलीं सजीव राहें।

पर विधि का विधान कुछ और ही था,
कोरोना के क्रूर हाथों ने तुमको छीना।
पर स्मृतियाँ तुम्हारी हैं अडिग, अटल, हिमाद्रि सी
तुम्हारा नाम रहेगा सदा अजर, अमर।

तुम्हारी विचारधारा, तुम्हारा चिन्तन,
समाज को देगा एक नया आलोक।
रमेश जी, प्रेरणादायक आपका जीवन,
आपके आदर्श बनेंगे हमारे सजीव मार्गदर्शक।

हुए आप काया से मुक्त, पर शब्दों में जीवित,
हम सबके हृदयों में बसे हो बनकर देदीप्यमान
ज्वलन्त दीप अद्वितीय,
युगद्रष्टा, समाज सुधारक, हमारे पथप्रदर्शक,
रमेश गौतम, न भूल हम पाएँगे आपको कभी
शतशत नमन, शतशत नमन
आपकी जिजीविषा को शतशत नमन।

—सरोज गुप्ता

भारतेन्दु युगीन नाटक: सन्दर्भ सापेक्षता
डॉ० रमेश गौतम
नाटककार भारतेन्दु
नए संदर्भ : नए विमर्श
रमेश गौतम
रंगानुभव के बहुरंग
रमेश गौतम
नाटककार प्रसाद तब और अब
रमेश गौतम
प्रसाद के नाटक: युग साक्ष्य
हिन्दी-नाटक मिथक और यथार्थ
रमेश गौतम
हिंदी नाटक
नई परख
अंधेर नगरी
सोच और सृजन
नील देवी
सोच और सृजन
रमेश गौतम
हिन्दी के प्रतीक नाटक
डॉ० रमेश गौतम
भारत-दुर्दशा
सोच और सृजन
रमेश गौतम
मिथक और स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटक
रमेश गौतम
दिल्ली का हिन्दी और रंगमंच
हिन्दी रंगमंच का लोक पक्ष
प्रसाद के नाटक:
देश और काल की बहुआयामिता
रमेश गौतम